श्रीरामानन्दग्रन्थमाला पुष्प—तीसरा

श्रीमते रामानन्दाचार्य्याय नमः ।

कल्याणकल्पद्रुमः

अर्थात्

श्रीमत्हनुमत्संहितान्तर्गत श्रीअगस्त्य हनुमान्
सम्वादात्मक अर्थपञ्चककी विस्तृत व्याख्या

प्राप्यप्रापकयोः फलोपयनयो रूपं च तद्रोधिनो,
भक्तेश्चापि समन्ततः प्रपदनस्य श्रेयसो वर्णयन् ।
वैराग्यस्य तथा विवेकसरणेर्नित्यं वितन्वन्नयं,
भूयात्सर्वजनस्य नित्यसुखदः कल्याणकल्पद्रुमः ॥

व्याख्याकार

श्री अयोध्या, स्वर्गद्वारघाट श्रीसीतारामसङ्कीर्तन-
सदन निवासी १०८ श्रीसीतारामीय

श्रीमथुरादासजी महाराज

प्रकाशकीय निवेदन।

इस घोर पापमय कलियुगमें परम श्रेयस्कर कल्पवृक्षवत् कल्याप्रद श्रीप्रभुचरण प्रेमही है और उस प्रेमका प्रदाता, प्रेमोत्पादक, होनेसे इस पुस्तकका नाम "कल्याणकल्पद्रुम" रखा गया है।

मेरे पूज्यतम आचार्यचरणजीने इस पुस्तकमें वैष्णवीय मुख्य मुख्य समस्त सिद्धान्तोंका वर्णन किया है। अपनी सम्प्रदायके सिद्धान्तोंकी दृढ़ता रखते हुएभी इसमें किसीभी सम्प्रदायका खण्डन नही किया गया है।

बद्ध, मुमुक्षु, मुक्तादि आत्मविभेद, भक्ति, श्रवण, कीर्तन, सत्सङ्गादिक उपाय और विरोधियोंका वर्णन बडाही हृदयग्राही है, सब कोई लाभ उठा सकें ऐसी सरल और सरस भाषामें वर्णन किया गया है अतः यह पुस्तक प्रत्येक मुमुक्षुओंको और सर्वसधारण जनताको कल्पवृक्षवत् फलप्रद है। यह वास्तवमें कल्याणकल्पद्रुमही है। शुद्ध हृदयसे जो कोई इसको आद्योपान्त पढ़कर आचरणमें लावेगा असकी समस्त मनोकामना निःसन्देह पूर्ण हो सकती है। मैं विनयभावसे प्रभुप्रेमी पाठकोसे निवेदन करता हूं कि इसको पढ़कर आचरणमें लानेका परिश्रम करें। और इसके प्रकाशित करते समय जो जो त्रुटियाँ रह गई हो वह माफ करें।

प्रकाशक,

अवधकिशोरदास "श्रीवैष्णव"

दोशब्द

श्रीमान्महान्त मथुरादासजी परम वैष्णव हैं। आपने सद्गुरुके चरणोंमे बैठकर साम्प्रदायिक रहस्योंका अध्ययन किया है। आप बडे सुशील और सज्जन हैं। वैष्णवता आपकी सर्वापेक्षया प्रियतम वस्तु है। आपने अर्थपञ्चक—व्याख्यारूप "कल्याणकल्पद्रुम"को लिखकर और प्रकाशित कराकर श्री वैष्णव समाजका बडा उपकार किया है। इस पुस्तकमें अनेक रहस्योंका संग्रह हुआ है। अनेक शास्त्रीय वचनों द्वारा विषय स्पष्ट किया गया है। भाषाकी कविताओंका संग्रह करके इस ग्रन्थको अधिक रोचक और अत एव सर्वप्रिय बनाया गया है। पुस्तक सर्व प्रकारसे उपयोगी है आशा है भक्तजन इसका संग्रह करके लाभ उठावेंगे।

भाद्रपद वदि ७ सं० १९९०
अहमदावाद } भगवदाचार्य
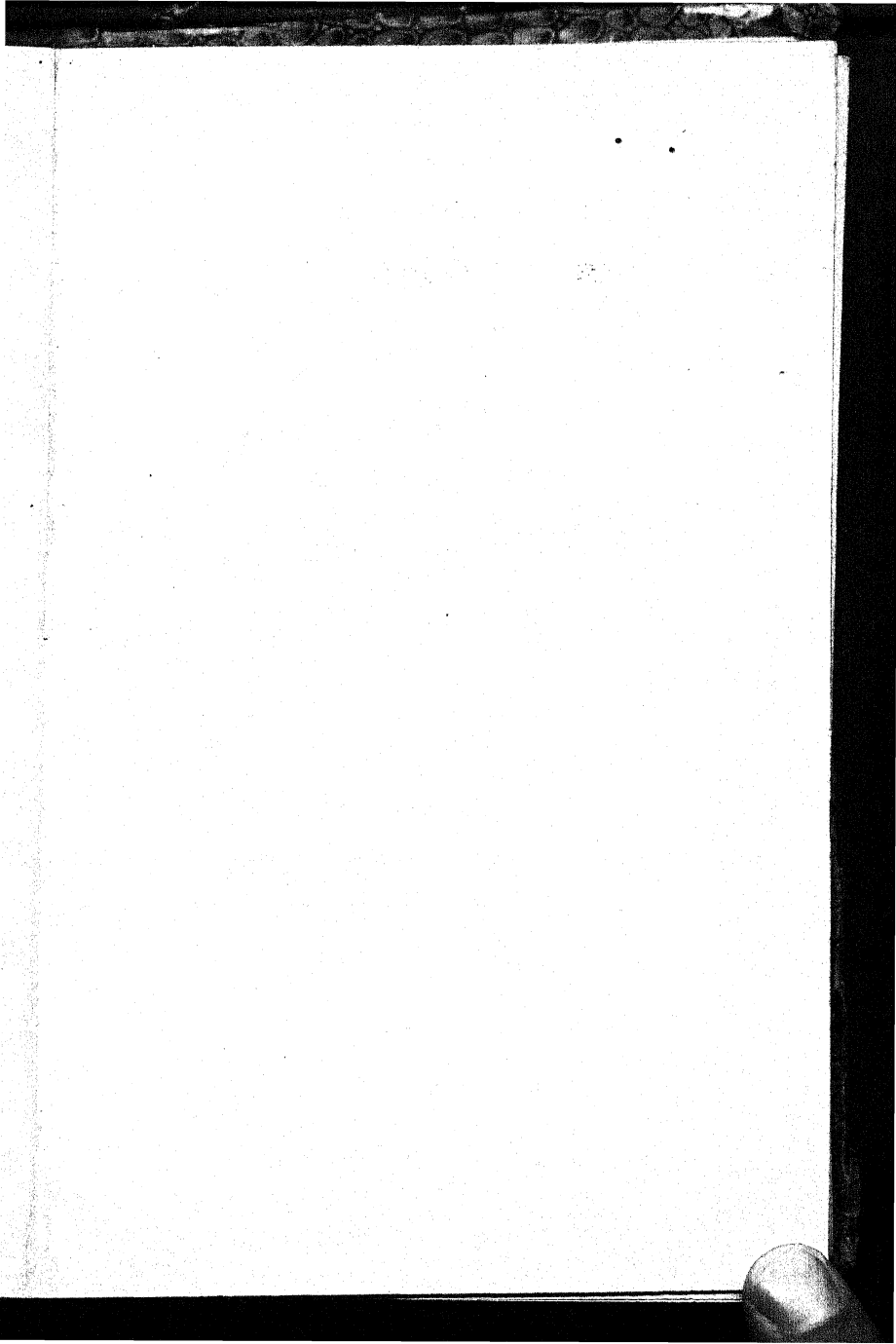
गोलोकनिवासी

शेठ पुरुषोत्तमदास झवेरचन्द भालकिया.

પૂજ્ય શ્રીપિતાજીના સ્મરણાર્થે

વાત્સલ્ય રસપૂર્ણ પૂજ્ય પિતાજી! આપ પોતાના પવિત્ર પ્રભુ પ્રેમના પ્રતાપે આજ પરમ દિવ્ય ગોલોકમાં વાસ કરી રહ્યા છો. હું તો નહી પરંતુ આપની જીવન લીલાના પ્રત્યેક દર્શક આ વાત નિર્વિવાદ રૂપથી સ્વીકાર કરે છે, કારણ કે આપની પ્રભુ નંદનંદનના ચરણોની અનન્ય ભક્તિ તથા ધાર્મિક વિશ્વાસજ મનુષ્યોના અંતઃકરણને આ વાત કબુલ કરાવે છે.

પિતાજી! આપના અનંત ઉપકારો આ બાળક ઉપર ચઢેલા છે, તે ઉપકારોનો બદલો હું આ જન્મમાં તો શું પરંતુ અનંત જન્મો સુધી સેવા કરીને પણ આપી શકું તેમ મને જણાતું નથી, તેમ આપે પોતાની સદ્દગતિ પોતાના પરમોજ્વલ ધર્માચરણ વડેજ પ્રાપ્ત કરી લીધી છે માટે લોકને પરલોક માટે "દેઉં તુમ્હેં કા પૂરણ કામા" આપ તો પૂરણ કામ છો આપને હું શું આપું? એવી મારી પાસે શી ચીજ છે જે આપીને હું આપને પ્રસન્ન કરૂં? મારી પાસે તો કંઈ પણ નથી, તોપણ પુત્રનો ધર્મ છે કે ફૂલ નહી તો ફૂલની પાંખડી પણ પૂજ્ય પિતૃચરણમાં સમર્પણ કરી પૂજન કરવું અને પગે પડી પોતાના અપરાધોની માફી માગવી, અસ્તુ—

બાપાજી ! આજ હું આપના સુપરિચિત શ્રીઅયોધ્યા-નિવાસી શ્રીસીતારામીય મથુરાદાસજી મહારાજ જેઓએ આપણા ગામ નિવાસીઓને ધાર્મિક પ્રવચનરૂપી અમૃત પાઇને પ્રભુ પરાયણ કર્યા છે, અને ત્યાં " શ્રીહરિ સંકીર્તન સત્સંગ મંડળ " સ્થાપન કર્યું છે. તેમનું રચેલું ભક્તિ, જ્ઞાન અને વૈરાગ્યથી ભરપૂર " કલ્યાણકલ્પદ્રુમ " નામનું હિન્દી તથા સંસ્કૃત ભાષાનું પુસ્તક આપના પુણ્ય સ્મરણાર્થે **છપાવી બહાર પાડું છું,** અને તે પુસ્તક વાંચી મનુષ્યોના હૃદયમાં જે ધાર્મિક ભાવો ઉત્પન્ન થાય તે દ્વારા આપ પ્રસન્ન થઈને પોતાના બાળકો ઉપર કૃપા કરશો અને અમોને પણ પોતાના જેવોજ ઇશ્વર પ્રેમ તથા ધાર્મિક ભાવ આપશો, અને હૃદયના સાચા ઉમળકાથી શુભ આશિર્વાદ આપી કૃતાર્થ કરશો, એજ—

નિવેદક

મુ૦ વસાઈ ડાભલા તા૦ વિજાપુર (વડોદરા રાજ્ય)	આપના ચરણ સેવકો **જેઠાલાલ, ચુનીલાલ, તથા મૂળચંદદાસના સાષ્ટાંગ દંડવત નમસ્કાર.**

रन्तु
णोंमे
भूली

ज्याभी
नही
वतन
गाम
ग्रामोंमे
ईज्
बको
भग-
, और
परिवार
ही है।

श्रीमान् शेठ जेठालाल पुरुषोत्तमदास भालकिया

मु. वसाई : ता. विजापुर : (बडोदा स्टेट)

धन्यवाद

इस संसारमें धनी, सुखी, और विद्वान् अनेकों हैं परन्तु धन्यवादका पात्र तो वही हो सकता है जिसकी वृत्ति प्रभु चरणोंमे लगी हो पारमार्थिक कार्यमें जिसको श्रद्धा हो, और प्रभुचरणको भूली हुई प्रजा प्रभुप्रेमी बने ऐसी जिसके दिलमें भावना हो।

हमारे सुपरिचित शेठ जेठालाल पुरुषोत्तमदासजी भालकियाभी उपरोक्त गुणसम्पन्न ही हैं। प्रभु कृपासे आपके घरमें कुछ कमी नही है, आप भालकिया मील नामक मीलके मालीक हैं। आपका मूल वतन गाम भाळक है, आपके पिताजी राज्य बडोदा, ता० विजापुर गाम वसाई–डाभलामें आकर वसे थे, उस गाममें और आसपासके ग्रामोंमे आपकी सुप्रतिष्ठा है और नागर वैश्यकुलमें भी आपकी अच्छी ईज्जत है। आपका परिवारभी बहुत बडा है और आपके घरके सबकोई प्रभुप्रेमी, सुशील और सुखी हैं, आपकी धर्मपत्नि श्रीरुक्मिणि भी भगवान् श्रीरुक्मिणीनाथ श्रीकृष्ण चरणोंकी अनन्य अनुरागिणी है, और समस्त सात्विक गुण सम्पन्न है, कहते हर्ष होता है कि बृहत् परिवार होते हुए भी इनके घरमें वैर और विरोधने कभी झांका तक नही है। अस्तु—

आपके पिताजीभी पूरे धर्मनिष्ठ थे, उन्होंने हरिमन्दिर, गौशाला, धर्मशाला, शिवालय, विद्यालय, औषधालयादिक बनवाकर जनताकी और परमपिता परमेश्वरकी खूब सेवा की है, उनका अधिक समय प्रभु स्मरणमें ही व्यतीत होता था, आज उनके पुत्रभी पिताका अनुकरण करके पारमार्थिक कार्यमें हाथ बँटाते हैं और प्रभुभजन करते हुए संप और शांतिपूर्वक गृहसंसार चलाते हैं।

आज भाई जेठालालने अपने गोलोक निवासी पूज्य श्रीपिताजी के पवित्र स्मरणार्थ और जगत्में श्रीप्रभुभक्ति प्रचारार्थ यह ग्रन्थ छपवाया है, अतः मैं सच्चे हृदयसे शतशः हार्दिक धन्यवाद देता हूं और हार्दिक भावसे प्रभु श्रीरामसे प्रार्थना करता हूं कि प्रभु उन्हे सर्वदा शांति प्रदान करे और सच्चा प्रेम तथा धार्मिक भाव प्रदान करे।

प्रकाशक—**अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव**
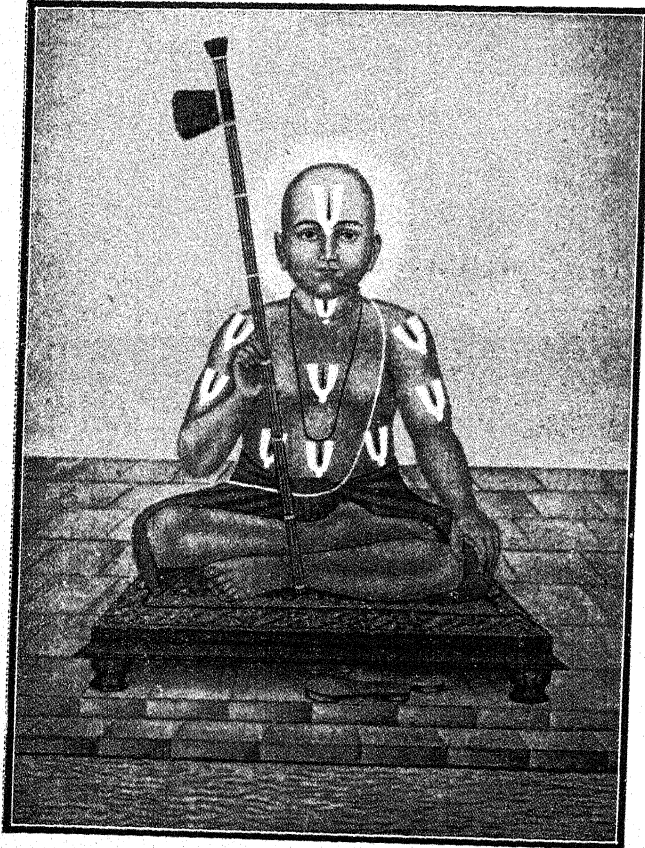
श्रीसम्प्रदायाचार्य्य जगद्गुरु श्री १००८ रामानन्दाचार्य्यजी

भास्करादि प्रणेता च ब्रह्मसूत्रस्य भाष्यकृत्।
वेदान्ताब्ध्यवगाही श्रीरामानन्दो यतिर्जयेत्॥

समर्पण

प्रभो! प्रसादाय तवाद्य किं वयं, निवेदयामो महदभ्युपायनम् ।
यदल्पमासीद्धृदयं परं धन, निवेदितं तत्प्रथमं दयानिधे ! ॥

(यतिराजस्तवराज)

हे नाथ ! आपको प्रसन्न करनेके लिये हम आपके पवित्र चरणकमलोंमें क्या समर्पण करें ? हम तो कङ्गाल हैं । हे प्रभो ! हमारे पास सबसे बडा धन तो एक छोटासा हृदय था, परन्तु हे दयानिधे ! वह हृदयतो हम प्रथमसे ही आपको समर्पण कर चुके हैं ।

यति क्षीतीश ! श्रित दुःख सम्भराः, प्रणत्य पादेषु कयाचिदाशया ।
समुद्यता भक्ति भरं प्रयाचितुं, तवैव नो नाथ ! सकामनान् कुरु ॥

हे यतिराजजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य्यजी महाराज !

दुःखोंके भारको वहन करनेवाले हम किसी अपूर्व आशासे— आप हमारी प्रार्थना सुनकर सेवा स्वीकार करेंगें—इस कामनासे आपके पावन पद्मोंमें सविनय सादर और सप्रेम प्रणाम करके निवेदन करते हैं । हे नाथ ! इस " कल्याणकल्पद्रुम "में रूखे सूखे भी यदि भक्तिरस सम्पन्न मीठे फल हों तो वह आप कृपया स्वीकार करिये, और हमें प्रसादीमें परम प्रेमरूपा भक्ति प्रदानकर सफल मनोरथ बनाइये ।

निवेदक

आपकी चरणरजका

तुच्छ सेवक

। श्रमिते रामानन्दाचार्य्याय नमः ।

प्रस्तावना

ॐ नमो भगवत उत्तम श्लोकाय नम आर्यलक्षण शील-व्रताय नम उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः साधुवाद निकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः।

(श्रीमद्भा० ५-१८)

यह संसार महा दुःख सागर है. भवसिन्धुकी उताल तरङ्गोंमे अथडाते हुए प्रत्येक जीव किसी न किसी मार्मिक पीडाका अनुभव करते ही हैं। ऊपरसे देखनेंमे भले सुखी और धनी प्रतीत होते हों परन्तु हृदयमें तो नाना प्रकारकी चिन्ताओंकी प्रचण्ड चितायें जलतीही रहती हैं। विश्वके प्रत्येक प्राणी भयत्रस्त हैं—

भोगे रोग भयं कुलेच्युति भयं वित्ते नृपालाद्भयं,
मौने दैन्य भयं बले रिपुभयं रूपे जरायाभयम् ।
शास्त्रे वाद भयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

(भर्तृ० वै० श० ३५)

विषयभोगोंमें रोगका भय है, कुल वृद्धिमें पतित होनेका भय है, धनप्राप्तिमें राजाका भय है, मौन रहनेंमें दीनताका भय है, बलिष्ठ होनेमें शत्रुका भय है, अत्यन्त सुन्दर रुपवान् होनेमें वृद्धा-वस्थाका भय है, शास्त्राभ्यासमें वादविवादमें परास्त हो जानेका भय

है, सद्गुणी होनेमें दुष्टोंके परिहासका भय है, और सुन्दर हृष्ट पुष्ट शरीर होनेसे यमराजाका भय है संक्षेपतः समस्त जगत् भयावह है केवल वैराग्य धारणकर जगत्से उपरत हो ईश्वर शरण होजाना ही निर्भयता प्रदायक है। श्रुति कहती है

"आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन"

आनन्द स्वरूप परमात्माके रहस्योंको जाननेवाला विद्वान् निर्भय होजाता है, किसीसे भी डरता नही है।

ईश्वरके स्वरूपको जाननेवाला पुरुष ही निर्भय माना जाता है इस लिये प्रत्येक मुमुक्षु मनुष्यको प्रभुके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करनेके सतत प्रयास करना चाहिये। ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करनेके लिये—

प्राप्यस्य ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्ति विरोधि हि॥
वदन्ति सकला वेदाः सेतिहास पुराणकाः।
मुनयश्च महात्मानो वेदवेदान्तपारगः॥

(नारदपञ्चरात्र)

प्राप्यस्वरूप ईश्वर, प्राप्तुस्वरूप आत्मा, प्राप्त्युपाय, प्राप्त करनेका फल, और प्राप्ति विरोधि, इन्ही पांच तत्वोंको समस्त वेद, इतिहास, पुराण, स्मृत्यादि धर्मशास्त्र, मुनिगण, महात्मागण तथा वेद वेदान्त तत्वज्ञ विद्वान् सतत कथन करते हैं।

मेरी बहुत दिनसे इच्छा रही कि इन पांच तत्वोंका तथा वैष्णवीय मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका समावेश हो ऐसा एक पुस्तक तैयार

करू। जो श्री प्रभुके प्यारे विरक्त तथा गृहस्थ दोनों वैष्णवसमाजोंको परमोपयोगी हो सके, अवश्य, इन रहस्योंके प्रतिपादक अर्थपञ्चक नामसे एक दो पुस्तक प्रकाशित हुए हैं परन्तु वे मूल मात्र और संस्कृत भाषाके होनेंसे सर्वसाधारणको यदार्थ लाभप्रद नही हो रहे हैं। इसी लिये मैनें परमपूज्य, श्रीमद्रामानन्द श्रीसम्प्रदायके परममाननीय, मेरे परम सिद्धाचार्य्य, पण्डित श्री १०८ श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराजसे प्रार्थना की रही की, श्रीहनुमत्संहितामें श्रीअगस्त्य हनुमान सम्वादरूपेण जो अर्थपञ्चक है उसके ऊपर यदि आपकी आज्ञा हो तो कुछ व्याख्या लिखूं" श्रीमहाराजजीने बडी प्रसन्नताके साथ कहा कि मैं बहुत खुश होकर कहता हूं कि तुम व्याख्या करो। मुझे श्री महाराजजीकी प्रकाशित की हुई हनुमत्संहितान्तर्गत अर्थपञ्चककी मूल मात्र एक प्रति प्राप्त हुई। मैंने श्री महाराजजीकी शुभ सम्मतिसे उसी पुस्तकके आधार पर "कल्याणकल्पद्रुम" नामक ग्रन्थ लिखा, और श्री महाराजजीको पढ़ सुनाया. श्री महाराजजी इसे सुनकर बडे प्रसन्न हुए और कहाकि यह सर्व साधारणको अत्यन्त हितकारी है थोडी बहुत हिन्दी जाननेवाला भी इसको समझ सकता है, और लाभ उठा सकता है अतः ये प्रकाशित होजाय तो बहुतअच्छा—

इधर मेरे प्रेमी मित्र विरक्त तथा गृहस्थ वैष्णव भी मुझे इस पुस्तकको प्रकाशित करनेंके लिये आग्रह करने लगे अतः श्रीमहाराजजीकी सम्मतिसे और प्रेमी वैष्णवोंके आग्रहसे मैनें यह पुस्तक प्रकाशित करनेको मेरे शिष्य अवधकिशोरदासको दिया—

मेरी-राय

श्रीहनुमत्संहितान्तर्गत अर्थपञ्चक दुर्ज्ञेय है, जिसमें कि ब्रह्मका स्वरूप, जीवकास्वरूप, एवं प्रयोजन और उपाय तथा फल और विरोधियोंका स्वरूप दर्शाया गया है। इन पांचों तत्त्वोंका स्वरूप वेदान्तादि वेद्य होनेके कारण सर्वसाधारण बुद्धिगोचर नही हो सकता था। अतः आज सम्माननीय महान्त श्रीसीतारामीय श्रीमथुरादासजी महाराजने ऐसी सुललित भाषामें वर्णन किया है जिसको सर्वसाधारण जनता भी अत्यन्त सुलभतासे समझ सकती है और पांचो तत्त्वोंका सम्यक् परिज्ञान प्राप्त कर सकती है।

आप परम सुयोग्य हैं तथा वेदान्तादि विषयोंके वेत्ता हैं। आपने इस पुस्तकमें वेदमन्त्रोंके द्वारा, स्मृतियोंके तथा भाषाकी कविताओंके प्रमाणद्वारा एक एक तत्त्वका स्वरूप बहुत स्पष्टतया प्रतिपादन कियाहै। एवं भक्ति, प्रपत्ति, वैराग्य, श्रीगुरुमहिमादिक विषय समझाये हैं। अतः मेरी ऐसी आशा है कि भवार्णव तितीर्षु भक्तजन कल्याकल्पद्रुमकी शाखा नही छोड़ेंगे—

भाद्रपद वदी पञ्चमी
सं० १९९०
श्रीजानकीघाट—अयोध्या

रामपदार्थदास
"वेदान्ती"

मेरी—अनुमति

परम विरक्त श्रीवैष्णव श्रीसीतारामीय श्रीमान् महान्त श्रीमथुरादासजी परमोत्तम भागवत हैं आपने "कल्याणकल्पद्रुम"की रचना कर गुणग्राही अर्थपञ्चक जिज्ञासु वैष्णवोंके लिये महान् उपादेय वस्तुओंको प्रगट की है। सांसारिक मायाबद्ध जीवोंको इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर मुक्ति हस्तामलकवत् उपलब्ध हो सकती है। इसमें प्राप्य, प्रापक, प्रयोजन, उपाय, विरोधी, तथा फलस्वरूप प्रभुप्राप्ति आदिक विषयोंकी विशद व्याख्या की है। यह ऐसी व्याख्या है कि सर्वजनप्रिय, मधुर, सरल, मर्मस्पर्शी और सबको समझमें आ जावे। इससे विदित होजाता है कि श्रीमान्महान्त श्रीमथुरादासजी अपने श्रीसद्गुरु भगवान्के तथा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्र पादपङ्कजके अनन्य लुब्ध मधुकरवत् एकान्तिक अनुरागी हैं। यह "कल्याणकल्पद्रुम" साधारण एवं असाधारण वैष्णवोंको और भक्तोंको ग्राह्य और परमोपयोगी है।

साथ ही साथ सब सन्त, महान्त, विरक्त वैष्णव तथा अन्यान्य गुणग्राही सज्जनोंसे प्रार्थना करता हूं कि इस ग्रन्थका सदुपयोगकर ग्रन्थकारके मनोरथोंको सफल बनानेंकी चेष्टा करते रहें।

विरागी राजेश्वर

महान्त रघुवीरदासजी

चित्रकूटी
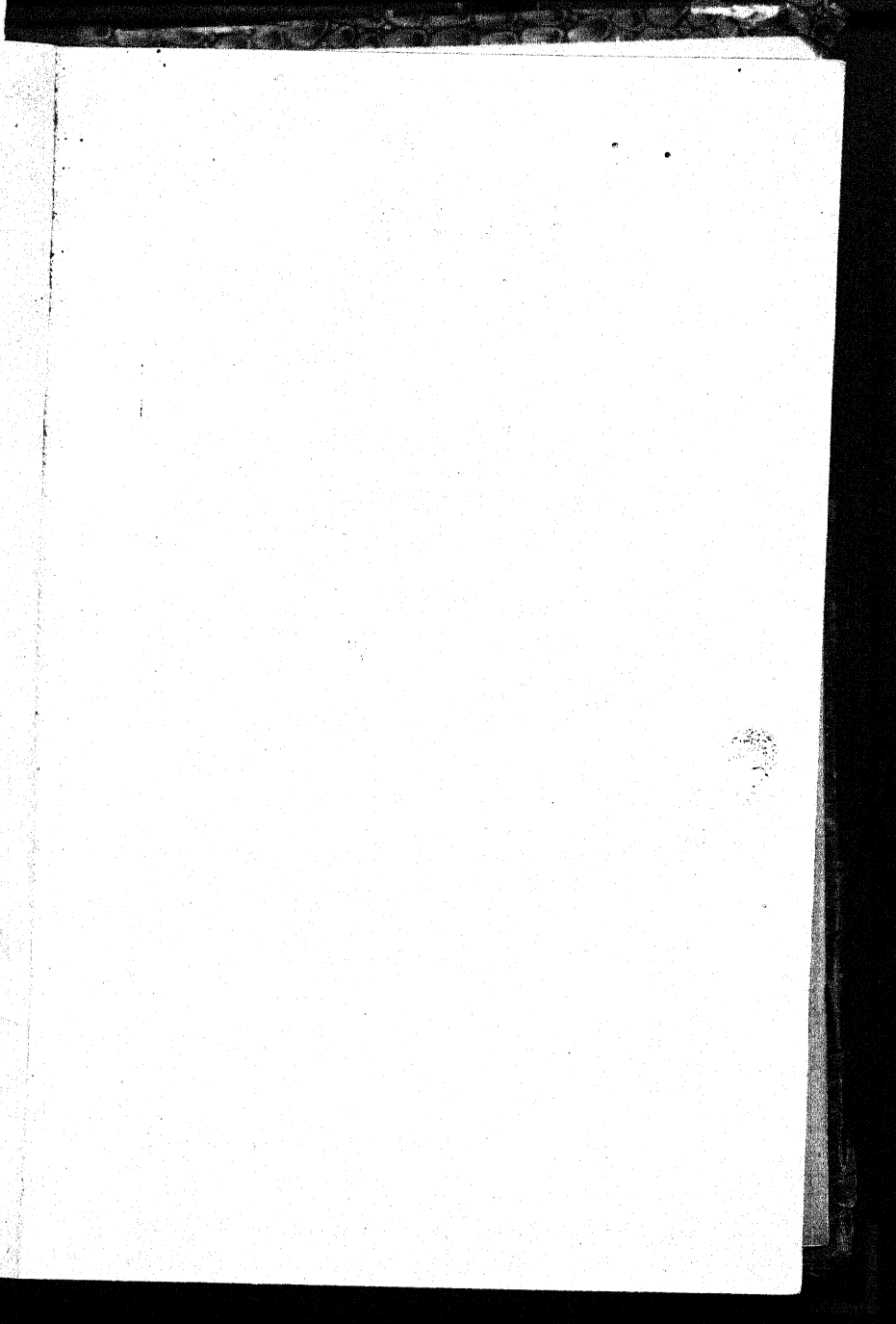
श्रीसीतारामीय १०८ श्री मथुरादासजी महाराज
स्वर्गद्वारघाट श्रीअयोध्याजी
श्रीसीतारामसङ्कीर्तनसदन निवासी

श्रीगुरुपरम्परा

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य्य पर्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम् ॥१॥

परधाम्नि स्थितोरामः पुण्डरीकायतेक्षणः ।
सेवया परया जुष्टो जानक्यै तारकं ददौ ॥२॥
श्रियः श्रीरपिलोकानां दुःखोद्धरण हेतवे ।
हनूमते ददौ मन्त्रं सदा रामांघ्रिसेविने ॥३॥
ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो मुह्यमानेन मायया ।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम् ॥४॥
मन्त्रराज जपं कृत्वा धाता निर्मातृतांगतः ।
त्रयीसारमिमं धातुर्वशिष्ठो लब्धवान्परम् ॥५॥
पराशरो वशिष्ठाश्च मुद्रा संस्कार संयुतम् ।
मन्त्रराजं परं लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूवह ॥६॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यासः सत्यवती सुतः ।
पितुः षडक्षरं लब्ध्वा चक्रे वेदोपवृंहणम् ॥७॥
व्यासोऽपि बहु शिष्येषु मन्वानो शुभ योग्यताम् ।
परमहंसवर्याय शुकदेवाय दत्तवान् ॥८॥

शुकदेव कृपापात्रो ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थितः ।
* नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवीं गतः ॥९॥
सचापिपरमाचार्य्यो गङ्गाधराय सूरये ।
मन्त्राणां परमं तत्त्वं राममन्त्रं प्रदत्तवान् ॥१०॥
गङ्गाधरात्सदाचार्य्यस्ततो रामेश्वरो यतिः ।
द्वारानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतोऽभवत् ॥११॥
देवानन्दस्तु तच्छिष्यः श्यामानन्दस्ततोऽग्रहीत् ।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततोऽभवत् ॥१२॥
पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान् ।
हर्य्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दांघ्रि सेवकः ॥१३॥
हर्य्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ ।
यस्य वै शिष्यतां प्राप्तो रामानन्दः स्वयं हरिः ॥१४॥
रामानन्दस्य सर्वज्ञ शिरोरत्नस्य धीमतः ।
अनन्तानन्द इत्याख्यः सच्छिष्यः सद्गुणाश्रयः ॥१५॥
अनन्तानन्दमाचार्य्यं गयादास उपेत्य च ।
मन्त्ररत्नं समादाय लक्ष्मीदासाय दत्तवान् ॥१६॥
श्रीमन्माधवदासस्तु तस्माल्लेभे षडक्षरम् ।
द्वार प्रवर्तकः खोजी ततो मन्त्रं गृहीतवान् ॥१७॥
दत्तवान् क्षेमदासाय श्री खोजीजी महामुनिः ।
श्रीनारायणदासश्च ततः प्रापत् षडक्षरम् ॥१८॥

---

* इनका दूसरा नाम है श्रीस्वामी १०८ श्रीपुरुषोत्तमाचार्य्यजी ।

भक्तराजो महाधीमान् श्रीमन्त्रं करुणालयः।
ददौ नृसिंहदासाय रामदासाय सोऽपि च ॥१९॥
हरिदासस्ततो लब्ध्वा कृपारामाय धीमते ।
मन्त्ररत्नं पर प्रेम्णा दत्तवान् करुणानिधिः ॥२०॥
स च श्रीकृष्णदासाय महामन्त्रं प्रदत्तवान्।
श्रीमत्सन्तोषदासस्तु ततो लेभे हि तं मनुम् ॥२१॥
ततो रघुनाथदासः पूर्णदासस्ततस्तुतम् ।
प्रगृह्य ब्रह्मदासाय प्रददौ काष्ठ धारिणे ॥२२॥
स च भगवान्दासाय दत्तवान् मन्त्रमुत्तमम्।
रामगलोलादासाय स ददौ करुणानिधिः ॥२३॥
स श्रीनृसिंहदासाय कमल्दासाय सोऽपि च।
दत्तवान्मन्त्र रत्नं तत्सर्वजीव हीतावहम् ॥२४॥
श्रीमान्वज्राङ्गदासस्तु तदीय परिचर्य्यया।
राममन्त्रमुपादाय कार्तार्थ्यं समुपेयिवान् ॥२५॥
यः पठेच्छ्रद्धयानित्यं पूर्वाचार्य्यपरम्पराम् ।
मन्त्रराज रतिं प्राप्य सद्यो रामपदं व्रजेत् ॥२६॥

। इति श्रीगुरुपरम्परा।

श्रीमतेरामानन्दायनमः।

श्रीरामसर्वस्वस्तोत्रम्

रामो माता मत्पिता रामचन्द्रो भ्राता रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
रामः स्वामी राम एवार्थदाता रामादन्यं नैव जाने न जाने ॥१॥
रामः सेव्यो वन्दनीयोऽपि रामो रामो नित्यं मादृशैश्चिन्तनीयः।
रामोज्ञानं ध्यानगम्योऽपि रामो रामादन्यं नैव जाने न जाने ॥२॥
रामो मुक्ति र्भक्तिदाता च रामो रामोऽस्माकं राजते राजराजः।
लोकेऽस्मामिर्दृश्यते रामचन्द्रो रामादन्यं नैव जाने न जाने ॥३॥
रामो धर्मः कर्म रामोमदीयं रामो मह्यं कर्म सिद्धि प्रदाता।
रामः साध्यः साधनं रामभद्रः रामादन्यं नैव जाने न जाने ॥४॥
रामोऽस्माभिः पूजनीयो नितान्तं रामोऽमाभिः प्रत्यहं कीर्तनीयः।
रामोऽस्माभिर्गोपनीयो गुहान्ते रामादन्यं नैव जाने न जाने ॥५॥
रामोऽस्माकं दुःखहर्ता त्रिलोके रामोऽस्माकं सौख्यकर्ता सदैव।
रामो विद्या वित्तमप्येव रामो रामादन्यं नैव जाने न जाने ॥६॥
रामो ज्ञातिः ख्यातिरप्येव रामो रामो कीर्तिः पूर्तिरप्येव रामः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रः पृथिव्यां रामादन्यं नैव जाने न जाने ॥७॥
ग्रामेऽरण्ये जागरे स्वप्नकाले मार्गे दुर्गे गच्छतस्तिष्ठतो मे।
शश्वल्लोके रक्षकस्त्वेव रामो रामादन्यं नैव जाने न जाने ॥८॥
एवं त्रिसन्ध्यं प्रपठन्ति नित्यं श्रीरामसर्वस्वमनन्यभक्त्या।
श्रीरामरामेण कृतं कृतार्थास्तेप्यच्युतं रामपदं प्रयान्ति ॥९॥

।इति श्रीहनुमत् कथित श्रीरामसर्वस्व स्तोत्र समाप्त।

यह स्तोत्र श्रीअयोध्यावासी महात्मा श्रीहनुमानशरणजी "नर्मसखा" द्वारा एक हस्तलिखित प्रतिसे प्राप्त हुआ—

जय श्रीसीतारामजी

श्रीसीतारामचन्द्राभ्याम् नमः

श्रीमते रामानन्दायनमः

कल्याणकल्पद्रुम :

मङ्गलाचरणम्

रक्ताम्भोजदलाभिरामनयनं पीताम्बरालङ्कृतं,
श्यामाङ्गं द्विभुजं प्रसन्नवदनं श्रीसीतया शोभितम्।
कारुण्यामृतसागरं प्रियगणैर्भ्रात्रादिभिर्भावितं,
वन्दे विष्णुशिवादिसेव्यमनिशं श्रीरामचन्द्रं प्रभुम्॥

× × ×

वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामलमूर्तये।
पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मंगलम्॥

* * *

वात्सल्यरससंपूर्णां मदीयकुलदेवताम् ।
रामभद्राङ्कसम्पन्नां वन्दे जनकजामहम् ॥

× × ×

सर्ववेदार्थसत्तत्त्व सत्त्वसद्रत्नराशये ।
जगदानन्दनानन्दभाष्यकाराय मङ्गलम् ॥

श्रीमदानन्दसत्कन्द रामानन्दं यतीश्वरम् ।
श्री श्रीधर्म महाचार्यं सदाचार्यं नुमः सदा ॥

सोरठा

पदपङ्कज सियराम, श्रीसुन्दर सुषमा सदन ।
दायकद्युति विश्राम, बार बार विनवौं सदा ॥
वंदौ श्रीगुरुदेव, जासु दया लव लेशते ।
लह्यो तत्त्वको भेव, सो मैं लिखत हौं याहिमहं ॥

इति मंगलाचरणम्

प्रभुभक्तिकी पवित्र भागीरथी जहां सदा कलरव कर रही है, असीम शांतिकी पावनधारा जहां शांति दे रही है, सत्य, दया, संतोष, ज्ञान, वैराग्य तथा प्रभु प्रेम जिसजगह पर सदा वास करता है, मनको आनंद दाता, प्रभु प्रेम प्रवर्धक तथा महा विषधर माया मोहका नाशक, ऐसे परम शुभ महर्षिवर्य श्री अगस्त्य मुनिके आश्रम पर एक समय पवनात्मज रामदूत भक्तराज हनुमानजी पधारे। अर्घ्य, पाद्य, आसनादि प्रदानकर महर्षिजीने हनुमानजीका प्रेमपूर्वक स्वागत किया. अनेक प्रकारसे प्रभुकी प्यारी लीलाओंका गुणोंका, तथा रूप

लावण्यका वर्णन हुआ, अंतमें श्रीअगस्त्यजीने परम तत्त्ववेत्ता श्री अञ्जनी कुमारजीसे प्रश्न किया कि—

श्रीरामे च कथं प्रीतिर्जायते पवनात्मज।
गृह दार कुटुम्बेषु वैराग्यं च कथं भवेत्॥ १॥

अर्थ—हे पवनात्मज! महान् कष्टोंके भोक्ता, दुःखी गर्भ जन्म, मृत्यु, नर्क आदि दुःसह तापोंसे तप्त संसारके जीव, घर, रमणी, कुटुंब तथा धनसे उपरत होकर श्री रामचंद्रपदारविन्दमें प्रेम करें ऐसा सरल उपाय कौन है? वह कृपा करके दर्शावें।

ऐसा प्रश्न सुनकर परम प्रसन्न हो पवनात्मजजी बोले कि—

कुम्भोद्भव परंश्रेयः श्रृणु तुभ्यं वदाम्यहम्।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं च सर्वदा॥ २॥

अर्थ—हे कुम्भोद्भव! तीनों कालमें परम गुप्त रखने लायक, परम कल्याणका मार्ग, मैं तुम्हे सुनाता हूं वह ध्यान पूर्वक सुनो—

ज्ञेयं प्राप्यस्यरामस्य रूपं प्राप्तुस्तथैव च।
प्राप्त्युपायः फलं चैव तथा प्राप्तिविरोधि च॥३॥
अर्थपञ्चकमेत्तत्तु संक्षेपेण वदामि ते।

अर्थ—प्राप्य अर्थात् प्राप्त करने योग्य प्रभु श्री रामका स्वरूप ज्ञेय अर्थात् जानने लायक है। प्रभुको प्राप्त करनेवाला जो जीव उसका भी स्वरूप ज्ञेय है। प्रभु प्राप्ति करनेके लिये उपाय कौन

कौन से हैं। उन उपायोंके द्वारा हमें क्या फल मिलेगा, और ईश्वर प्राप्तिके प्रतिबंधक अर्थात् विरोधी कौन कौन है इन विषयोंसे युक्त अर्थ पञ्चक मैं संक्षेपसे तुम्हे कहता हूं।

ऐसा कहकर श्री हनुमानजी प्रथम प्राप्य जो प्रभु उनके स्वरूपका वर्णन करते है।—
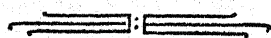
प्राप्य (ईश्वर) स्वरूपवर्णन

दिव्यानन्तगुणः श्रीमान् दिव्यमंगलविग्रहः ॥४॥
षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नो मनोवाचामगोचरः।
वेदवेद्यः सर्वसाक्षी सर्वोपास्यः स्वतन्त्रकः ॥५॥
नित्यानां निजभक्तानां भोग्यभूतः श्रियः पतिः।

अर्थ—श्रीपति श्री सीतापति भगवान् श्रीराम दिव्य तथा अनंत गुणोसें युक्त हैं दिव्य मंगलमूर्ति हैं, षड्गुण, ऐश्वर्य, युक्त हैं, मन, वाणी, तथा इन्द्रियोंसे अगोचर हैं, सर्व भूत मात्रके साक्षी हैं, सर्वोपास्य हैं, स्वतन्त्र हैं, नित्य मुक्त जो निज भक्त उन सबके भोग्यभूत हैं, अर्थात् भक्तगणोंके भोग्य हैं, आनंददायक हैं, तथा श्री जो सर्वेश्वरी सीता उनके पति हैं, स्वामी हैं—

ब्रह्मविष्णुमहेशानां कारणं सर्वगः प्रभुः ॥ ६ ॥

मूलं सर्वावताराणां धर्मसंस्थापकः परः।
द्विभुजश्चापभृच्चैव भक्ताभीष्टप्रपूरकः ॥ ७ ॥
वैदेहीवल्लभोनित्यं कैशोरे वयसि स्थितः।
एवंभूतश्च ज्ञातव्यो रामो राजीवलोचनः ॥ ८ ॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, तथा शंकरजीके कारण, सर्वव्यापक सर्वसामर्थ्यवान् समस्त अवतारोंके मूल, धर्मसंस्थापकोंमें सर्वश्रेष्ठ द्विभुज. धनुषबाणधारी, भक्तोंके अभीष्टोंकोपूर्णकरनेवाले, वैदेहीवल्लभ, नित्य नव किशोरावस्थामे स्थित, राजीवलोचन, श्रीराम परात्पर पूर्ण प्रभु हैं। ऐसा जानना चाहिये।

शास्त्रोंके प्रमाणानुसार तथा भक्तोंकी भावनानुसार ईश्वरके पांच स्वरूप माने जाते है

दोहा–अर्चा[१] अंतर्यामी[२] अरु विभव[३] व्यूह[४] सुखरास।
मथुरा पंचम रूप है प्रकृतिपार पर[५] खास॥

अर्चा १ अंतर्यामी २ विभव ३ व्यूह ४ और पर५ इन भेदोसें पांच प्रकारके ईश्वर स्वरूप माने जाते हैं

इति प्राप्य (ईश्वर) स्वरूपवर्णन

अर्चास्वरूप

उपल धातु या चित्रमय, प्रभुमूरत बनवाय।
प्रेम सहित पूजनकरै अर्चा सो कहवाय ॥

अनंत करूणाके सागर भक्तप्रेमाधीन भगवान् उसी मूर्तिमें आकर विराजते हैं जिसे कि भक्त प्रेम प्रकर्षद्वारा धातु, पाषाण, काष्ठ या चित्र की मूर्ति को अपना इष्टदेव मान लेता है। प्रभु प्रेमी अपनी इच्छानुसार हरिविग्रह बनवाकर जब बेद मंत्रोद्वारा प्रभुको आमंत्रित करता है तब लीलामय नटनागर उसी बहाने अपनी लीलाका विस्तार करनेको उस दिव्य विग्रहमें प्रादुर्भूत होते हैं और फिर भक्तोंको सुख देनेके लिये सदा अर्चा स्वरूपसे उसीमें विराजमान रहते हैं, उसीको प्रभुका अर्चा स्वरूप कहा जाता है।

भक्त जितनी श्रद्धा भक्तिसें उस मूर्तीकी सेवा पूजा करता है उतनी ही उसे प्रभु कृपा प्राप्त होती है।

हम लोगोंमें न योग या यज्ञ करनेकी ही शक्ति है और न जप, तप करनेकी ही शक्ति है अतः आज कालके कलिमलमय पामर प्राणियोंको तो सहज और सरल उपाय केवल प्रभु पूजन है।

आज काल के दो अक्षरोंके पढ़ने वाले **“मूर्तिपूजाऽधमाऽधमा”** इस शास्त्रके वचनको न समझकर कह बैठते हैं कि मूर्ति पूजक अधम भक्त है और दलील रखते हैं कि अपने हाथसे मूर्तिको बनाई तो मूर्तिके उत्पादक स्वयम् ही हुए तो फिर आपकी बनाई मूर्ति आपको क्या फल दे सकती है ?

मित्रो ! जरा विचार तो करो कि अपने हाथसें उत्पन्न किये हुए गेहुं, घी, गुड, माखन और दूध हमारा पालन पोषण करते हैं।

अपनी बनाई हुई औषधिसे हम रोग मुक्त होते हैं अपनीही बनाई हुई विष गोली हमारा नाश कर देती है, तो क्या परम पिताके तेजसंपन्न दिव्यगुणवान् प्रभुकी मूर्ति हमारा श्रेय नही कर सकेगी ?

हमारी बनाई मशीनें, यंत्र, हमें कितने दूर देश लेजाय, कितने को जलसें तारे, कितने को आकाशमे उडा लेजाय कितने को बांधे, कितने को मारे अर्थात् सब कुछ करे तो क्या प्रभुकी सर्व शक्ति संपन्न मूर्ति हमारा कल्याण न कर सकेगी ?

राजाकी आज्ञासे बना हुआ एक विलस्तका कागजका टुकडा, हजारोंको जेलमें भरे, हजारोंको बंदीमुक्त करे, हजारोंको राजा बनादे और हजारोंको रङ्क बनादेनेमें सशक्त है तो क्या दिव्यगुणयुक्त प्रभुकी मूर्ति हमारा कल्याण नहीं कर सकती है ?

मुसलमान रोज काबाकी ओर मुंह कर पांच वार नमन करते हैं। ईशाइयों को क्रोस विना चलता नही है। जब दूसरे देशके तथा दूसरे धर्मके लोग मूर्तिको इतना मान देते है, तब देव पूजक, मूर्ति पूजक हमारे भारतवासीलोग आज अपनी सनातनी प्रथाको भूलकर वेद और शास्त्र, स्मृतिओंके मतको उल्लंघनकर मूर्तिके विरोधक बन बेठे हैं। हाय अफसोस ! कलि राजा जब इतना भी न करेगा तो और करेगा क्या ?।

ब्राह्मण, गुरु, संत, भक्त, माता, पिता, गौ, अभ्यागत, वृद्ध और माननीय पुरूषों की दैहिक पूजा होती है, उनको जैसे सुख प्राप्त

हो जिस तरह उनके हार्दिक आशिर्वाद प्राप्त हो सके वैसी सेवा करनी चाहिये ।

मूर्ति पूजाके प्रतिपादक अनेको धर्म ग्रंथ विद्यमान हैं जिनके प्रमाण प्रबलतर माने जाते हैं । यदि वह धर्म ग्रंथ सच्चे न होते और उनसे सच्चा अनुभव न होता तो आजतक दुनियाके लोभी लोगोंने और पाखंडी धूर्तोने उन धर्मग्रंथोको व्यर्थ समझकर कबके नष्ट कर दिये होते. परन्तु वात तो उससे विपरीतही है हमारे धर्मशास्त्र सच्चे हैं माननीय हैं, श्रेष्ठ है और शक्तिमान हैं तभी तो यवनों के अनंत उपद्रवों को झेलते हुए भी आजतक टिके हुए हैं। आजतक हमारे उन्नति मार्गके पथ प्रदर्शक हो रहे हैं। अतः प्रत्येक आस्तिक प्रजाके लिये मूर्तिपूजा शास्त्र और युक्तिसे सिद्ध है—

पद्मपुराणमें लिखा है कि—

जम्बूद्वीपे महापुण्ये वर्षे वै भारते शुभे ।
अर्चायां सन्निधिविष्णुर्नेतरेषु कदाचन ॥

तस्माद्वै भारते वर्षे मुनिमिस्त्रिदशैरपि ।
सेव्यते ऋषिभिर्देवि तपो यज्ञ क्रियादिभिः ॥

अर्थ—हे देवि ! इस पृथिवीमें, जम्बू द्वीपमें, भारतवर्षमें भगवान् विष्णु सदा पूजा द्वारा सानिध्यताको प्राप्त होते हैं। दूसरे उपायोंसे प्राप्त नही होते हैं । इस लिये भरतखण्डमें मुनि और देवताओंसे यज्ञ तपादि क्रिया द्वारा सर्वदा प्रभुपूजित होते हैं ।

अर्चावतारी प्रभु परम स्वतन्त्र होते हुए भी पराधीन, सर्वज्ञ होते हुए भी अज्ञ, सर्व शक्तिमान होते हुए भी अशक्त, निखिल आप्त काम होते हुए भी सकाम, चेतन होते हुए भी जड्वत्, अगोचर होते हुए भी दृष्टिगोचर, और ब्रह्मा, महेश, आदिक देवोंको भी दुर्लभ प्रभु अर्चावतारमें परम सुलभ हो जाते हैं धन्य है उनकी भक्तवत्सलताको ।

अर्चावतारके लिये किसी देश किसी काल किसी अधिकारी और किसी और नियमोका बंधन नही है सहृदय प्रभुप्रेमी जिस कालमें और जिस देशमें उत्कट उत्कंठा करता है उसी समय और उसी देशमें प्रभु स्वयं अपने सौलभ्य गुणके साक्षात् दर्शन देते हुए प्रकट हो जाते हैं ।

अर्चावतार के दिव्य विग्रहोमें **'रूचिजनकत्व'** अर्थात् दर्शक को अपनी और आकर्षित करना, भक्तके हृदयमें दर्शन करनेकी रुचि उत्पन्न करना, और **'अशेषलोकशरण्यत्त्व'** अर्थात् अपने शरण आये हुए प्रपन्नकी सदा रक्षा करना, उसके समस्त कष्टोंको निवारण करना और **'अनुभाव्यत्व'** अर्थात् उपाय रूपसे स्वीकार करनेवाले भक्तोंके अवगुण न देखकर शरणागत मानकर उसके ऊपर अपार करुणा करना, उसे सांसारिक भयोंसे मुक्तकर निर्भय और शाश्वत धाममें बसाना ये तीन गुण सदा परिपूर्ण रहते हैं।

उसी अर्चास्वरूप के महान् पुरुषोने चार भेद प्रदर्शित किये हैं।

स्वयंव्यक्तश्च दैवश्च सैद्धो मानुष एवच ।
देशादौ हि प्रशस्ते स वर्तमानश्चतुर्विधः ॥

स्वयंव्यक्त १ दैव्य २ सैद्ध ३ और मानुष ४

स्वयंव्यक्त स्वरूप उसको कहते है जो विग्रह स्वयं उत्पन्न हुआ हो देव, नर, यक्ष, गंधर्व, नाग, आदि किसीका बनाया हुआ न होय जैसे श्रीशालग्राम श्रीरङ्ग, वेङ्कटेश, श्रीअयोध्याजीमें कालेरामजी (जिनको त्रेताके हरि कहते हैं) ओडछामें श्रीरामराजा इत्यादि—

दैव्य स्वरूप उसको कहते है जिनको देवताओंने स्थापित किये हों ।

सैद्ध स्वरुप उनको कहते है जिनको लब्ध प्रतिष्ट सिद्ध संत जनोने स्थापित किये हो ।

मानुष विग्रह दो प्रकार के है ग्रामार्चा और गृहार्चा.

पद्मपुराण का वचन है—

अथवा स्थापनं विष्णोः स्वगृहे तद्विशिष्यते ।
मृच्छिलादारुलोहाद्यैः कृत्वा प्रतिकृतिं हरेः ॥

अर्थ—मृतिका, पाषाण, काष्ट, लोह, आदिकी मूर्ति बनवाकर अपने घरमें भगवान् विष्णुका पूजन करता है वह श्रेष्ठ है । बस यही गृहार्चा है । जिन भावुक भक्तोको, स्वयंव्यक्त मूर्तिके दर्शन रोज नही मिल सकते हैं, अयोध्या आदि तीर्थोमें जिनका नित्य वास नहीं

है वे अपने घरमें प्राण प्रियतमकी मूर्तिका प्रेम सहित पूजन करते हैं वही गृहार्चा है।

ग्रामनिवासी पांच सज्जन एकत्रित होकर सुंदर मोक्षधाम मंदिर बनवाकर उसमें प्रभु विग्रह स्थापित करते हैं और ग्रामके सज्जन मिलकर उस प्रभु प्रतिमाकी प्रेमसे पूजा करते हैं उसको ग्रामार्चा कहते हैं।

उपरोक्त भगवत विग्रह सब समान शक्तिशाली हैं परंतु इनमें भी स्वयं व्यक्त श्रीशालग्राम भगवान्‌की पूजा सरल और सर्व श्रेष्ठ है. हारीत स्मृतिमे कहा है——

शालग्रामशिलायां तु पूजनं परमात्मनः।
कोटिकोटिगुणाधिक्यं भवेदत्रन संशयः॥

अर्थ——शालग्राम शिलामें परमात्माका पूजन करनेसे करोड करोड गुण अधिक फल प्राप्त होता है इसमें किसी प्रकारकी शंका नही है।

लिङ्ग पुराणमें शिवजी स्वामी कार्तिकेयसे कहते है——

कामासक्तोऽपिक्रुद्धोऽपि शालग्रामशिलार्चनम्।
भक्त्या वा यदि वाऽभक्त्या कृत्वामुक्तिमवाप्नुयात्॥
लिङ्गकोटिसहस्रैस्तु पूजितैर्यत्फलं भवेत्।
तत् फलं कोटि गुणितं शालग्राम शिलार्चनात्॥

अर्थ——कामी और क्रोधी मनुष्य भी श्रद्धासे या अश्रद्धासे जो

सदा श्रीभगवान् शालग्राम देवका अर्चन करता है तो वह परम पद को प्राप्त करता है हजारो और करोडो वार लिङ्ग पूजनसे जो फल प्राप्त होता है उससे भी कोटि गुण फल श्री शालग्राम पूजन से मिलता है।

स्कंद पुराणमें शिव स्कंद संवादमें कहा है—

कल्पकोटिसहस्रैस्तु पूजिते मयि यत्फलम् ।
तत्फलं कोटिगुणितम् शालग्रामशिलार्चने ॥
प्रमाणमस्ति सर्वस्य सुकृतस्यहि पुत्रक ?
फलं प्रमाणरहितं शालग्रामस्यपूजनम् ॥

अर्थ—हजार करोड कल्प तक मेरे पूजनसे जो फल प्राप्त होता है वह फल श्रीशालग्राम पूजन द्वारा मिलता है हे पुत्र! समस्त पुण्यफलकी तो अवधि है पर श्री शालग्राम पूजनका फल तो अनंत और असीम है।

बृहन्नारदीय पुराणमे कहा है—

शालग्राम शिलारुपी यत्र तिष्ठति केशवः ।
न बाधन्ते ग्रहास्तत्र भूत वैतालकादयः ॥
शालग्राम शिलायत्र तत्रतीर्थं तपोवनम् ।
यतः सन्निहितस्तत्र भगवान् मधुसूदनः ॥

अर्थ—श्री शालग्राम शिलारूपी भगवान केशव जिस स्थल पर विराजमान रहते है वहां भूत, प्रेत, वैताल ब्रह्मराक्षस, तथा उग्र ग्रहादिकोंकी पीडा नही होती है।

शालग्राम शिला जिस जगह पर रहती है वही तीर्थ है वही तपोवन है कारण कि जहां भगवान् मधुसूदन रहते है वही तीर्थ या तपोवन कहाता है ?

जहां राम तहां अवधनिवासू। जहां संत तहां तीरथवासू॥

इत्यादि प्रमाणोसें विदित होता है कि हमारे शास्त्रोमें श्री शालग्राम मूर्ति की अपूर्व महिमा है शालग्राम शिलामें भी कोई सीताराम कोई रघुवीर कोई लक्ष्मीनारायण, कोई नृसिंह कोई हिरण्यगर्भ इत्यादि अनेक प्रकारके विग्रह होते हैं।

शालग्रामजीके सब विग्रह सर्वश्रेष्ट और पूजनीय है। सच्चे प्रेमीको भक्तको सभी विग्रह समान रूपसे अभीष्ट प्रदान करते है परंतु जैसे समस्त भगवत् विग्रहोमें शालग्रामविग्रह श्रेष्ट है और बिना शालग्राम शिलाके पूर्ण पूजन नही माना जाता है चरणामृतमें भी यदि शालग्रामका चरण जल न हो तो वह चरणामृत नही माना जाता है। प्रत्येक मंदिरों में बड़े बड़े विग्रहोके रहते हुए भी शालग्रामजीकी आवश्यकता रहती है इससे यह माॡम होता है कि अन्य विग्रहों से श्री शालग्राम शिला श्रेष्ट हैं उसी तरह समस्त शालग्राम मूर्तियों में भी श्रीसीताराम विग्रह श्रीराम उपासक वैष्णवोके लिये सर्व श्रेष्ठ हैं। अतः यहां श्रीसीताराम शालग्राम विग्रहके चिह्न एक दो शास्त्रोंके मतसे लिखता हूं।

एकस्मिन्नेव वदने चतुश्चक्रोम्बुदप्रभः।
चापबाणाङ्कुशश्च छत्रध्वजचामरसंयुतः॥

वनमालाधरोदेव सीताराम प्रकीर्तितः ।
सर्वसौभाग्यदः प्रोक्तः सर्वत्रविजयप्रदः ॥

(ब्रह्मपुराणे)

अर्थ—जिन शालग्रामजीके एक मुखमें चार चक्रहो और धनुष, बाण, अंकुश, छत्र, ध्वज, चामर और वनमाला ये चिह्न श्री अंग पर चिन्हित हो वह श्री सीताराम शालग्राम कहाते हैं उनकी पूजा करनेसे सौभाग्य तथा सर्वत्र विजय प्राप्त होती है। जैसे हस्तमें हस्ती, ध्वज, चंद्र, पताका, आदि चिह्न होते हैं वैसे ही श्री शालग्राम शिलामे भी रेखायें अंकित होती है। श्री सीताराम मूर्ति अत्यंत श्याम चिकणी और तेजस्वी होती है। पद्मपुराणमें भी कहा है—

अंतक्षतेनधनुषा गोखुरेण च लाञ्छितः ।
बिलत्रयसमायुक्तः खड्गदर्शनसंयुतः ॥
श्यामलोन्नतपृष्ठश्च स्थूलजम्बूफलाकृतिः ।
सीतारामः सविज्ञेयो दुर्लभो भुवनत्रये ॥

अर्थ—जो शालग्राम शिला अत्यन्त घनश्याम हो, पीठ सें उंची हो निचे बैठककी तरह बनाहो जांबू के फलके समान ही आकार हो तीन मुख हो तीनो मुखमें दो दो चक्र हो मुख के भीतर धनुषका आकार हो श्री अंग पर गोखुर, खड्ग, आदिक चिह्न हो वह त्रिभुवनमें दुर्लभ श्रीसीताराम मूर्ति शालग्राम माने जाते हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक शालग्राम मूर्तिओंका वर्णनशास्त्रोंमे पाया जाता है। परन्तु मुख्य वात है श्रद्धाकी। यदि श्रद्धा न हुई तो यथार्थ

फल शीघ्र प्राप्त होना असंभव है। भक्तको जो विग्रह प्रिय लगे जिसकी ओर मनका प्रबल आकर्षण हो उसी विग्रहकी प्रेमसहित अर्चा करनी चाहिये. कितने महान् पुरूषोका और स्मृतिकारोंका मत है कि सम संख्यामे दो शालग्राम मूर्ति और विषम संख्यामें तीन शालग्राम मूर्तिका पूजन निषेध है अर्थात् एक शालग्रामजीका पूजन करे या तो फिर चार, पांच, छ आगे जितने बने उतने विग्रहोंकी पूजा करे। परंतु दो और तीन शालग्राम विग्रहोंका पूजन न करे।

आवाहनासनाभ्यां च पाद्यार्घ्याचमनैस्तथा।
स्नान वस्त्रोपवीतैश्च गन्धपुष्प सुधूपकैः॥
दीप नैवेद्य ताम्बूल प्रदिक्षण विसर्जनैः।
षोडशार्चा प्रकारै स्तमेतैरर्चेत्सदा सुधीः

इस प्रकार अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, चंदन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आरति, स्तुति, प्रणाम, प्रदक्षिणा आदि उपचारोंसे षोडश प्रकारसे नित्य प्रेम, श्रद्धा, विश्वास और सदाचरण सह भक्ति द्वारा जो प्रभु पूजन करता है वह भक्त परम शुद्ध हो जाता है उसके मनोमल नाश हो जाते हैं और उसके हृदयमें सर्व व्यापी, सर्व नियंता सर्व शक्तिमान् परम भक्तवत्सलपरात्पर पूर्णब्रह्म प्रभुका प्रकाश होता है और ध्यान धरते मात्र ही सर्वेश्वर भगवान् के दिव्य दर्शन प्राप्त होते है—

इति अर्चास्वरूप वर्णनम्।

अन्तर्यामिस्वरूप

दोहा–अन्तर्यामी भेद युग, रूप अरूप विचार।
भक्त हृदयमें रूप सह इतर अरूप ही धार॥

घट्‌घट्‌में, अणु परमाणुमें, चर अचरमें, जड़ चेतनमें जो व्यापक रूपेण वास करता है उसका नाम है सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी। सदा प्रभुकी लीला गुण और रूपमें निमग्न प्यारे लाडिले भक्तोंके हृदयमें प्यारा प्रियतम प्रभु सर्वदा मूर्तिमान् होकर बिराजता है। भक्तको जो स्वरूप ईष्ट है, जो रूप प्यारा है, भक्त प्रभुके जिस स्वरूप पर अपना तन, मन, धन प्राण कुर्बान करता है भक्तभावन प्रभु उसी स्वरूपसे उसके हृदयमें विराजमान रहते हैं। उसीका नाम है मूर्त अन्तर्यामी। अपर स्थलोंमें अमूर्त अर्थात् अव्यक्तरूपेण वास करते हैं उसीको अमूर्त अंतर्यामी कहते हैं। प्रभु सर्वव्यापक हैं। जैसे अग्निरहित कोई भी काष्ट नही है वैसे ईश्वर रहित कोई भी स्थल नही है। जलमें, थलमें, आकाशमें सर्वत्र श्रीहरि व्यापक हैं—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेमते प्रगट होइ मैं जाना॥

जब भक्तका प्रेम पराकाष्टाको प्राप्त होता है तब तो वह भक्त हिंसक जीवोमें और महाभयंकर प्रेतोमें भी अपने ही प्रियतमकी प्रतिमाके दर्शन करता है।

उस रोज भक्तवर श्रीनामदेवजी भी प्रेतको देखकर बोल उठे थे—

ओ आये मेरे लंबकनाथ। जोजनभरि भरि लंबे हाथ॥

उस समय उनका सच्चा भाव था तो प्रभु प्रेतमेंसे भी प्रकट हो गये। एकरोज प्रभुको नामदेवके परम प्रेमके वश होकर श्वानके शरीरसें भी प्रकट होना पडाथा.

भागवतरत्न प्रहलादको उनके दुष्ट पिताने जब प्रबल ज्वलंत अग्निमें डाल दिया, गोदमें लेकर बैठनेवाली हिरण्यकशिपुकी दुष्टबुद्धि वाली बहिन जलकर खाख होगई परन्तु भक्तको आंचकी एक भी लपट जलानेमें समर्थ न हुई, इस महान् आश्चर्यको देखकर दैत्यराजने अपने पुत्रसे पूछा कि बेटा प्रहलाद! तुम कुछ यंत्र, मंत्र, या तंत्र जानते हो कि ऐसी प्रचंड अग्नि तुम्हारा बाल भी बांका न कर सकी? इसको सुनकर धैर्य तथा अद्भुत आनंदके साथ भक्तराज बोले—

तातैष वह्निः पवनेरितोऽपि
न मां दहत्यत्र समं ततोऽहम्।
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि
शीतानि सर्वाणि दिशाम्मुखानि॥

अर्थ—हे पिताजी! पवनसे प्रेरित अत्यन्त प्रचंड पावक मुझे नही जला सकता है इसका एकमात्र यही कारण है कि मैं इस प्रचंड पावकमें भी सर्वान्तर्यामी प्रभुकी प्रेम प्रतिमाको ही देख रहा हूं, इसी लिये मुझे समस्त दिशाएं परम शीतल प्रतीत हो रही हैं।

जीवका, स्वर्गमें, नरकमें, महीतलमें, गर्भमें, और भी समस्त स्थलोंपर सचा सखा केवल परमात्मा ही है—

 स्वर्ग नर्के प्रदेशेऽपि बन्धुरात्मस्य केशव।

जीव जबतक उस सर्वान्तर्यामी सर्व[illegible]क प्रभुको भूला है तभीतक उसे समस्त दुख है और जब सर्व जगह पर दुःखहारीका दर्शन करेगा बस, उसी क्षण उसके सब दुःसह दुःख नाश हो जायगें।

योगीजन सदा सुखी रहते हैं उसका कारण यही है कि वह सर्वत्र श्री रामको देखते हैं राम शब्दका अर्थ ही है।

रमन्ते योगिनोऽनंते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥
और—रामो रमयतां वरः।
रमते सर्वेषु भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च॥

अर्थात्—सत् चित् आनंद स्वरुप प्रभु पूर्णब्रह्म श्रीराम सदा योगिगणोंके हृदयमें रमण करते हैं। श्रीराम समस्त रमण करने वालोंमें श्रेष्ठ हैं। सर्व भूतमात्रमें, स्थावरमें, चरमें, जड चेतनमें, व्यापक परब्रह्म श्रीराम हैं—

उपनिषद्में ईश्वर के अन्तर्यामी स्वरूप का वर्णन है कि—

"सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्तस्थितान्येव एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येषयोनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ"

(रामतापनी)

अर्थ—श्रीसीतारामजीही यहां पर पूजनीय हैं, उन्हींसे चौदह भुवन उत्पन्न हुए हैं। यही सर्वज्ञ हैं। यही सर्वान्तर्यामी हैं। यही समस्त सृष्टिके उद्भव और प्रलयके कारण हैं। इत्यादि अनेकशः प्रमाणों

से विदित होता है कि सर्वेश्वर प्रभु अंतर्यामिरूपेण सदा सर्वत्र विद्यमान है।

जबतक कोटिकंदर्पलावण्यधाम मनोभिराम प्रभुके दर्शन हृदयमें नही होते हैं तबतक कितनेभी यज्ञ करो जप करो शास्त्राध्यन करो यम नियम सदाचार शौचका पालन करो तो भी वह बिल्कुल निष्फल है।

पठतु सकलवेदं शास्त्रपारङ्गतो वा
यमनियमपरो वा धर्मशास्त्रार्थकृद्वा।
अटतु सकल तीर्थं व्राजको वाहिताग्नि-
र्नहि हृदि यदि रामः सर्व मेतद्वृथा स्यात् ॥

अर्थ—भले चारों वेदोंको पढ़लो समस्त शास्त्र पाराङ्गत हो जाओ, यम नियम सदाचार पालो, धार्मिक शास्त्रार्थमें विजय प्राप्त करलो, समस्त तीर्थोंका भ्रमण करो, पंचाग्नि तापो, या अग्निकी उपासना करो, समस्त संसार त्यागकर सन्यासी हो जाओ, परंतु हृदयमे अंतर्यामिरूपेण विराजित प्रभुका दर्शन न कर सके तो उपरोक्त समस्त उपचार वृथा है।

आज हमलोग बड़ी बड़ी धार्मिक चर्चाएं करते हैं, अपने को धर्मके ठेकेदार मानते हैं, प्रभु सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामि हैं, इस विषय पर बडे लंबे चौडे लेख लिखते हैं, और भारी भारी व्याख्यान देते हैं, तर्क और शास्त्रद्वारा ईश्वर के अस्तित्वका पूर्ण मंडन करते हैं, परन्तु जो अपने हृदयको देखें अपने अंतःकरणको टटोलें तो मालूम

होगा कि वास्तवमें हम घोर अंधकार में पडे हैं। हमारे हृदयमें घोर अत्याचारमय विचार वमंडल उठ रहा है प्रभुको अंतर्यामी मानते हुए भी अंतरमें द्वेष, कपट, क्रोध, मत्सरता, घमंड, विषयलालसा आदिक घृणित भाव भरे रखे हैं और भरते भी जाते हैं। अतः चेतो और प्रथम अपने मनोमंदिरको साफ करो। उसमें सद्विवेक, प्रभुप्रेम, श्रद्धा, विश्वास, विश्वप्रेम, सत्य, अहिंसा, विषयवैराग्य आदिक सद्गुणोंको स्थान दो। तभी तुम्हारा और हमारा हित है अन्यथा वंचकभक्त बननेसे आजतक किसीका कल्याण न हुआ है और न होगा. अवसर वारंवार प्राप्त नहीं होता है इससे शीघ्र ही अंतर में अंतर्यामी के दिव्य दर्शनकर जीवन कृतार्थ बनाओ—

।इति अंतर्यामि स्वरूप।

विभवस्वरूप

संसारमें जब जब अधर्मी, पापी, अत्याचारी कामी कलही, गोघातक, ब्रह्मघातक, देवघातक, पृथिवीपीडक, और महादुष्ट स्वभावके दानवों की वृद्धि होती है। धार्मिक प्रजाकी अवनति होती है चारों तरफ दुःसह दुःखोंका दावानल धधकने लगता है ब्राह्मण गौ और देवता लोग त्राहि त्राहि पुकारने लगते हैं तब तब आर्तिहरण अशरण शरण दीनबन्धु गोद्विजब्राह्मणोद्धारक प्रभु अपनी भक्तवत्सल-

ताका पूर्ण परिचय दिखाते हुए समयोचित नाना प्रकारके रूप धारण कर अवतीर्ण होते हैं। इसी अवतारस्वरूपका नाम है विभव स्वरूप।

श्रीमुख वचन है कि:—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

अर्थ—जब धर्मकी अवनति और अधर्मकी उन्नति होती है तो हे भारत ! युग युगमे मैं स्वयं उस समय प्रकट होता हूं। साधु सज्जनोंके रक्षणार्थ पापी प्राणियोंके विनाशार्थ और धर्मके स्थापनार्थ मैं समय समय पर अवतीर्ण होता हूं। कैसा दृढ़ आश्वासन है। कैसी अनुपम प्रतिज्ञा है? बलिहारी है प्राणजीवन के इस वचन की?—

रामायणमें भी—

जब जब होय धर्मकी हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी
तव तब प्रभु धरि विविधशरीरा। हरहिं कृपानिधिसज्जन पीरा
(बालकाण्ड)

हमारे वेदोंमें और शास्त्रोंमें प्रभुके समस्त अवतारोंका प्रतिपादन है। मैं तो यहां संक्षेपसे दोचार अवतारोंके विषयमें शास्त्रोंके प्रमाण उद्धृत करता हूं—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमे महर्षि विश्वामित्रजी समुद्र मथनकी कथा सुनाते हुए कहते हैं कि—

इति श्रुत्वा हृषीकेशः कामठं रूपमास्थितः ।
पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिश्ये तत्रोदधौ हरिः ॥
पर्वताग्रं लोकात्मा हस्तेनाक्रम्य केशवः ।
देवानां मध्यतः स्थित्वा ममन्थ पुरुषोत्तमः ॥

अर्थ——देवताओकी स्तुति श्रवण कर भगवान् हृषीकेशने कच्छप रूप धारणकर पर्वतको पीठ पर धारणकर समुद्रमें शयन किया, फिर पर्वतके अग्र भागको केशव भगवान्ने थांभ कर समुद्र मथना प्रारंभ किया ।

वाराहेण पृथिवी संविदाना शूकराय विजिहीते मृगाय
(अथर्व काण्ड-१० अनु १)

अर्थ——वाराहरूपधारी परमेश्वरने पृथिवीका उद्धार किया–
और भी–

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शत बाहुना ।
(तैति० अ० प्र० १ अनु० १ मंत्र-३०)

वामनो ह विष्णुरास ।

अर्थ——वामन साक्षात् विष्णु है ।

मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ।
कठ० वल्ली० ५-मं० ३

अर्थ——मध्यमें आसीन वामन की विश्वदेव उपासना करते हैं ।

एतद् घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोत्का वाचेति—
(छां० उ० प्र० ३-खडं० १७)

अर्थ—यह उपदेश घोर आंगिरसने देवकी पुत्र कृष्णको करके मुझसे कहा—

श्रीमद्रामावतारके विषयमें—

"भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसाराञ्जारोभ्येति पश्चात् सुप्रकृतैर्द्युभिरग्नि र्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभिराममभ्यस्थात् "

(उतरार्चिके. १५-अ० २-खंड. १ सू० ३)

अर्थ—(भद्रः) श्रीरामचंद्रजी (भद्रया) श्रीसीताजी सह (सचमानः) सुसज्जित होकर (आगात्) दण्कारण्यको गये तब (स्वसारम्) सीताजीका हाथ पकडनेको (जारः) रावण (अभ्येति) आया (सुप्रकृतैः) अच्छे चिन्होंसें (द्युभिः) द्यूलोककी साधनभूता रामपत्नि सहित (अग्निः) अग्निदेवता (रामम्) रामके सन्मुख (अभ्यस्थात्) उपस्थित होता है। श्रीसीताजीके अवतारके विषयमें

अर्वाची सुभगे भवसीते ? वन्दामहे त्वा ।
यथा नः ससि यथा नः सुफला ससि ॥

ऋ० ३-८-९

हे राक्षसोंका नाश करनेवाली श्रीसीताजी ! मैं तुम्हे प्रणाम करता हूं मुझे सुभग ऐश्वर्य प्रदान करो, प्रतिपक्षका नाश करो मेरे अनुकूल हो।

इत्यादि तरहसे शास्त्रोंमे और वेदोंमे ईश्वरावतार प्रतिपादित अनेकशः प्रबल प्रमाण प्राप्त होते हैं उसी अवतार स्वरूपकी भक्ति को ही विभवोपासना कहते हैं।

आज कालके हमलोग हीनबुद्धि, अश्रद्धालु, पापमय, साधन-विहीन, आलसु, कपटकलेवर, मोहमायाविजडित, विद्या बलहीन ईश्वरको तर्कद्वारा सिद्ध तथा असिद्ध करनेका घोर पाप करते हैं प्रेम और विश्वास द्वारा जिसके स्वरूपका ज्ञान होता है। उसकी कृपा विना महाज्ञानी और महान् तत्ववेत्ता विज्ञ पुरुषभी उसके स्वरूपको नही जान सकते हैं, तो भला उसी पूर्ण ब्रह्म परमात्माके स्वरूपको हम तुच्छसे भी तुच्छ तर्कशक्ति द्वारा कैसे अनुभव कर सकते हैं? कदापि नही। परंतु करें तो क्या? आज समस्तविश्व इसी प्रवाहमे वहा जा रहा है। क्या ज्ञानी क्या मूर्ख, क्या भक्त क्या अभक्त, क्या वैरागी क्या गृही सभी आज तर्क द्वारा ही ईश्वरको पकडना चाहते हैं। हमारे कितने भाई ये दलीलें रखते हैं कि—

(१) ईश्वर तो अजन्मा है उसका जन्म नही होता है तब फिर ईश्वरने अवतार कैसे लिया।

मित्रो! ईश्वर अजन्मा है अर्थात् अमुक संवत् अमुक तिथी और अमुक मासमे ही ईश्वरने जन्म लिया है अब प्रभु इतनी अवस्थाके हैं, इसके आगे ईश्वर नही थे, ऐसी वात नही है। वह अजन्मा है जब समस्त जगत्का प्रलय हो गया था तब भी वह विराजमानथा. इस समय वह है और आगेभी ऐसा बना रहेगा. अर्थात् ईश्वर अनादि और अनंत है परन्तु जब उसकी इच्छा कुछ नरलीला करनेकी होती है अपनी प्रजा किस तरहकी है, वह अनुभव प्रजाके साथ मिलकर प्रजा जैसे बनकर करनेकी इच्छा होती है, तब प्रभु लोगोंको दिखलानेके

लिये और भक्तोंको आनंद देनेके लिये विविध प्रकारसें प्रकट होते हैं। अतः ऐसी शंका करनीही न चाहिये।

ईश्वरके अजन्मा होनेका इतनाही अर्थ है कि वह कभी किसी कर्मके पराधीन होकर सांसारिक जीवोंके समान गर्भक्लेशको नही सहन करता। स्वेच्छा और दयावश होकर वह अनेक तरह जीवोंके बीचमें उन्हें कृतार्थ करनेके लिये पदार्पण करता ही है। सर्वशक्तिमान् प्रभुके लिये ऐसी कोईभी वात नही है कि जो उसके लिये असंभवहो। जो निखिल संसारकी सुंदर रचना करता है, पालन करता है, प्रत्येक स्थलों पर अन्तर्यामिरूपेण वास करता है और साकेत गोलोकादिमे नित्य विहारभी करता है उसमें अवतार धारण करनेकी भी सत्ता है।

प्रश्न (२) आप कहते है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है तो फिर विना अवतार लिये ही दुष्टदलन, संतपालन, धर्मरक्षा आदि कार्य कर लेते। ऐसी कौनसी बडी भारी आवश्यकता पडी जो कि अवतार धारण किये विना नही चलता ?

उत्तर—बंधुओ! क्या आप ईश्वरके इनसपेक्टर हैं? क्या आप ही प्रभुके परीक्षक हैं? क्या आपही ईश्वरके मालिक हैं कि हरदम पूछा करें कि तुमने ये काम क्यों किया? ऐसा क्यों किया? ऐसा क्यों न किया, मैं आपसे ही पूछता हूं कि आप सुबह क्यों उठे? आपने स्नान क्यों किया? यदि कहें कि ऐसा न करें तो बीमार हो जाँय. तो रोग मुक्त होनेका कुछ दूसरा उपाय कर लेते, आपने आज अमुक २ शब्द क्यों कहे? भाई आप अपने हरेक व्यवहारोंका और कर्तव्योंका यथार्थ उद्देश्य नहीं

समझा सकते तो फिर प्रभुकी अपार और अद्भुत लीलाओंके हेतुको कैसे जान सकते हैं। क्या आप प्रभुके प्रत्येक कार्य पर मीमांसा करते हैं कि केवल अवतार खंडनके लिये ही मीमांसाचार्य बने हैं। आपको यदि अपनी बुद्धिका भारी गर्व है तो आप दया करके इतना तो बताइये कि ईश्वरने ब्रह्माण्डमे दानव, शेर, साँप, बिच्छू, ग्राह आदिक ज़हरीले और प्रपीडक प्राणियोंको क्यों रचा, जिनके अस्तित्वसे दुःख भय, और मृत्युके सिवा और कुछ भी लाभ नही है।

ईश्वरने अनंत ब्रह्माण्ड क्यों रचे? समस्त प्राणियोंके कर्मोंका बोझा अपने शिर पर रखनेकी क्या जरूरत? कांटा, कंकड, हैज़ा, प्लेग, महामारी और अनेक बीमारियोंको रचनेकी क्या जरूरत? इन सबका तो समाधान कर सकते नहीं है, अंतमे यही कहना पडता है कि ईश्वरकी गति गहन है। तब व्यर्थ ही ईश्वरके अस्तित्वको मिटिया मेट करनेके लिये क्यों उद्यत हुए हैं? स्वयं घोर पापके अधिकारी बन कर दुःखसागरमें क्यों डूबते हैं? अस्तु—

प्यारे सनातनी धर्मियो! मनस्वी मित्रो! प्रभु सर्वशक्तिमान् हैं। वह लवनिमेष मात्रमें ही दुष्टोंका दलन, सज्जनत्राण, और धर्मकी स्थापना कर सकते हैं। परन्तु महात्माओ द्वारा सुना जाता है कि प्रभु परमदयालु हैं प्रेमाधीन हैं मनुष्यावतार धारण कर एक महत् मर्यादाकी तथा आदर्शकी स्थापना करते हैं। श्रुति कहती है कि "**नतत्समः**" उसके समान कोई नही है तो फिर वह स्वयं प्रादुर्भूत न होते तो जगत्को प्रभुतद्वत् सुंदर अनुपम, और अपूर्व आदर्श कहांसे प्राप्त होता, लोकमें इसी महान् कमीकी पूर्ति करने लिये ही भगवान् अवतार

धारण करते हैं। भक्तप्रवर श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामजीकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि—

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्य शीक्षणं
रक्षो वधायैव न केवलम् विभोः"

(भागवत स्कं० ५ अ० १८)

हे मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम! आप केवल दुष्ट निधनार्थ ही प्रकट नहीं होते हैं प्रत्युत जगत्मे शुद्ध और सच्चा मार्ग कौनसा है, प्रत्येक प्राणीका क्या धर्म है, और कैसे चलना चाहिये उसको दर्शानेके लिये एक महान् आदर्शरूपेण अवतीर्ण होते है।

यथार्थमें अवतारके निगूढ तत्वोंको तो वेही संत पुरुष जान सकते हैं जिनके ऊपर परमात्माकी अपार कृपाहो, परन्तु यह बात तो निश्चय है कि अवतार के रहस्योंको न समझकर, क्षीणबुद्धि होनेसे प्रभुकी आश्चर्यमय लीलाओंको (जो लीलीएं शिव ब्रह्माके मनमें भी भ्रम डाल देती हैं) न समझनेसे यही कह बैठनेवाले कि ईश्वर अवतार धारण करही नही सकता, अवतारकी गाथाएं कपोल कल्पित हैं; वह अवश्य पतित हो जाते हैं और अंतमे कठिन यमयातनाके भोक्ता बनते हैं। वेद, पुराण, शास्त्र और सज्जनोके मतसे ईश्वरावतार सिद्ध है इस लिये धर्म प्रेमी भाइओंको ऐसी शंकाओंको निर्मूल कर देनी चाहिये—अस्तु

ईश्वर के विभव स्वरूपके चार भेद माने जाते हैं।

पर १ शक्ति २ आवेश ३ गौण ४

चारो अवतारोंके हेतु और उद्देश्य एक ही होते है रूप गुणोंमे

अवश्य फेरफार होता है। श्रीराम परात्पर अवतार है श्रीकृष्ण नृसिंह वामन ये पर अवतार है समस्त अवतारोंके अवतारी श्रीराम है यथा—

सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः।

और—

वासुदेवादि मूर्तीनां चतुर्णां कारणं परम्।
चतुर्विंशति मूर्तीनामाश्रय, शरणं मम॥

" समस्त अवतारोंके अवतारी (कारण) श्री रामजी ही हैं। वासुदेव संकर्षण, अनिरुद्ध आदि चतुर्मूर्तिओंके और चौवीसों अवतारोंके कारण भगवान् श्री रामजीका आश्रय मेरा शरण है।

महारामायणमे भी—शंकर वाक्य—

मत्स्यः कूर्मो वाराहो नरहरिरतुलो वामनो जामदग्न्यः,
सभ्राता कंसशत्रुः करूणमयवपुर्म्लेच्छ विध्वंसनश्च।
एते सर्वेऽपि चान्ये तरणिकुलभुवो यस्य जाताः कलांशैः,
तं व्याप्तं ब्रह्मतेजो विमलगुणमयं रामचन्द्रं नमामि॥

" मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, बलराम, कृष्ण बुद्ध, कल्की आदिक शुभ अवतार जिस प्रभुकी अंश कलासे उत्पन्न होते हैं ऐसे विमलगुणमय भानुकुलोद्भव भगवान् श्रीरामको वारंवार नमस्कार करता हूं "

"अवतारा बहवः संति कला चांशविभूतयः।
राम एव परं ब्रह्म सच्चिदानंदमव्ययम्॥
ब्रह्माण्डानामसंख्यानां ब्रह्मविष्णुहरात्मनाम्।
उद्भवे प्रलये हेतू राम एव इति श्रुतिः॥"

" अनंत अवतार हुए हैं परन्तु कोइ अंश और कोइ कला से परात्पर अवतार श्रीराम है । ब्रह्मा, विष्णु और महेश सहित असंख्य ब्रह्माण्डके उद्भव और प्रलयके हेतु श्रीरामचंद्रजी हैं ऐसा श्रुति वर्णन करती है । "

कितने लोग यों कहा करते हैं कि पूर्णावतार कृष्ण हैं और श्रीराम द्वादश कलाके अपूर्ण अवतार हैं परन्तु उपरोक्त प्रमाणो सें सबको विदित होगया होगा कि ऐसा कहना शास्त्र से बिल्कुल असंमत है और ऐसा कहने सें परम पापके भागी बनते हैं ! अस्तु—

भगवान बुद्ध आदिक शक्ति अवतार है

आवेश अवतार के दो भेद है एक शुद्धावेश दूसरा अशुद्धावेश भगवान् व्यास, पृथु धन्वंतर श्रीगौरांगदेव आदिक शुद्ध आवेशावतार हैं और भार्गव आदिक अशुद्धावेश माने जाते हैं ।

इस प्रकार अनेक प्रकारके अवतार धारणकर प्रभु भक्तोंका उद्धार करते हैं धर्मकी स्थापना करते हैं और दुष्ट जनो का दलन करते हैं ।

। इति विभवस्वरूप ।

व्यूहस्वरूप

(पद)

व्यूह स्वरूप ईशका प्यारा।
रक्षा हित भक्तोंकी प्रभुने, सुन्दर विविध रूपको धारा॥
ज्ञान और बल युत संकर्षण, करत सदा जगका संहारा।
वीर्य और ऐश्वर्य युक्त हो, सृजत सदा प्रद्युम्न संसारा॥
शक्ति तेज युत अनिरुद्ध प्रभु, पालन सतत करैं सुखकारा।
वासुदेव सबके उरवासी, "प्रेमनिधी" यह व्यूह विचारा॥

"उत्पत्ति, स्थिति, संहारादिक कार्यार्थ और भक्त जनोके क्लेश निवारणार्थ, जगत्के जीवोंके उद्धारार्थ सर्वशक्तिमान्, प्रभु चार स्वरूप धारण करके सृष्टितंत्रको चलाते हैं उसीको व्यूह स्वरूप कहते हैं।

व्यूहं तत्रावशिष्टं षट् गुणानां द्विगुणं मुने।
अनुवृत्तिं भजत्येव तत्र तत्र यथा तथम्॥

हे मुनि! प्रभुके व्यूह रूपमें भी दिव्य षट्गुण अव्यक्तरुपेण विद्यमान रहते हैं परन्तु विशेषमें दो दोगुण प्रत्येक स्वरूपमें अधिकतर दृष्टि गोचर होते हैं। जैसे—

तत्र ज्ञान बल द्वंद्वाद्रूपं संकर्षणं हरेः।

"ज्ञान और बल इन दो गुणोको धारणकर संकर्षणजी सृष्टिका संहार करते है।"

"ऐश्वर्य वीर्य संभेदात् रूपं प्रद्युम्नमुच्यते ।
ऐश्वर्येण गुणेनासौ सृजते सकलं जगत् ।
वीर्येण सर्व धर्माणि प्रवर्तयति सर्वशः ।

" ऐश्वर्य और वीर्य इन दो गुणोंको धारण कर प्रद्युम्न जगत्को उत्पन्न करते हैं और धर्मका प्रचार करते हैं। "

शक्ति तेजः समुत्कर्षादनिरुद्धतनुर्हरिः ।
शक्त्या जगदिदं सर्वमनंताण्ड निन्तरम् ॥
विभर्ति पातिच हरिर्वासुदेवः सदाप्रभुः ।
तेजसा निखिलं तत्त्वं ज्ञापयत्यात्मनो मुने ॥

शक्ति और तेज इन दो गुणोको धारण कर अनिरुद्ध तनुधारी हरि इस जगतका पालन पोषण करते हैं और वासुदेव श्रीहरि समस्त जीवोंमें वास करके ज्ञान तत्वका प्रकाश करते हैं और समस्त संसारी जीवोंको योग्य अधिकारी बनाकर सर्वेश्वर प्रभुके चरणोमें प्रीतीहो वैसा शुद्ध ज्ञान उत्पन्न करते हैं ।

। इति व्यूहस्वरूप ।

परस्वरूप

प्यारे पाठको! अर्चास्वरूप अंतर्यामिस्वरूप, विभवस्वरूप, और व्यूहस्वरूपकी यत्किञ्चित् व्याख्या आपने पढ़ी अब सर्वेश्वर प्रभुके परस्वरूपका वर्णन करते हैं।

(पद)

भज सर्वेश्वर सीताराम।
दिव्य अनंत गुणोंके सागर, अंतर्यामी श्रीघनश्याम ॥
शिवअजाविष्णु अरु सबजगके, कारण परम परमसुखधाम।
जिनसे पर जगमें कोऊ नाही, नहि जाके है कोऊ समान॥
वेदपुराण शास्त्र निशिवासर, करते हैं शुभ जिनके गान।
अवतारी सब अवतारोंके, द्विभुज धरण शारंग धनुबाण ॥
योगीजन मानस मराल प्रभु, भक्तकल्प पादप विश्राम।
"प्रेमनिधी" भज परतम प्रीतम, दशरथनंदन राजाराम॥

**दिव्यानंतगुणः श्रीमान् दिव्यमङ्गलविग्रहः।
षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नो मनोवाचामगोचरः॥**

"प्रभु श्रीराम सर्व दिव्यगुण संपन्न हैं और वही साकार सगुण प्रभुही पर हैं, ब्रह्म=शब्द बृहधातुसे बनता है जिसका अर्थ होता है. सबसे बडा, सबसे बडा है यह वाक्य प्रभुके गुणका वर्णन करता है अतः ब्रह्म शब्दसे साकार सगुण ब्रह्मकी ही सिद्धि होती है, ब्रह्म सत्य

है सर्वशक्तिमान है, उससे बडा कोई नही है, ब्रह्म सर्वज्ञ है, अनादि है, अनंत है, यह सब क्या है? दिव्यगुण हैं जब यह सब दिव्य और अनंत गुण विद्यमान हैं तब फिर हम ऐसे सद्गुणी सर्वेश्वरको निर्गुण कैसे कह सकते हैं। एक मनुष्यमें अच्छे अच्छे सद्विचार और सुंदर गुण भरे हों फिर उसको कहदें कि तुम गुणहीन हो विचार शून्य हो तो उसको कितना बुरा लगेगा. उसीतरह प्रभु सर्वेश्वर सर्व-शक्तिमान् सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता आदिगुण युक्त है, यह प्रत्येक आस्तिक प्रजा मान्य करती है तब फिर उसे हम कहदें कि तुम गुण विहीन आकार रहित हो तो क्या हम प्रभुके गुन्हेगार न होंगे? अवश्य होंगे अतः हमे तो सदा प्रभुके गुणोंका ही गान करना चाहिये उसीमें हमारा श्रेय है । अन्यथा निरयगामी होना ही पडेगा.

श्रीमद्भागवत दशमस्कंधमे ब्रह्माजी कहते हैं—

येन्येरविन्दाक्ष विमुक्त मानिनः त्वय्यस्त भावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधो नादृत युष्मदंघ्रयः॥

"हे नाथ! जो विमुक्तिको प्राप्त करनेकी लालसासे अत्यन्त विशुद्ध ज्ञानको प्राप्त करते हैं परन्तु आप जो सगुण स्वरूपधारी मेरे सामने खडे हैं उस स्वरूपमें प्रीति नही करते वे महान् कष्ट साध्य परम पदको प्राप्त करके भी पुनः पतित हो जाते हैं परन्तु सगुणोपासक भक्तजनोंका पतन नही होता ।

गीतामे श्रीमुख वाक्य है— "**न मे भक्तः प्रणश्यति**"

"मेरा भक्त कभी पतित नही होता है"

मनका स्वभाव है कि अच्छी चीजको देखकर ही आकृष्ट होता है। जो निराकार है, देख पडताही नहीं है, निर्गुण है मनको आकृष्ट करे ऐसा, रूप, गुण कुछभी है नही तो उसके प्रति प्रेम कैसे हो सकता है? प्रेम होगा तो परमोदार परमसुन्दर परम दयालु परमसुशील परमशूर परमशक्तिसम्पन्न सर्वेश्वरके सगुण रूपमें ही। अतः निराकार के बखेडे को छोडो और लगजाओ व्यक्त और सद्गुणसम्पन्न प्रभुकी भक्तिमें, इसी लिये मूल श्लोकमे दिव्य और अनन्त गुण संपन्न कहा गया है प्रभु दिव्य मङ्गल विग्रहवान हैं षड्गुण और ऐश्वर्य सम्पन्न हैं मन, वाणी उसके गुणोंका थाह नही पा सकते हैं और—

वेदवेद्यः सर्वसाक्षी सर्वोपास्यः स्वतन्त्रकः।
नित्यानां निजभक्तानां भोग्यभूतः श्रियः पतिः॥

"हमारे प्रभु वेद द्वारा जाने जा सकते हैं चारो वेद जिनकी महिमाका गान करते हैं" सर्व साक्षी हैं स्वतंत्र हैं अपने नित्य भक्तोंको सुखदाता हैं और श्रीसीतावर हैं। प्रभु वेद वेद्य हैं

"श्रीमन्तं श्रुतिवेद्यमद्भुतगुणग्रामाग्र्य रत्नाकरं"

(श्रीरामानंदीय वैष्णव मताब्ज भास्कर)

"वेदोसे जानने योग्य, लोकोत्तर गुणसमूहरूप श्रेष्ठ रत्नोंके अखण्ड भण्डार भगवान् श्रीराम हैं"

"वेदैरशेषैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्"

(गीता)

" अशेष वेदों करके वेद्य मैं हूं। वेदान्तका कर्ता मैं हूं। और वेदको अच्छीतरह जानने वाला भी मैं हूं " और प्रभु सर्वभूत मात्रके साक्षी हैं. यथा–

सर्वसाक्षी चिदानन्दो निर्द्वंदोऽखण्ड एव यः।
परमात्मा परंब्रह्म रामो नरवरोत्तमः॥
असंख्य सूर्यवत्तेजो वेदा अपि न यं विदुः।
स वै सर्व जगच्छ्रष्टा रामः परतरात्परः॥

सर्व साक्षी, चिदानन्द, द्वन्दरहित, अखण्ड, परमात्मा, परब्रह्म, नरोत्तम, असंख्य सूर्यसमतेजस्वी जिसको वेद भी पूर्णतया नही जान सकते हैं ऐसे जगत्के आद्य कर्ता परात्पर प्रभु श्रीराम हैं। प्रभु सर्वो-पास्य हैं–यथा.

विद्याधरसुराधीशैः सिद्धगन्धर्वकिन्नरैः।
योगीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानमहर्निशम्॥
विश्वामित्र वशिष्ठादि मुनिभिः परिसेवितम्।
सनकादि मुनिश्रेष्ठैर्योगिवृन्दैश्च सेवितम्॥

(सनत्कुमार संहिता)

" विद्याधर, देवेन्द्र, तथा देवगण, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, महा योगीन्द्र, नारदादिक महर्षिगण, विश्वामित्र, वशिष्ठ सनकादिक, और योगिवृन्द आदि जिनकी वंदना करते हैं और सेवा करते हैं, वैसे प्रभु श्रीराम हैं। भगवान् विष्णु कहते हैं कि—

"भजस्व कमले नित्यं रामं सर्वेश पूजितम्।

पुनः प्रभु निज भक्तजनोंसे सेवित हैं। यथा—

षोडश पार्षदाः नित्या दिव्यदेहव्यवस्थिताः ।
किशोरवयसो मध्या रामलक्ष्मणरूपिणः ॥
श्यामा गौराः सुमनसा कामादधिक सुन्दराः ।
मनो वाक्कर्मभिर्नित्यं रामसेवन तत्पराः ॥

(अगस्त्य संहिता)

"नित्य, दिव्यदेहधारी, किशोरावस्थावाले, श्रीराम लक्ष्मणके तद्वत् सुन्दर मनवाले, कोई घनश्याम, कोई गौरवर्ण, कामसे भी अधिक सुन्दर, मन, वचन, तनसे श्रीरामसेवा तत्पर प्रभुके दिव्य षोडश पार्षद हैं।

उपरोक्त शास्त्रीय प्रमाणोंसे दिव्यअनन्तगुणसागर सर्वसाक्षी, सर्वोपास्य, स्वतंत्र और भक्तजनोसे सेवित सर्वेश्वर श्रीभगवान् हैं ऐसा निश्चय होता है। पुनः

ब्रह्मविष्णुमहेशानां कारणं सर्वगः प्रभुः ।
मूलं सर्वावताराणां धर्मसंस्थापकः परः ॥

"ब्रह्मा, विष्णु, और शङ्करके कारणभूत, सब अवतारोंकेमूल, सर्वव्यापक, धर्मस्थापक प्रभु हैं।

"यस्यांशेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा अपि जाता महाविष्णुर्यस्य दिव्यगुणाश्च स एव कार्यकारणयोः परः परमः पुरुषो रामो दाशरथिर्बभूव ।

(अथर्वणीय श्रुतिः)

"जिसके अंशसे ब्रह्मा विष्णु महेश्वर और महा विष्णु प्रकट हुए

हैं जिसके परम दिव्य और अनन्त गुण हैं वह कार्य कारणसे पर प्रभु श्रीराम श्रीदशरथसुत भये।" पुनः

महाशंभुर्महाविष्णुर्महामाया जलेशया।
महानहं कृतिर्विश्वं कारणानि च सर्वशः॥
स्थावरा जङ्गमाश्चैव सूर्येन्दुहव्यवाहनाः।
एते तावत् कला योगिन् ममरामः स्वयं हरिः॥

(सुन्दरी तंत्र)

श्रीजानकीजी महायोगी जनकजीसे कहतीं हैं—

हे योगिराज ! हे तात ! महाशंभु, महाविष्णु महाब्रह्मा, महामाया, महत्तत्व, अहंकार, और विश्वके समस्त कारण, स्थावर जंगम, सूर्य, चन्द्र, अग्नि यह सब कलाओं द्वारा होते हैं और हमारे राम स्वयं हरि हैं।

श्रीरामस्य कलांशाद्वै अवतारा भवन्ति हि।
कोटि कोटिश्च कार्य्यार्थे सिन्धौ वीचीव वै मुने॥
सीताकलांशात्सख्यश्च शक्तयः संभवन्ति हि।

श्रीरामजीकी कला और अंशसे समस्त अवतार होते हैं जैसे समुद्रसे तरंगे उत्पन्न होती है। श्रीसीताजीसे समस्त शक्तियोंकी उत्पत्ति होती है।" इत्यादि प्रमाणोंसे प्रभु श्रीरामका अवतार परात्पर है ऐसा विदित होता है. प्रभु समस्त धर्मोके स्थापक हैं और पर हैं। श्रुति कहती है—

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यत्परं ब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमोनमः।

(रामतापनी)

श्रीरामजी परब्रह्म भगवान हैं जिनके द्वारा स्वर्ग, पृथिवी और पातालादि लोक भये ऐसे प्रभुको वारंवार नमस्कार है।

रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्किञ्चिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्वस्वरूपोऽयं सत्यं सत्यमिदं जगत्॥

(सनत्कुमार संहिता)

"श्रीराम सत्य हैं परब्रह्म हैं उनको छोड जगतमें और कुछ नही है। सब कुछ श्रीरामसें प्रकट हुआ है अतः श्रीरामरूप होने से जगत् भी सत्य है।

परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम्।

सत्य आनंद और चेतन्य स्वरूप परात्पर प्रभु श्रीराम रघुत्तमकी मैं वंदना करता हूं.

द्विभुजश्चापभृच्चैव भक्ताभीष्टप्रपूरकः।
वैदेहीवल्लभो नित्यं कैशोरे वयसि स्थितः।
एवं भूतश्च ज्ञातव्यो रामो राजीवलोचनः॥

"द्विभुज, धनुषधारी, भक्तमनोरथपूर्ण कर्ता, वैदेहीवल्लभ, नित्य किशोर, राजीवलोचन श्रीराम हैं। इस प्रकार प्राप्य स्वरूप समझना—

हमारे प्राणाधार प्रभु द्विभुज है श्रुति कहती है बाहू राजन्यः कृतः। अर्थात् दानो भुजाओं से क्षत्रीय उत्पन्न हुए, "पाणीभ्यां त्रयीं

सम्भरति" और "दश हस्ता अङ्गुल्योः दश पद्या द्वावुरू द्वौ बाहू आत्मैव पञ्चविंश :' दश हाथकी अंगुलियां, दश पगकी अंगुलियां, दो उरू दो बाहू इस तरह आत्माके समान ईश्वरके भी दिव्य अवयव हैं। इत्यादि श्रुतियां प्रभुकी द्विभुजताका ही प्रतिपादन करती है। पुनः

"राघवं द्विभुजंबालं राममीषस्मिताननम्"

"राघव द्विभुज बाल स्वरूप और परम प्रसन्न चित्त हैं।" पुनः और स्थलोमें भी—

स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्।
परं तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत्त्रयं यजेत् ॥

"प्रभुका स्थूल स्वरूप अष्टभुज है सूक्ष्मरूप चतुर्भुज है और परस्वरूप द्विभुज है।

द्विहस्तमेकवक्त्रञ्च शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
सहस्त्रकोटिवन्हीन्दु लक्षकोट्यर्कसदृशम् ॥
मरीचिमण्डले संस्थं बाणाद्यायुधलाञ्छितम्।
किरीट हार केयूर वनमाला विराजितम्।
पीताम्बर धरं सौम्यं रूपमाद्यमिदं हरेः ॥

(नारद पञ्चरात्र)

श्रीहरिका आद्य स्वरूप द्विभुज है एक मुखवाला, शुद्ध स्फटिक समान करोडो और लाखों अग्नि सूर्य चंद्रके समान् तेजस्वी मरीचिमंडल स्थित धनुर्बाणादि आयुधसंपन्न कीरीट हार केयूर वनमालादि आभूषणोंसें भूषित पीताम्बरधारी परम सौम्य प्रभुका आद्य स्वरूप है।

प्रकृत्या सहितः श्यामः पीतवासाः प्रभाकरः ।
द्विभुजः कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धरः ॥

(रामतापनी)

" श्रीमज्जनकनंदनीजीके सहित श्यामसुंदर पीताम्बरधारी, सर्व प्रकाशक कुंडलधारी, रत्नमाली धनुर्धर परमधीर प्रभु द्विभुज हैं ।

ततः सिंहासनस्थःसन् द्विभुजो रघुनन्दनः ।
धनुर्धरः प्रसन्नात्मा सर्वाभरण भूषितः ॥

(रामतापनी)

श्रुति वर्णन करती है कि—दिव्य सिंहासनस्थ, रघुनदन, धनुधारी प्रसन्नात्मा समस्त आभरणोंसे विभूषित द्विभुज श्रीमद्रामचंद्रजी महाराज हैं ।

रामात् संजायते कामः कामाद्विश्वं प्रजायते ।
तस्माद्धनुर्धरात्सर्वे द्विभुजा मूल रूपिणः ॥

इत्यादि प्रमाणोंसे यह वात निर्विवाद सिद्ध है कि प्रभुका पर स्वरूप द्विभुज घनश्याम और परम प्यारा है ।

प्रियतमके विरहमे परमाकुल यम नियम परायण, तपनिष्ठ राजर्षि श्रीमनु महाराजने निष्प्रतिपक्षभावेन प्रभुके पर स्वरूपके दर्शनकी प्रार्थना की रही—

सुनु सेवक सुरतरू सुर धेनू । विधि हरि हर वन्दित पद रेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक । प्रणतपाल सचराचर नायक ॥
जो अनाथ हित हम पर नेहू । तो प्रसन्न होइ यह वर देहू ॥

जो स्वरूप बस शिव मनमांही। जेही कारण मुनि यतन कराही ॥
जो भुशण्डिमन मानस हंसा। अगुण सगुण जेहि निगम प्रसंसा ॥
देखहि हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन ॥

कैसी निष्पक्ष प्रार्थना है। केवल यही प्रार्थना है कि भले वह द्विभुज हो या चतुर्भुज, सगुण हो या निर्गुण, साकार या निराकार परन्तु जो परात्पररूप हो उसीके दर्शन हमें चाहिये। इस प्रार्थनाको सुनकर प्रभु जिस स्वरूपसे प्रगट हुए वही पर स्वरूप होना चाहिये। क्योंकि ब्रह्म वाणी कभी अन्यथा नही हो सकती पहिले

"मागु मागु जब भइ नभवानी"

"हे नृप! माँगो जो कुछ तुम्हे चाहिये वह माँगो" ऐसी ब्रह्मवाणी हुई और उन्होने परात्पर रूपका दर्शन माँगा। तब फिर परात्पर प्रभु ही प्रकट न हों तो ब्रह्म वचन अन्यथा हो जाय। अतः यह निश्चय है कि उस समय मनु महाराजको जो दर्शन हुए थे वह साक्षात् परात्पर पूर्ण ब्रह्मके ही हुएथे अस्तु—

अब उस समयकी दिव्य झाँकी का वर्णन यहां उद्धृत करता हूं

दोहा—नील सरोरुह नीलमणी नील नीर धर श्याम।
लाजहि तनु शोभा निरखी कोटि कोटि शतकाम ॥

शरद मयङ्क वदन छबि सोवाँ। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवाँ ॥
अधर अरुण रद सुन्दर नासा। विधुकर निकर विनिन्दक हासा ॥
नव अम्बुज अम्बक छबि नीकी। चितवनि ललितभावतीजीकी ॥
भृकुटी मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल द्युतिकारी ॥

कुण्डल मकर मुकुट शिर भ्राजा। कुटिलकेश जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीवत्स रुचिर वनमाला। पदिक हार भूषण मणिमाला॥
केहरि कन्धर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषण सुन्दर तेऊ॥
करिकर सरिस सरस भुजदण्डा। कटि निषंग कर शर कोदण्डा॥

तडित विनिन्दक पीत पट, उदर रेखवर तीन।
नाभिमनोहर लेतिजनु, यमुन भँवर छबि छीन॥

पदराजीव वरणि नहि जाही। मुनि मन मधुप वसहि जेहि मांही॥
वामभाग शोभित अनुकूला। आदि शक्ति छविनिधि जगमूला॥
जासु अंश उपजत गुणखानी। अगणित उमा रमा ब्रह्मानी॥

विचारिये कैसा सुंदरतम स्वरूप है परात्पर प्रभुका? बस यही प्रभुका पर स्वरूप है जो मनुष्य निरंतर इस श्याम सलोने स्वरूपका नित्य नवनेहसे ध्यान धरता है वह सुख पूर्वक भवपार होकर प्रभुके पर धामको प्राप्त कर लेता है इसमें यत्किञ्चित् भी शंका या संदेह नही है। अब मैं श्री संप्रदायाचार्य यतिराज श्रीमज्जगद्गुरु १०० श्री रामानंदाचार्यजी महाराज कथित परमसुंदर परममाननीय और हृदयग्राही पर स्वरूपका वर्णन लिख कर आगे जीव स्वरूपका वर्णन लिखूंगा

विश्वंजातं यतोऽद्धा यदवितमखिलं लीनमप्यस्ति यस्मिन्,
सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः।
यद्भीत्या वाति वातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरो ज्ञः,
साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्त्ता॥

जिन प्रभु सीतापति से यह समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है,

जिनसे रक्षित है और जिनमें लीन भी हो जाता है जिनके तेजसे सूर्य चंद्र निरंतर रात दिन समस्त विश्वको प्रकाशित करते हैं, जिनके भयसे वायु वहता है पृथिवी पातालमें नही चली जाती, वही परम सर्वज्ञ, साक्षी, कूटस्थ अनंत शुभगुण विशिष्ट विश्वभर्ता ईश्वर है।

श्रीमानर्च्यः शरण्यो बहुविध विबुधैर्योगिगम्यांध्रि पद्मोऽ-
स्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिमान्यो वदान्यः।
शश्वच्छ्रीरामचन्द्रः सुमहितमहिमा साधु वेदैरशेषै-
र्निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुष विजरो गीर्मनोभ्यामगम्यः ॥

(श्रीरामानंदीयवैष्णवमताब्जभास्कर)

जो बहुत प्रकारके देवताओ और विद्वानोके आराध्य हैं, शरणागत रक्षक हैं, योगिजन जिनके चरणकी सेवा करते हैं, क्लेश कर्म विपाकसे पृथक् हैं, साधुजन जिनकी महिमा गाते हैं, मोक्ष आदि दुर्लभ पदार्थदाता हैं, सर्वशक्तिमान हैं, निष्पाप हैं, अजर हैं, वाणी और मनके अगोचर हैं, नित्य हैं ऐसे श्रीसीतापति श्रीरामचंद्र परात्पर परब्रह्म हैं।

ऐसे पर स्वरूपकी प्राप्ति करना ही जीवनका चरम लक्ष्य है यों तो अनेकानेक जन्म गये और जाते है पर वह सब व्यर्थ है जीवन सार्थक तभी है जब पूर्वाचार्य निर्दिष्ट परतम प्रभुकी प्राप्ति हो जाय. अतएव हमारे प्रिय भाई हर हमेश प्राणजीवन प्रियतम प्रभुके पर स्वरूप की जैसे प्राप्ति हो, ऐसा सतत उपाय करें।

। इति परस्वरूप ।

जीवस्वरूप

पद

जीव स्वरूप अपनो पहिचान।
नित्य अखण्ड सदा प्रभु सेवक, रहितक्लेश है सुखका धाम ॥
धर शरीर पाता है बन्धन कहलाता है बद्ध अजान ॥
चेतन हो निजरूप यादकर प्रेमसहित भज सीताराम ॥
"प्रेमनिधी" भज परमेश्वरको तब होगा तेरा कल्याण ॥

शरीर त्रय हीनं हि भिन्नं कोषाच्च पञ्चकात्।
जाग्रत्स्वप्नाद्यवस्थानां साक्षिभूतं तु सर्वदा ॥ ९ ॥
चिदानन्दमयं नित्यं दिव्यविग्रहसंयुतम्।
अखण्डैकरसंचैव कैशोरे वयसि स्थितम् ॥ १० ॥
द्विभुजं सत्त्वसंपन्नमीशसेवापरायणम्।
प्रभोर्नियाम्यं शेषत्वं ज्ञातव्यं स्वस्वरूपकम् ॥ ११ ॥

अर्थ—स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीरोंसे भिन्न, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनंदमय इन पञ्चकोशोंसे भिन्न, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इत्यादि अवस्थाओंका साक्षी, चित्, आनन्दमय, नित्य, दिव्यदेहधारी, अखंड, एकरस, किशोरवयसंपन्न, द्विभुज,

सत्त्वसंपन्न, ईश्वरकी सेवामें तत्पर, प्रभुका शेष ऐसा सर्वदा अपने स्वरूपको समझना चाहिये—

हमारे परमाचार्य जगद्गुरू १००८ श्री रामानंदाचार्य्य जी महाराज जीवका स्वरूप बताते हैं कि—

नित्योऽज्ञश्चेतनोऽजः सततपरवशः सूक्ष्मतोऽत्यन्त सूक्ष्मो,
भिन्नो बद्धादिभेदैः प्रतिकुणपमसौ नैकधा सूरिवर्य्यैः।
श्रीशाक्रान्तालयस्थो निजकृतिफलभुक्तत्सहायोऽभिमानी,
जीवः संप्रोच्यते श्रीहरिपदसुमते तत्त्वजिज्ञासुवेद्यः॥

"हे हरि चरणानुरागिन् सुरसुरानंद! जो नित्य अर्थात् सर्वदा एक रस रहने वाला है, जिसका आदि मध्य और अंत नही है अज है, प्रभुके आधीन है, अत्यंत सूक्ष्म है प्रति शरीरमें बद्ध, मुमुक्षु, नित्य, मुक्त आदिक अनेक प्रकारका होते हुए भी सर्वदा भिन्न है, भगवान्की व्याप्तिसे युक्त शरीरमें रहने वाला है। स्वकृतकर्मोंके फलका भोक्ता है, और मैं कर्ता हूं मैं भोक्ता हूं इस प्रकारके अभिमानको धारण करनेवाला है, तत्त्वके जिज्ञासुओंको जानने लायक है उसीको विज्ञजन जीव कहते हैं।

कहते जीव स्वरुप हैं सज्जन पांच प्रकार।
बद्ध[१] मुमुक्षु[२] मुक्त[३] अरु केवल[४] नित[५] सुखकार॥

बद्धजीवोंके लक्षण

जो महामोहजालमें फसे हुए हैं, महा अंधकूपमें पडे हुए हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, द्वेष, ईर्षा, विषयलोलुपता,

नास्तिकता, परनिंदा, अपकार, लंपटता, दुर्बुद्धि इत्यादि दुर्गुणोंसे भरे हुए हैं मल मूत्र मांस अस्थि रुधिरका बना हुआ दुःखोंका घर—ऐसे शरीरको सर्वस्व मान लेने वाले हैं, उसके पालन पोषणमें रातदिन लग-कर अपनी जिन्दगीकी अमूल्य और दुष्प्राप्य शुभ घडियां व्यर्थ बिता देनेवाले, दुष्टात्माको बद्ध कहते हैं। बद्ध अर्थात् भव बंधनमे जकडे हुए प्राणी।

आज बद्ध जीवोंकी कमी नहीं है। असख्य बद्ध जीव हमें हमेशाँ दृष्टिगोचर होते हैं। आज धर्मके नामसे अधर्म, पुण्यके नामसे पाप, प्रेमके नामसे नरकमे लेजाना वाला मोह और श्रद्धा और विश्वा-सके नामसे, कपट और पाखंडका कितना प्रचार हो रहा है इस बातसे कोई भी विज्ञ पुरुष अज्ञात नहीं है।

अमुक व्यक्तिका कैसे यश नष्ट हो जाय, अमुक कैसे अवनतिको प्राप्त हो, अमुक कैसे कंगाल बन जाय, अमुक कैसे मर जाय तो सारा झंझट मिट जाय ऐसे दुष्ट विचारोंने आज सद्विचार और धर्मप्रेमको हजारो और करोडो कोश दूर भगा दिया है।

बस, यही बद्धता है। जिन जीवोंके हृदयमें ऐसे दुष्ट भाव रहते हैं वह चाहते तो सुख परन्तु उन्हे सुख मिलना अत्यंत कष्ट साध्य हो जाता है, वे तो निरंतर द्वेष, क्रोध, कपट और उद्वेगकी प्रखर तर पावक ज्वालामें जलते ही रहते हैं।

बद्ध जीव दैहिक दैविक और भौतिक तापोंसे संतप्त रहते हैं, गर्भ, उत्पत्ति, वृद्धि, यौवन, जरा, मृत्यु, रोग, आदिक विकारोंसे ग्रसित

रहते है मदिरापान मांस भक्षण, परस्त्रीगमन, जीवहिंसा, कटुवचन, गरीबकी हाय, गांजा, भांग, तमाखु, आफीम, आदिक दुर्व्यसनग्रसित और स्त्री, पुत्र, धन, आदिक भवजालमें फसे हुए पापी बद्धजीव होते हैं।

जो कर्तव्य और अकर्तव्य कार्योंको जानते नही है, सत्य और शुद्ध आचरणसे रहित, कपटजालवाले, अल्पमेधस्, घोरकर्मी, पाखंड, पाप, मान, और मदसे परिपूर्ण विषय भोगोंको ही परम पुरुषार्थ समझनेवाले, महान् चिन्ताके अगाधसिंधुमे डूबे हुए, आशाओंके सेंकडो पाशसे बंधे हुए, कामक्रोध परायण सदा विषयभोगकी प्राप्तिके लिये चिंतित. आज मैंने अमुक चीज प्राप्तकी कल अमुक चीज प्राप्त करूंगा, अमुक मेरा शत्रु है उसको मैं मार डालूंगा मैं राजा हूं, ये सब मेरा वैभव है, मैंही सत्ताधारी हूं मुझसे बडा कोई नही है. अहंकार, बल, गर्व, काम, कोध, मोहादिक दोषोंके आश्रयमें रहने वाले सर्वेश्वर आनन्दघन प्रभुको एकदम भूलकर संसारमें रचे पचे रहने वाले, समस्त स्थलोंमें व्यापक अंतर्यामी प्रभुके द्वेषी हैं वह बद्ध जीव कहलाते हैं। ऐसे जीव अंत समयमें महान् कष्टके भोक्ता बनते हैं भगवान गीताचार्यका कथन है कि–

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्य जस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमांगतिम्॥

(गीता १६ १९–२०)

मुझसे द्वेष करनेवाले, क्रूर, नराधम जीवोंको मैं संसारमें महा घोर राक्षसी योनियोंमें पटकता हूं. हे कौन्तेय ! ऐसे जन्मोजन्म राक्षसी योनियोंको प्राप्त करनेवाले दुष्टात्मा मुझको प्राप्त न होकर महाअधम गतिको प्राप्त होते हैं।

पाठको ! अपने हृदय मंदिरको साफ करो, परमात्माकी ओर झुको। एक दिन इस नश्वर संसारको छोडकर चला जाना पडेगा। स्त्री, धन, पुत्र, धरा, धाम, कुछ भी तुम्हारे साथ न जायगा. अनेक स्नेही मित्रोंसे संबंध टूट जायगा, जैसे आयेथे वैसे जाना पडेगा, अतः इस संसारमें बद्ध न होजाओ, यह संसार एक तरहका नाटक है। ईश्वर मालिक है। उसकी प्रेरणानुसार हमें काम करना चाहिये। किसी भी चीजमें लिप्त न होना चाहिये, जिस समय एक पात्र राज वेश धारणकर रंग मञ्च पर आता है उस समय उसके शरीर पर अनेक उत्तम वस्त्राभूषण होते हैं परन्तु वह पात्र उससे निर्लेप रहता है। यदि वह उस समय समस्त चीजोंको अपनी मान ले और जब मालिक अपनी चीजे माँगे तब लडाई करने तैयार हो जाय तो वह अवश्य दण्डका भागी होगा, ईश्वरने इस संसाररूप रङ्ग मंच पर हम सबको पात्र बनाकर भेजे हैं परन्तु हम सब उन प्रभुकी दी हुइ चीजोंको अपनी मानलें और प्रभुको वापिस न सौंपें तो प्रभु अपनी चीजें लेही लेगा परन्तु हमें तो अवश्य दण्डका पात्र बनना पडेगा, अतः सब प्रभुकी संपत्ति मानकर संसारसे निर्लेप रहो। जो कुछ करो प्रभुको समर्पण कर दो। प्रभुकी आज्ञा है—

यत्करोषि यदश्नासि ... मानहो यशहो इस प्रकारकी
यत्तपस्यसि कौन्तेय ... तृष्णाएं जिनकी नाश हो
... ठा है, प्रभुनामगानमें

बस उनके श्रवनतम ... कीर्तनमें परम आसक्ति
चिन्ता रहेगी और ... श्रीअयोध्यादिक तीर्थोंके वासमे जिनकी परम

सक... भक्त मुमुक्षु कहलाते हैं अर्थात् जिनके हृदयमें प्रभु
... होती है उन्हीके हृदय पटलपर उपरोक्त गुण अङ्कित
हैं।

भक्तभावन भगवान्ने पराभक्ति प्राप्त करनेवाले भक्तोंके लक्षण
मैं सर्व... हैं कि—

बुद्ध्या विशुद्धयायुक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥
...विक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
...ानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

(गी० १८, ५१-५४)

जिसकी बुद्धि परम शुद्ध होगई है प्रभुके प्रेमसागरमें श्रद्धा और विश्वासके साथ स्नानकर विशुद्ध होगई है। जिसके हृदयमें प्रभुके दृढ़ विश्वासको छोड अन्य किसी भी देव नर नागका भरोसा नही है

परम लघु हो या नीच हो, हमारा मानहो यशहो इस प्रकारकी भावना जिनकी नष्ट होगई है, समस्त आशा तृष्णाएं जिनकी नाश हो गई हैं, प्रभु प्राप्तिके लिये जिनको परम उत्कण्ठा है, प्रभुनामगानमें परम रुचि है प्रभुके पावनतम गुणोंके गानमें प्रभुकीर्तनमें परम आसक्ति और प्रभुके वासस्थल श्रीअयोध्यादिक तीर्थोंके वासमे जिनकी परम प्रीति है वह भक्त मुमुक्षु कहलाते हैं अर्थात् जिनके हृदयमें प्रभु भक्ति पैदा होती है उन्हीके हृदय पटलपर उपरोक्त गुण अङ्कित होते हैं।

भक्तभावन भगवान्ने पराभक्ति प्राप्त करनेवाले भक्तोंके लक्षण बताये हैं कि—

बुद्ध्या विशुद्धयायुक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
(गी० १८, ५१-५४)

जिसकी बुद्धि परम शुद्ध होगई है प्रभुके प्रेमसागरमें श्रद्धा और विश्वासके साथ स्नानकर विशुद्ध होगई है। जिसके हृदयमें प्रभुके दृढ़ विश्वासको छोड अन्य किसी भी देव नर नागका भरोसा नही है

अन्तःकरणको स्ववश करलिया है, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादिक विषयोंमे जो आसक्त नही होता है, राग और द्वेषको जिसने समूल नष्ट कर दिये हैं ईश्वरीय साधना करनेके लिये जो एकान्त वासका सेवन करता है। अल्पाहारी है। मन वाणी और शरीरको जिसने स्ववश करलिया है। जिसको इहलौकिक और पारलौकिक सभी भोगोंसे परम वैराग्य है। जो सर्वदा प्रियतमके प्रेममें मस्त रहता है। जो अहङ्कार बल, घमण्ड, काम, क्रोधरूप दुर्गुणोंका सर्वथा त्याग कर देता है। जो किसी प्रकारकी आसक्ति नही रखता। जो ममत्त्व रहित है। जो परम शान्त है. जिसका चाञ्चल्य नष्ट गया है। जिसका मन परब्रह्म परमात्मामें लीन है। जो सदा प्रसन्न है। जो किसी भी वस्तुकी अप्राप्तिमें शोक नहीं करता और प्राप्तिमें प्रसन्न नहीं होता है जो सर्वभूत प्राणि मात्रमें सदा मुझ अन्तर्यामी प्रभुको देखता है वह भक्त मेरी परा भक्ति परम प्रेमरूप आनन्दस्वरूप भक्तिको प्राप्त करता है।

जो मुमुक्षुजन है जिसको प्रभुप्राप्त करनेकी तीव्र आकांक्षा है उसको प्रभुके बताये हुए आचरणीय आचरणोंका परमदृढतापूर्वक पालन करना चाहिये क्योंकि प्रभुने इन चार श्लोकोंमें भक्ति प्राप्त करनेके उपाय दर्शाये हैं.

मुमुक्षु प्रभुके चरणोंमें दृढ़ विश्वास रखता है। वह किसी भी नास्तिकवादको मान्य नहीं करता हैं। मुमुक्षु मोक्षके साधनोंका सप्रेम पालन करता है। वह साधनसे घबडा नहीं जाता। जबतक सिद्धि प्राप्त न होय तबतक बराबर साधनका पालन करता है। पापोंसे साव-धानी रखता है। सीधे और सादे व्यवहार रखता है। घोर दुखोंको

भी शान्तिपूर्वक सहन करलेता है। दुखसे पीडित होकर प्रभुको गालीयां नही देने लगता। शत्रुसे प्रेम करता है। वैरीको भी आदर देता है। अपनेको परम लघु मानता है। समस्त विश्वको विश्वम्भरका स्वरूप समझकर किसीसे द्वेष नहीं करता प्रत्युत सबकी वन्दना करता है। किसीकी घृणा नहीं करता. दूसरोंके दोषोंको हृदयमे धारणकर पर-निन्दाके पापको नही बटोरता। परस्त्री मात्रको प्रभु या मातृवत् मानता है। आहारमें सादा सत्वमय और अल्प भोजन करता है। अनावश्यक वातें नही करता है, मींठे मधुर और सत्य शब्दकाही उच्चारण करता है, बहुत कम बोलता है, जनसेवा, देशसेवा, प्राणिसेवा, अतिथिसेवा और प्रभुसेवामें परायण रहता है। मैं सेवा करनेमें शूरवीर हूं मेरे सदृश सेवा और कोई भी नही कर सकता ऐसा अभिमान नहीं करता है। सेवा करनेंमे क्या क्या त्रुटियां रह जाती हैं उसका अनुभवकर त्रुटियां निकाल कर शुद्ध सेवा करनेका सतत प्रयास करता है। सबसे नम्र व्यवहार रखता है माता, पिता, गुरु, गौ, अभ्यागत, और गरी-बोंको सेवाकरके परम सन्तुष्ट रखता है।

मुमुक्षुके लिये तो दीनबन्धु प्रभुही परमधन हैं। अन्धेकी लकडी हैं, तरसेको पानी हैं निर्बलके बल हैं। निराश्रयके आश्रय हैं, अना-थके नाथ हैं, प्राणोंके प्राण और जीवनके जीवन हैं, मुमुक्षु भक्त तो प्राणप्रिय प्रभुके विरहमें हरदम तरसताही रहता है। चारों ओर उसे प्रीतम प्रभुही दीख पडता है लोक लाजको त्यागकर प्रियतम पथमें आगे बढ़ता है कितनेंही विघ्न आवें, सङ्कटोंके पहाड टूट पडे

पर वह किसीतरह प्रेम पन्थका त्याग नही करता है। किसीने ठीकही कहा है—

प्रियतमसें मिलनेको जिसके प्राण कर रहे हाहाकार,
गिनता नही मार्गकी कुछभी दूरीको वह किसी प्रकार।
नही ताकता किञ्चित्भी शत शत बाधा विघ्नोंकी ओर,
दोड छूटता जहां विराजे सीय सहित श्रीअवधकिशोर॥

श्रीमहारामायणमें शङ्करजी श्री पार्वतिजीके प्रति प्रभु प्रिय भक्तोंके लक्षणका वर्णन करते हैं कि—

बाह्यान्तरं शृणु प्रिये गिरिराजकन्ये,
त्वत्तो वदामि रघुनाथ जनस्य मुख्यम्।
अन्यद्विहाय सकलंस दसच्चकार्य्यं,
श्रीरामपङ्कजपदं सततं स्मरन्ति॥
श्रीरामनाम रसनाग्र पठन्ति भक्त्या,
प्रेम्णा च गद्गद्गिराप्यथ हृष्टलोमाः।
सीतायुतं रघुपतिं च किशोर मूर्तिं,
पश्यन्त्यहर्निशमुदा परमेण रम्यम्॥

हे गिरिराजकन्ये! मैं बाह्य तथा आन्तरिक वैष्णवोंके समस्त लक्षणोंका वर्णन करता हूं। प्रभुके भक्त सांसारिक सत् और असत् समस्त कार्योंको त्यागकर श्रीराम पद पङ्कजको नित्य निरन्तर स्मरण करते हैं।

श्रीराम इस परमपावन नामका रोज रटण करते हैं। कभी प्रेमाश्रु प्रवाहित होते हैं कभी कण्ठ गद्गद् हो जाता है और किशोर-

मूर्ति सीतापति भगवान श्रीरघुनाथजी महाराजकी परम रम्य मूर्तिका अहर्निश परम प्रेमसह ध्यान करते है जो प्रेमपूर्वक श्रीहरि स्मरण करता है उसकातो प्रभु अविलम्बेन उद्धार करते हैं भले वह नीच हो या ऊंच पण्डित हो या मूर्ख राजा हो या रङ्क परन्तु होना चाहिये भावुक। भावुक भक्तका नाश कभी नहीं होता है.

अपिचेत् सुदुराचारो भजते मामनन्य भाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

अत्यन्त दुराचरणीभी जो हमारा प्रेम और अविचल श्रद्धा के साथ सुमिरण करता है उसको परम साधु समझना क्योंकि मेरा भजन करने से वह भक्त शीघ्रही धर्मात्मा बनजाता है और शाश्वत शान्तिपद को प्राप्त करलेताहै। हे कौन्तेय! यह मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूं कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता। भागवतमें प्रभु अपने भक्तोंके लक्षण कहते हैं कि—

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥
कामैरहत धीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः।
अनीहो मितभुक्शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः॥

“मेरे भक्त कृपालु, अद्रोही, तितिक्षु, सत्यवादी, हितकारी, सम, कामविजयी, धीर, क्षमावान्, मृदुल, शान्त, पवित्र, अकिञ्चन, अल्पाहारी, और मेरे शरणागत होते हैं।”

जो भक्त इस प्रकारके शुद्धाचरणी होते हैं उनके वशमें तो स्वयं भगवान् भी होजाते हैं—

अहं भक्तपराधीनोह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्त जनप्रियः ॥

(भागवत)

पुनः

येदारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं ताँस्त्यक्तुमुत्सहे ॥

(भागवत)

इत्यादि श्रीमुख वचनसे विदित होता है कि भक्त कितने श्रेष्ठ हैं भगवान् ही भक्तके हृदय हैं। और भक्तही भगवान के हृदय हैं भक्तजन भगवान्के सिवा और कुछभी नहीं जानते और भगवान् भक्तके सिवा और कुछ नही जानते, जैसे पतिव्रता स्त्री पति सेवाकर पतिको स्ववश करलेती है उसी तरह भक्तजन प्रभुसेवाकर परमेश्वरको स्ववश कर लेते हैं। जिस समय कोई एक जीव मनमें ऐसा विचार करता है कि अब मैं नित्य प्रभुस्मरण करूंगा इस संसारकी ममताका नाश कर प्रभुचरणमें ममता करूंगा, तो उस समय–

"मोदन्ति पितरा नृत्यन्ति देवता सनाथाचेयं भूर्भवति"

पितर परम प्रसन्न होते हैं देवगण नृत्य करने लगते हैं और भूतल सनाथ हो जाता है।

ऐसे भक्त जिस स्थान पर पैर रखते हैं वह पृथिवी सुवर्णमयी हो जाती है जिधर देखते हैं वहां दिव्यज्योति चमकने लगती है, जहां

वास करते है वहां समस्त तीर्थ और तपोवन आजाते हैं। उनका प्रत्येक वाक्य प्रसन्नताका उत्पादक होता है। उनकी प्रत्येक चेष्टा पतितपावनी भागीरथी वत् पवित्र और गुणकारी होती है। इस लोकमें उनके नामका यश होता हैं जनता उनका गुणानुवाद करती है नाना प्रकारके सुख प्राप्त होते है अन्तमे देव दुन्दुभीके शब्दोंसे उनकी वधाई होती है और समस्त देवलोकोंका उल्लंघनकर प्रभुधाममें जाकर वास करते हैं।

अनादिकालके कर्मसमूहसे नाना प्रकारके देहका अभिमानी बद्ध माना जाता है और वही जीव भगवान्‌की निर्हैतुकी कृपा दृष्टिसे अविद्या आदि दुष्ट कर्मोंकी वासनासे और प्रकृतिके सम्बन्धसे छूटनेकी इच्छावाला होनेंसे मुमुक्षु कहलाता है।

महर्षियोंने मुमुक्षु दो प्रकारके कहे हैं। एक अकाम, अर्थात् ज्ञानादि साधनहीन तैलधारावत् अविच्छिन्न भगवत्स्मरणपरायण वेदोक्त वर्ण और आश्रम धर्मका पालन करनेवाले, उपासक, ध्यान, पूजन, आदिकमे निष्ठावाले, और दूसरे शुद्ध भक्त होते हैं जो प्रभुकथा श्रवण, कीर्तन, वन्दनादिक निष्ठावाले होते हैं उन्हे प्रभुके दिव्यदर्शन-द्वारा जो आनन्द प्राप्त होता है उसके प्रतिबन्धक विरोधियोंसे छूटनेकी तीव्र इच्छा होती है और परमसमर्थ अविनाशी भगवान् श्रीरामजी को ही प्राप्य और उन्हींको उपाय समझकर ध्यानपूर्वक प्रभु स्मरणमें मग्न रहते हैं, ऐसे प्रपन्न भक्त प्रभुको अत्यन्त प्रिय हैं। पुनः

प्रपन्नश्चापि दृप्तः स तथाचार्त इति द्विधा।
शरीरस्थितिपर्यन्तमाद्योऽत्रैव यथोचितम्॥

प्राप्तदुःखादि भुञ्जान; शरीरान्तेऽवसीय च।
महाबोधोऽतिविश्वासो मोक्षसिद्धिमवस्थितः॥

(वैष्णवमताब्जभास्कर)

वह प्रपन्न दो प्रकारके हैं। (दृप्त और आर्त) दृप्त प्रपन्न उसको कहते हैं जो स्वकर्मानुसार प्रारब्ध भोगोंको शरीर स्थिति पर्यन्त यथोचित यहां भोगते हुए अन्तमें मोक्ष सिद्धिका निश्चय करके प्रभुका पूर्ण विश्वास रखकर संसारमें रहते हैं।

श्रीगुरु शरण होकर श्रीगुरुद्वारा उपदिष्ट स्वस्वरूपानुकूल भगवत्सेवा अतिशय प्रेमके साथ करते हैं। सर्वदा श्रीसीतानाथ प्रभुके रूप लीला धाम और नामकी सेवामें लगे रहते हैं। प्रभुसेवाके लिये मधुर, दास्य, सख्य, वात्सल्य, और शान्त इन पांच रसोंमेंसे किसी एक रसका यर्थार्थ ज्ञान श्रीगुरुदेवद्वारा प्राप्तकर उस रसकी भावनानुसार प्रभु सेवा करते हैं। अहर्निश अष्टयाम मानसी सेवा करते हैं। मायिक प्रपञ्चोंसे दूर रहकर अनन्त कन्दर्प लावण्यधाम भगवान्के वर्णनातीत रूप माधुरीकी मस्तानी मदिरा पीकर मतवाले हो जाते हैं, और उसी मस्तीमें मग्न हो रातदिन श्रीहरि नाम जपते हैं।

अपनी जीवन नौकाके नाविक नरवरोत्तम प्रभु श्रीरामको बनाकर अपना तन, मन, धन, प्राण, सर्वस्व, प्रभु चरणोंमें समर्पित कर देते हैं। और हमेशाँ प्रभुसें प्रार्थना करते हैं कि—

(गज़ल)

अबतो यह जीवन है अर्पण, सरकार तुम्हारे चरणोमें।
हे रघुवर सियवर जीवनधन, सरकार तुम्हारे चरणोमें॥

प्रभु जन्म जन्मसें हौं तेरा, प्रियतम पद पङ्कजका चेरा।
न्यौछावर है यह तन मन धन, सरकार तुम्हारे चरणो में॥
नही चाह और है अब मनमें, नहि आसकती है सपनेमें।
दिल लगारहे मेरा हरदम, सरकार तुम्हारे चरणोमें॥
जब अन्त समय मेरा आवै, तब सुमिरण हिय तेरा आवै।
चितचञ्चल अविचल हो जावै, सरकार तुम्हारे चरणोमें॥
यह देह रहे घर या वनमें, नव नेह बढ़े उर क्षण क्षणमें।
नहि भूले "प्रेमनिधी" सुमिरण सरकार तुम्हारे चरणोमें॥

(आर्त प्रपन्न)

और आर्त भक्त—

अथान्त्योऽसहमानस्तत्क्षणमेव तु संसृतिम्।
तथैव भगवत्प्राप्तौ सत्त्वरस्वान्त उच्यते॥

(वैष्णवमताब्जभास्कर)

जो संसाररूपी घोर वडवानलसें अत्यन्त तप्तहोकर अधीर हो और प्रभु प्राप्तिके लिये परम व्याकुल हो जाता है हमें शीघ्रसे शीघ्र प्रभु प्राप्ति किस तरह हो ऐसी उत्कण्ठासें व्यथित हो जाता है। उसको आर्त भक्त कहते हैं।

आर्त भक्त प्रभु वियोगको सहन नहीं कर सकता है। प्रभु विरहसें विकल हो जाता है, बुद्धि पागल हो जाती है हृदयमें हर समय विरहकी ज्वाला परम प्रचण्ड रूपसें जलती रहती है, वहतो—

वागद्गदा द्रवते यस्यचित्तं, हसत्यभीक्ष्णं रुदतिकचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यतेच मद्भक्ति युक्तो भुवनं पुनाति ॥
(श्रीमद्भागवत)

गद्गद वाणीसे मधुर प्रभु नाम उच्चारण करता है कभी हँसता है, कभी रोता है कभी लज्जा त्याग कर नाचने लगता है, चित्त द्रवीभूत होता है और शरीर पुलकित हो जाता है इस प्रकार प्रेमी भक्त मेरी भक्तिको प्राप्तकर त्रिभुवनको पवित्र करता है ।

आर्तभक्त जब अत्यन्त असह्य कष्टका अनुभव करता है तब विनीत भावसें प्रभुप्रार्थना करने लगता है कि—हे प्रभु ! हे दीनदयालु ! हे दीनबन्धो ! मैं घोर तापसे तप्त हूं आज सिवा आपके और कोई भी मेरा रक्षक नहीं है हे करूणानिधे ! मैं इस घोर संसार सागरमें डूब रहा हूं आपके सिवा इस समय मेरा और कोई भी तारणहार नहीं है—

लीजै खैंचि मुझे अब प्यारे बहनेकी नहि ताकत ।
बहुतरोजसें वहता आया महा मोह मद छाकत ॥

और प्रभुके अनेक नाम लेकर पुकारता है कि——

हा रघुनन्दन ! दशरथनंदन ! तुम बिनु बहुत दुखारी ।
हे सियवरजू ! हे रघुवरजू ! आयो शरण तिहारी ॥

इस प्रकार भक्त जब अधीर हो जाता है तब पुकार उठता है कि——

जो घन आनन्द ऐसी रूचि तो कहा वस है अहौ माननि पीरैं ।
पाऊं कहां हरि हाय तुम्है धरणीमे धँसौ कि आकाशहि चीरैं ॥

बिचारा प्रेमी धैर्य कितना धारण करे? धैर्यकी भी तो कोई हद है, प्रेमीके प्राण पंखी जब रुके नही रहते हैं तडफ तडफ कर भागना चाहते हैं तब उस दुखियाका क्या चले? तब भी वह धैर्य धारणकर एकवार अपना संदेश तो संदेहहर प्रभुके पास तक पहुंचा ही देता है, कहता है—

अधर लगे हैं आनि करिहैं प्रयाण प्राण,
चाहत चलन यह संदेशो लै सुजानको।

हे प्रभु! यदि मैं मरगया और फिर आप आये तो व्यर्थ ही श्रम होगा अतः यदि आनाही है तो इस मरते हुए दुःखी जनको शीघ्र दर्शनामृत पिलाकर जीवित करो। नहीं तो—

अवधि पैन आये जो पै आये तब कहा लाभ,
हम तो तजि दरश आश प्यारे नहि आवेगें।
पाछे पछताय हाय ऐहौ मति प्राणनाथ!
विरह उद्वेग मेघ छाय झरि लावेगें॥
(वियोगीहरि)

हे सर्वज्ञ! आप मेरी विपत्तिके समय न आवोगे तो—

का वरषा जब कृषि सुखानी। समय चूक पुनि का पाछितानी।

अतः शीघ्र आओ और मेरे असह्य तापोंको शान्त करो।

हे शरणागत भयभञ्जन!

अब प्राण नही रोके रहत।
बहुत रोके प्राण नहि अब, विषम वेदन सहत।

छट पटात अधीर छिनछिन धीर नाहिन धरत।
मनहु पंछी पींजराते उडन अवही चहत॥

उसकी दीन दशा देखकर यदि किसीको दया आजाय और उसके मर्जकी दवा करने जाय तो भी क्या करै! अरे उसका तो दरद ऐसा ही है, उसकी दवा एक प्रभुको छोड कर और कोइ करही नही सकता, एकरोज एक वैद्यजी गयेथेन उस प्रेमीके पास, देखिये उन्हें कैसा सचोट जवाब मिला—

हमारा तुमसे औषध ए धन्वन्तर हो नही सकता।
मेरा वह रोग है जिसमें कि अन्तर हो नही सकता।

झिझक उठता हूं छिन छिन हौं कभी रोता कभी गाता।
कठिन आवेश है जिसपरकि मन्तर हो नही सकता।

रहूं बेचैन निशिदिन खान पान अच्छा नही लगता।
ये वह टोना है जिसके योग जन्तर हो नही सकता॥

पिलावै छबि सुधा जबतक न वह मेरा गुणी आकर।
सुखी तबतक हमारा आभ्यन्तर हो नही सकता।

दुखी मम हिय पै प्यारेके धरे विनु हाथ ए हरिजन!
कलेजेका जो धडकन है सो कमतर हो नही सकता॥

(हरिजन)

उसके रोगकी औषधी तो यह एक ही है कि कोई ऐसा सच्चा अनुभवी उसका समाचार प्रभुके दरबारमे जाकर सुना आवै—

करन चहौं आरोग्य मोहि दयाविवश जो आय।
कहहु मोर संदेशतो मम प्रियतमसें जाय॥

सचमुच प्रेम बडाही दुखदाई रोग है। प्रेमका घायल सिवा प्रियतमकी मूरतिको और कुछ देखता ही नही है प्रेमोन्मादिनी व्रजकी गोपियाँ कह उठीथीं कि—

चलत चितवत दिवस जागत स्वप्न सोवत रात।
हृदयते वह श्याम मूरति छिन न इत उत जात॥

अहा उन प्रेमरूपा गोपियांकातो रोम रोम श्याममय हो गया था—सुनिये तो उनकी दशाका वर्णन—

श्यामतन श्याममन श्यामही हमारोधन,
आठौयाम ऊधव हमैं श्याम हीसों काम है।
श्यामहिय श्यामजिय श्यामबिन नाहितिय,
आँधरेकी लाकडी आधार श्याम नाम है॥
श्यामगति श्याममति श्यामही है प्राणपति,
श्याम सुखधामने भुलायो हाय धाम है।
उधौ तुम भये बौरे पाती लैके आये दौरे,
योग कहां राखैं यहां रोम रोम श्याम है॥

योगका काम ही क्या है? भला योगी वियोगीकी पदवीको प्राप्त कर सकता है? थोडा विचार तो करिये कहां रूखा सूखा योग और कहां परब्रह्मको भी परवश करदेनेवाला परम रसमय आनन्दमय

प्रेम और प्रेमी तो प्रेमकी कसौटी पर जितना कसा जाता है उतना विचारा योगी कहांसे कसा जाय—एक प्रेमीने कहा भी है—

सुखाइ शरीर अधीन करैं दृगनीरकी बून्दसो माल फिरावैं।
नेहकी शेली वियोग जटा अरु आहकी सींगी सपूर बजावैं॥
प्रेमकी आगमे ठाढ़े जरे सुधि आरा से आपनि देह चिरावैं।
सुजान कहै कला कोटि करो पै वियोगिके भेदको योगि न पावैं॥

ओह! ऐसे कठिन नेहका निवाहना भी तो बडाही असम्भव है—अरे भाई—

गहिवो आकाश पुनि लहिवो अथाह थाह,
अति विकराल काल व्यालहि खेलाईवो।
शैल शमशेर धार सहिवो प्रहार औंर,
गज मृगराज लै हथेलिन पै लराईवो॥
गिरिते गिरवो पंथ अगनीमे चलिवो अरु,
काशी करवट तनु बरफलै गराईवो।
पीवो विष विषम कबूल कवि नाजरजू,
कठिन औ कराल एक नेहको निवाहवो॥

भले, कितना भी कठिन होय तो क्या हुआ परन्तु मुमुक्षुको तो इसमें एक ऐसे अलौकिक आनन्दका अनुभव होता है कि उसके जरासे आस्वादन मात्रके सामने हजारों कष्ट और विघ्नों उसका कुछभी नहीं कर सकते।

जिसके घरमे आगलगी रहती है वह कबतक धुआंदिये बिना रह सकेगी ? उसी तरह भक्त प्रेम पथके कष्टोंको सहन तो करता है परन्तु इसके समान प्रारब्ध भोगमानकर चुपचाप भोगता नही जाता परन्तु जब बेहद पीडा होती है तब पुकार उठता है कि—

ए सियवर! अपने आशिकको रुलाना ना मुनाशिब है।
अपाने जनको ए प्यारे! भुलाना ना मुनाशिब है॥
जो रोता हो निशिवासर सदा प्रियतमके दर्शनको।
दरद कुछ और उसके दिल बढ़ाना ना मुनाशिब है॥
दीवाना जो भया हो हाय पीकर इश्कका प्याला।
अहो उसकी हँसी जगमे उडाना ना मुनाशिब हैं॥
कलेजेमैं जिसे हो एक नासूर घोर दुखकारी।
हरे उस घावको छूकर दुखाना ना मुनाशिब है॥
मिलो आकर प्रभु जल्दी अपाने "प्रेमनिधी" सें अब।
शरण आए हुए नरको सताना ना मुनाशिब है॥

इस प्रकार अपना रोना सुनाकर प्रभुका अवाहनकरता है कि—

आआ प्यारे मेरे हियके कमल खिलाने वाले।
तृषित हृदयको अमर सुधाका पान कराने वाले॥
बहुत दिनोंसे हौं मैं तेरे मधुर मिलनकी आशामें।
आजा मम आशा लतिकामैं फूल फूलाने वाले॥
मीठी मीठी वाणीसें तू मन सबका हर लेता है।
आ ए रघुवर प्रेमी जनको हृदय लगाने वाले॥

तडफडता जो दिवस रैन है दर्शन हेतु तुम्हारे नित्य।
आजा प्रियतम दुखी नरोंके प्राण बचाने वाले ॥
क्यों अब अधिक व्यथा देता है दर्द बढ़ाता है हा प्राण!
आजा आजा "प्रेमनिधीमें बाढ़ बढ़ानेवाले ॥

भला, जिसका ऐसा प्रेम है उससें प्रेमाधीन प्रभु क्या छिप रह सकता है? ऐसे प्रेमियोंकेलिये तो प्रभु पयादे पांव दौडा आवेगा. तत्काल उसके घोर कष्टोंका निवारण कर अपने नित्य निकेतनमे वसावेगा—

जिस समय चक्रवर्ती महाराज श्रीदशरथजीकी आज्ञा शिरसावन्द्य करके मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम जगतमें धार्मिक मर्यादाकी स्थापना करनेके लिये चौदह वरसका वनवास भोगनेको जाते हैं और यह कडुए समाचार विदेहतनया श्रीजानकीजीको मिलते हैं उसी समय उनकी कैसी आर्त दशा हो जाती है—

समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाय।

"हाय आज प्राणाधार पतिदेवका वियोग होगा इतना विचार आतेही उनका प्राण व्याकुल हो उठा. और अनेक प्रकारके तर्क करने लगीं—

चलन चहत वन जीवननाथा। कवन सुकृत सन होइहि साथा॥
की तनु प्राण कि केवल प्राणा। विधि करतव कछु जातन जाना॥

औरकी तो वात ही क्या परन्तु स्वयं भगवान्ने भी उनको

अयोध्यामें रहनेकेलिये अनेक प्रकारसें उपदेश दिये. परन्तु अत्यन्त आर्तताके विवश होनेके कारण—

शीतल शिष दाहक भइ कैसे । चकइहि शरद चांदनी जैसे ॥

जब ऐसी दशा होगई तब करुणाधाम प्रभु तुरत कह उठे—

देखिदशा रघुपति जिय जाना । हठि राखै नहि राखहि प्राना ॥
कहेऊ कृपालु भानुकुल नाथा । परि हरि शोच चलहु वन साथा ॥

उसी प्रकार—

समाचार जब लक्ष्मण पाये । व्याकुल विलखि वदन उठि धाये ॥
कम्प पुलक तनु नयन सनीरा । गहे चरण अति प्रेम अधीरा ॥
कहिन सकत कछु चितवत ठाढ़े । मीनदीन जनु जलते काढ़े ॥

प्रभुने श्री लक्ष्मणजीको अवधमें रहनेके लिये अनेक तरहसें शिक्षा दी परन्तु—

.... । सुनत वचन व्याकुल भये भारी ।
सियरे वदन सूखिगये कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसे ॥

प्रभुने जब उनकी भी अत्यन्त आर्तता देखी तो अविलम्बेन आज्ञा देदी कि—

मांगहु विदा मातुपहं जाई । आवहु वेगि चलहु वन भाई ॥

भक्तके हृदयमें जबतक अत्यन्त उत्कट विरह उत्पन्न नही होता है तबतक श्यामसलोना सांवरा दर्शन नही देता है परन्तु जब वियोगजन्य दुःख असह्य हो जाता है तबतो वह दीनबन्धु दौडा आता है।

प्रभु इतना सस्ता नही है कि दो कौडीमें मिल जावे—अरे वह तो " प्राण देनेसे मिले तो भी परम सस्ता है "

सहज आशिकी नाहिं खांड खानेकी नाही ।
झूठ आशिकी करहिं मुलुकमे जूती खाहीं ॥
जीते जी मरजाय करै ना तनकी आशा ।
आशिकका दिन रैन रहे शूलीपर वासा ॥

(पलटू)

विरही तो स्वयं पुकारता है—

लगी दिलमे जो आतस बुझाइ बुझ नही सकती ।
बुझेगी दिलकी ये आगी मेरे परलोक जानेसे ॥

वस, यही आर्त प्रपन्न आर्त भक्त या आर्त मुमुक्षुओंकी अवस्था है, जबतक ऐसी दशा नही हुइ है तबतक दिलबर के दीदारका दर्शन दुर्लभ है ।

दृप्त भक्त भी अपनी जीवनकी अवधि तो जैसे तैसे विता देता है परन्तु यदि अवधिके उपरान्त एक पल भी व्यतीत होजाय और प्राणजीवन प्रभु न मिलें तो वह अवश्य अपने पापी प्राणोंका त्याग कर देता है । दृप्त प्रपन्न भक्तराज भरतजी महाराज प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि—

वीते अवधि अवध प्रथमदिन जो रघुवीर न ऐहौं ।
तो प्रभुचरण सरोजसपथ जीवत परिजनहि न पैहो ।

जब वनवासके चौदह वर्ष पूरे हो गये

रहाएक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयेउ अपारा ॥

अनेक प्रकारके तर्क वितर्क करने लगे, अभी तो एक दिन बाकी है और आप विचारने लगे कि—

वीते अवधि रहे जो प्राना। अधम कौन जग मोहि समाना ॥

समस्त अवधवासी भी द्रुत प्रसन्न थे परन्तु आज " रहा एक दिन अवधिकर **अति आरत** पुरलोग। " समस्त अयोध्यावासी अत्यन्त आर्त होगये भरतजी भी परम आर्त हो गये—

राम विरह सागर महं भरत मगन मन होत।

विरह सागरमें डूबने लगे तब तुरतही—

विप्ररूप धरि कपि तुरत आय गयेऊ जनु पोत ॥

यदि आपको भी प्रभुके दर्शनकी इच्छा हो तो कायरता, कपटताका परित्यागकर आनन्द विभोर होकर प्रेमावतार चैतन्य प्रभुके स्वरमे स्वर मिलाकर प्रभुसें प्रार्थना करो कि—

नयनं गलश्रुधारया, वदनं गद्गद रुद्धयागिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति ॥

हे नाथ ! तुम्हारा नाम लेते ही नेत्रोंसे आनन्दके अश्रु प्रवाहित हो जाँय, गद्गद कण्ठ होकर वाणी रुक जाय और समस्त शरीरके रोम रोम खडे हो जाँय ऐसी दशा कब प्राप्त होगी ?

जब ऐसी भक्ति प्राप्त करलोगे तो यमराजा भी तुमसे डरने लगेगा. स्कन्द पुराणमे यमराज स्वयं कहते है—

न ब्रह्मा न शिवाग्नीन्द्रा नाहं मन्ये दिवौकसः।
अशक्तः विग्रहं कर्तुं वैष्णवानां महात्मनाम् ॥
वैष्णवा विष्णुवत् पूज्या ममभान्या विशेषतः।
तेषां कृतेऽपमाने तु विनाशो जायते ध्रुवम् ॥

"ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और अन्य देवगणोंको मैं कुछ भी नही मानता हूं. परन्तु वैष्णव महात्माओंके सामने युद्ध करनेको मैं असमर्थ हूं। वैष्णव भक्त भगवान् विष्णुवत् पूजनीय हैं, मेरे तो परम माननीय और पूज्य हैं, वैष्णवोंका अपमान करनेवालेका शीघ्र ही नाश हो हो जाता है" हारीत स्मृतिका वचन है–

भगवद्भक्ति दीप्ताग्नि दग्धदुर्जाति कल्मषः।
चाण्डालोविबुधैः श्लाघ्यो न विप्रोह्यवैष्णवः॥

"प्रभु भक्तिरूपी अति प्रचण्ड अग्निसे दुर्जातिरूपी कल्मष जिसका नष्ट हो गया है ऐसा चाण्डालभी देवगणों करके सराहनीय है और श्रेष्ठसे श्रेष्ठ ब्राह्मण भी यदि अवैष्णव है तो निन्दनीय है।"

उन प्रभु प्रिय भक्तोंकातो बडाही माहात्म्य है भगवान् शङ्करतो कहते हैं।

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात्परतरं देवि! तदीयानां समर्चनम्॥

हे देवि! समस्त पूजनोंमे श्रीविष्णु पूजन श्रेष्ठ है और उससें भी परतर भक्तोंका पूजन है। पुनः–

पूजनाद्विष्णु भक्तानां पुरुषार्थोस्ति नेतरः ।
तेषां द्वेषतः किञ्चन्नास्ति नाशनमात्मनः ॥

" भगवान्के भक्तोंके पूजनसे बढ़कर और कोई प्रबल पुरुषार्थ नही है और उनसे विद्वेष करनेके समान और कोई आत्मनाशका साधन नही है। अर्थात् परम पुरुषार्थ भक्तपूजन है और आत्मनाशक भक्त-द्वेष है—

मद्भक्ताः यत्रतिष्ठन्ति पादौ प्रक्षालयन्ति च ॥
तत्स्थानन्तु महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम् ॥

स्त्रीघ्नो गोघ्नो ब्रह्मघ्नः कृतघ्नो गुरुतल्पगः ।
जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥

(देविभागवत स्कंध ९–अ० ६)

" श्री भगवान् गङ्गाजीके प्रति कहते हैं कि—

मेरे भक्त जिसजगह पर ठहरते हैं पग धोते हैं वह स्थल महा तीर्थ होजाता है. स्त्रीवध करनेवाला, गोवध करनेवाला, ब्रह्महत्यारा, कृतघ्नी, गुरु शय्यापर पग धरनेवाला मेरे भक्तोंके दर्शन स्पर्श मात्रसें जीवन्मुक्त और परम पवित्र बन जाता है। "

ऐसे परम प्रभावशाली वैष्णवोंके लक्षण उन्हीके ग्रन्थोंसे यथार्थ माल्लम हो सकते हैं अतः अब श्री वैष्णवमताब्जभास्करमें जो भक्तोंके लक्षण हैं उसको यहां उद्धृत करता हूं—

अथोच्यते सम्प्रति लक्षणं सन्महात्मनां सद्गुणवैष्णवानाम्।
विरञ्चिशंभुश्रितरामचन्द्रपदारविन्दस्थितचेतसां तु॥

अब ब्रह्मा, शिव आदिकोंद्वारा आश्रय किये गये हुए प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणानुरागी, महापुरुष, सद्गुणी वैष्णवजनोंके समीचीन लक्षणोंको कहता हूं।

धृतोर्ध्व पुण्ड्रस्तुलसीसमुद्भवां दधच्च मालाममलो हि कण्ठतः
सज्जन्मकर्माणि हरेरुदाहरेद्गुणांश्च नामानि शुभप्रदानि॥

"वैष्णव ललाटमें ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक, कण्ठमे पवित्र तुलसीकी माला धारण करनेवाले और प्रभुके दिव्य जन्म कर्म नाम और गुणोंका कथन करनेवाले होते हैं।"

धनुर्धरस्याश्रृणुयान्निरंतरं कथां च गायेत्सुयशोऽङ्कितांमुहुः।
रुपं तदीयं तु चराचरात्मकं पश्यन्सतां सङ्गमुदारधीश्चरेत्॥

"उदार बुद्धिवाला वैष्णव, धनुर्धारी भगवानकी प्यारी यशवाली कथाएं निरंतर सुनता है और स्वयंगान करता है। प्रभुके सचराचरात्मक रूपका दर्शन करताहुआ साधु सन्तोका सत्सङ्ग करता है।"

चापादिपञ्चायुधचिन्हिताङ्कः समीक्ष्य हृष्टश्च हरिप्रियानसौ।
तथा विधान्भक्ति परः समर्चयेत्सु वैष्णवाञ्जन्मफलादि संस्तुवन्।

"भगवान्के दिव्य आयुध=धनुर्बाणादि आयुधोंसे चिन्हित भगवत्प्रिय, पवित्र वैष्णवोंको देखकर प्रसन्न होकर अपने जन्मफल आदिकी प्रशंसा करता हुआ भक्तिपरायण वैष्णवोंकी पूजा करता है"

पञ्चायुधाङ्का भुवि वैष्णवा ये मुखाग्रजक्षत्रियवैश्यशूद्राः।
स्त्रियस्तथान्येऽपि च विष्णुरूपा जगत्पवित्रमपवित्रिणस्ते॥

"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री, तथा अन्य चाण्डालादिक, पशु पक्षीभी यदि प्रभुके परम पावन पञ्चायुधोंसे अङ्कित हैं तो वह विष्णुरूप हैं संसारको पवित्र करनेवाले हैं और तीर्थादिकोंके पापहारक हैं।"

ते सर्वतीर्थाश्रयभूतदेहा देशे महाभागवता वसन्ति।
यत्रैव तद्दर्शन तत्स्थितिभ्यां जातः सुपुण्यो निखिलाघशून्यः॥

"समस्त तीर्थमय देहधारी, महाभागवत वैष्णव जिस देशमें निवास करते हैं वह देश उनके दर्शन करनेंसे तथा उनके वहां रहनेसें परम पवित्र और सर्व पापोंसे शून्य होजाता है।

तदर्चनात्तत्पदनीरपानात्तत्सङ्गतेस्तत् प्रणते विंधानात्।
तद्भोजनान्तरभोजनाच्च स्यात्कोटिजन्मार्जितपापनाशः॥

"उन प्रभुके प्यारे भक्तोंके पूजनसें, उनके चरणकमलके जलका पान करनेंसे उनके पादपद्मोंमे प्रणाम करनेंसे, उनका समस्त तापहारक सङ्ग करनेंसे, उनको भोजन कराकर पश्चात् अवशिष्ट भोजन करनेंसे करोडों जन्मोंके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

प्रभु प्रिय प्रेमी सज्जनो! उपरोक्त गुणोंको धारण करनेका सतत प्रयास करो, काम, क्रोध, अहङ्कार, तृष्णा, वैर, हिंसा, आसक्ति, विषाद और महान् पतन करनेवाली मोहकी जडें हृदयसे उखाड कर फेंकदो,

अपने मनो मन्दिरके कोने कोनेको झाड बुहारकर परम स्वच्छ करलो, क्षमा, दया, दान, सन्तोष, नम्रता, वैराग्य, भक्ति, प्रसन्नता, और विशुद्ध प्रेमके पवित्र प्रसूनोंसे परमात्माकी पूजा करो बद्ध जीवोंके हृदयमें रहने वाले दुर्गुणोंका त्यागकर मुमुक्षुजीवोचित सद्‌गुणोंको हृदयमे भरलो, प्रभुके पावनतम प्रेमपथके पथिक बन जाओ, और तर जाओ इस महा भयङ्कर घोर भवसागरसे ।

। इति जीवस्वरूप ।
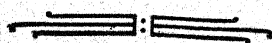
मुक्तस्वरूप

पद

सुर दुर्लभ धर देह मनुषको सुमिरण कर सीतावरको ।
श्रीगुरुदेवचरण आश्रित हो तरजाते भवसागरको ॥
वसें जाय साकेतलोकमे जो दुर्लभ है सुरनरको ।
"प्रेमनिधी" वह मुक्त कहावै ध्यावै जो सियरघुवरको ॥

मुक्त जीव उसको कहते हैं जो इस दुःखरूप संसारको छोड-कर प्रभुप्रेमार्णव श्रीसद्‌गुरूदेवके शरण जाता है । श्रीगुरुमुखसे सुन्दर सदुपदेश श्रवणकर अत्यन्त प्रभुप्रेमी बनकर मुमुक्षु जीवोंके समस्त गुणोंको धारणकर अतिशय उत्कट भक्तिकर प्रभुकृपा प्राप्त करता

है प्रारब्धानुसार सुख दुःखोंको भोगकर नश्वर देहको त्यागकर अनन्त करुणावरुणालय प्रभुधामकी प्राप्ति करनेके लिये सुषम्णा नाडीसे बाहर निकलता है। उस समय परम दिव्यमङ्गलविग्रहवान्, परमप्रकाशमान्, परम सुन्दर, और परमकारुणिक प्रभु परिकर परमदिव्य विमान लेकर आते हैं और उस मुक्तात्माको विमानमें बैठाकर सूर्य, चन्द्र, विद्युत, वरुण, इन्द्र इत्यादिक लोकोंको अतिक्रमणकर आगे बढ़ते हैं। वह प्रभुप्रिय जीव जिस जिस लोकमें जाता है उस लोकके निवासी देवगण मुक्तात्माका षोडषोपचार पूर्वक सहप्रेम पूजन करते हैं और नाना प्रकारके प्रलोभनकारक वचन सुनाकर और सुख दर्शाकर उसे अपने ही लोकमें रखनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु प्रभु वियोग विकल प्रेमी पुरुष तो प्रियतमके विरहसे इतना व्याकुल रहता है कि उसे स्वर्गादिक लोकोंके भोग अतितुच्छ विदित होते हैं। और मैं कैसे शीघ्रतापूर्वक प्राणाधारकी प्रेममयी दृष्टिको अवलोकन करूँ इस लालसासें लालायित आगे बढ़ता है। सातों आवरणों और प्रकृतिमण्डलको भेदकर सीमान्त सीन्धु श्रीविरजानदीमें स्नान करता है बस, विरजा स्नानमात्रसे ही उसके वासनात्मक सूक्ष्म शरीरका भी लय होजाता है और उसे परम दिव्य मङ्गल मायातीत सुन्दरातिसुन्दर शरीर प्राप्त होता है। वहमी प्रभुका प्यारा परिकर होजाता है। प्रभु परिकर उसे दिव्य विमानमें बैठाकर विरजा पार लेजाते हैं। और विरजा पार लेजाने पर श्री सीतारामजीके दिव्य पार्षद मुक्त जीवको दिव्य सिंहासन पर बैठाकर दिव्य वस्त्राभूषणसे अलङ्कृत करते हैं, और साकेत धामके मध्य भागमें स्थित हीरा, माणेक और दिव्य रत्नोंसे रचित परम दिव्य सभा

मण्डपके मध्यमें परम दिव्य कनकमय चौकमें दिव्यरत्नसिंहासन पर बिराजे हुए युगलसरकार परात्परतर प्रभु श्रीसीतारामजी महाराजके सन्मुख उपस्थित करते हैं।

वहां पर श्री भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और हनुमदादिक नित्य दिव्य सेवकोंसे सेव्यमान प्रभुका दर्शनकर तुक्तात्मा कृत्य कृत्य होजाता है और प्रभुके चरणोंमे प्रेमसहित जैसे जडसे कटा हुआ झाड गिर पडता है उस प्रकार गिरकर साष्टाङ्ग दण्डवत् करता है ।

दीनबन्धु, भक्तवत्सल, परमोदार, परमदिव्य, परमप्रतापी, दयानिधि, पतितपावन, देवाधिदेव, विधिहरिहरवन्दित, अनन्त कोटि ब्रह्माण्डाधिनायक, श्रीरामजी दया स्वरूपिणी श्रीजानकीजीकी कृपादृष्टिसे आलोचित प्रेमी भक्तको दौडकर हृदयमें लगाते हैं। और परम मधुर स्वरसें उसे सान्त्वना देते हैं। अपना अभयकरकमल उसके मस्तकपर रखकर उसके समस्त पाप, ताप, क्लेश और चिन्ताओंका हरणकर शाश्वत शान्तिप्रदान करते हैं।

तबसे वह जीव जीवन्मुक्त होजाता है। प्रभुके नित्य धामके निवासी नित्य जीवोंके सदृश होजाता है और परम अविचल, चिन्मय आनन्दमय, प्रेममय प्रभु धामका नित्य निवासी बन जाता है। प्रभु अपने धामका वर्णन करते हुए कहते हैं।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

" जहां जाकर जीव वापिस नही लौटता है वह मेरा परमधाम है " श्रुति कहती है।

"पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि"

मुमुक्षुजीव वात्सल्यादि दिव्यगुणसागर, उपनिषद् वेद प्रतिपाद्य, सर्व शरणागतोंके रक्षक—

"य तो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति" इत्यादि श्रुतियों और "जन्माद्यस्ययतः इत्यादि सूत्रोंसे प्रतिपाद्य उत्पत्ति पालन, प्रलय कर्ता, सर्वसमर्थ, इन्द्रादि समस्त देवताओंके स्वामी, अनादि और अनन्त, "यौ वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरण महम् प्रपद्ये" इत्यादि श्रुतिकरके प्रतिपादित ब्रह्मादि देवपूजित, समस्त शत्रुओंका नाश करनेवाले सुन्दर वेदोंका उपदेश देनेवाले, सर्वज्ञ, सर्व-समर्थ, परमपावन, योगियोंको भी अत्यन्त दुर्लभ, समस्त चेतनोंको चेतनता प्रदायक ध्यान, पूजन, उपासना करनेलायक प्रभु श्री सीता-रामजीकी आराधना करता है और समस्त संशयरूपी गर्विष्ठ हाथियोंका नाश करनेवाले सिंहवत् श्रीगुरुशरण होकर प्रभु भजन करता है।

वह मुमुक्षु सत्सङ्ग और गुरुकृपा कटाक्षके प्रभावसें सांसारिक स्पृहाओंका नाश करदेता है, और प्रभुकी साङ्गोपाङ्ग प्रपत्ति स्वीकारकर, समस्त प्रारब्ध कर्मोंका उपभोगकर पञ्चत्वको प्राप्त होता है और प्रभुके दिव्य धाममें जाकर बसता है वह मुक्तात्मा सुषुम्ना नाडीसे बहिर्गत होकर जिसरास्तेसें प्रभुधाममें जाता है उस आर्चिरादि मार्गका श्रुति वर्णन करती है।

"तेऽर्चिषमेवाभि संभवन्ति, अर्चिषोऽहः, अह्नः आपुर्य-माण पक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङ्ङेति मासास्ताँन् मासेभ्यः

संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरूषोऽमानवः । स एनान् ब्रह्म गमयत्वेष देव यथो ब्रह्म पथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानव मानर्तं नावर्तन्ते ।

" वह मुक्तात्मा अर्चिरादिमार्गसें होता हुआ प्रभुको प्राप्त करता है. प्रथम अग्निलोक, फिर दिनके अभिमानी देवलोकमें, फिर पक्षाभिमानी देवलोकमें, फिर उत्तरायणको प्राप्त होता है, फिर संवत्सर, फिर सूर्यलोक, चन्द्रलोक, विद्युल्लोक, इत्यादिकोंको अतिक्रमण करके प्रभुके दिव्य धामको प्राप्त करता है । यही देवपथ है यही ब्रह्मपथ है । जो इस रास्तेसें प्रभुसानिध्यको प्राप्त करता है वह इस आवागमनरूपी मर्त्यलोकमे फिर नही आता है ।

यह आत्मा उस प्रभुधाममें प्रभुसें पृथक् होकर रहता है । ज्ञान पुरस्पर अपनेको प्रभुका विशेषण, प्रकार, पोष्य, शेष आदिकमानकर प्रभुसेवापरायण रहता है, यदि उसकी इच्छा होती है तो प्रभुकी चरण पादुकाका रूप उसे प्राप्त होता है, यदि उसकी इच्छा होती है तो प्रभुके दिव्य शरीरका कुण्डल, कङ्कण नूपुर आदिक बनकर प्रभुका परम संश्लेष=परम संयोग प्राप्त करता है । तात्पर्य वह है कि वहांपर मुक्तजीव जिस प्रकारकी भक्ति करना चाहता है उसके लिये प्रभु कृपासें सब सुलभ होजाता है । यही बात शास्त्रोंमे कही गइ है—यथा—

यदा कामयते मुक्तो जगदीशस्य पादयोः ।
आत्मनः पादुकारूपं तस्मै तत्प्राप्यते तदा ॥
यदा कङ्कणभावं वा कुण्डलं वा परात्मनः ।
वाञ्छति च तदा स्वामी तदप्यस्मै प्रयच्छति ॥

यं यं भावं स मुक्तात्मा परधामनि वाञ्छति।
तदानीमेव स भावस्तमाप्नोति हि सर्वथा॥

श्रुतिभी कहती है कि—

"स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैवपुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिः।
(छां० ७, २६, २)

"वह मुक्तात्मा एक प्रकारका होजाता है तीन प्रकारका होजाता है पांच प्रकारका होजाता है पुनः ग्यारह प्रकारका होजाता है सैंकडों सहस्रों और अनन्त प्रकारका होजाता है। अर्थात् प्रभु सेवाके लिये अपने सङ्कल्प मात्रसें अनेकरूप और अनेक प्रकारके काम करता है!" एकही साथ, छत्र, व्यजन, पादुका, कीरीट, हार अदिक अनेक भूषण, सेवक, रथ, घोडा, हाथी, गौ, आदिक अनेक रूप धारण करके प्रभु सेवा करता है। उसके समस्त रूप दिव्य अप्राकृत और चिन्मय होते हैं।

। इति मुक्तस्वरूप।
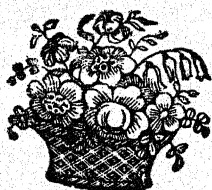
नित्यमुक्तस्वरूप

गर्भ जन्मादि दुःखं मेऽननुभूय स्थिताः सदा।
सीताराम प्रियाः शश्वत्ते हनूमन्मुखा मताः ॥

"जो गर्भ जन्म मृत्यु आदिक दुःखसे अनभिज्ञ हैं नित्य निरन्तर श्रीसीतारामजीके परमप्रिय हैं ऐसे हनुमान् आदिक नित्य जीव हैं।

परिजनाः परिच्छदा नित्यमुक्ता अपि द्विधा।
मारुताद्याः किरीटाद्याः क्रमात्ते च प्रकीर्तिताः ॥

नित्यमुक्तभी परिजन और परिच्छद भेदसे दो प्रकारके हैं श्रीहनुमदादि परिजन हैं और प्रभुके किरीट कुण्डल आभूषणादि परिच्छद हैं।

बहद्ब्रह्म संहिताका वचन है कि—

एवं स्व पार्षदैर्नित्यं नित्य धाम्नि रघूत्तमः।
सेव्यते परमया भक्त्या योगिनां गतिदायकः ॥

"इस प्रकार अपने नित्य धाममें, योगियोंको गतिदायक, रघुकुलावतंस प्रभु श्रीराम अपने नित्य भक्तों द्वारा परमप्रेमभक्तिसहित पूजे जाते हैं।"

जो जीव प्रभुके धाममें निवास करते हैं, कभी संसारचक्रमें नही आते हैं, उनको नित्यमुक्त कहते हैं। नित्यमुक्त भागवत भगवद्भोग्य—

ऐश्वर्यादिके साक्षात्कारसे जन्य जो सुख उसके भोक्ता होते हैं और नित्य भगवत्परायण होकर भगवत्सेवन, पूजन, ध्यानमें ही मस्त रहते है। उन्हें कभी संसारके दुःखोंका अनुभव नहीं करना पडता है। जब कभी सर्वोपास्य सर्वस्वतन्त्र प्रभु स्वयं अवनितलमे अवतीर्ण होते हैं तब प्रभु प्रेरणासें प्रेरित होकर मर्त्यलोकमें वे मुक्तात्माभी आते हैं परन्तु सर्वदा प्रभुकी सन्निकटता प्राप्त होनेंसे उन्हे सांसारिक दुःखोंका लव-लेशमात्रभी भान नही होता है।

धन्य है ऐसे प्रभुप्यारे नित्यमुक्त जीवोंको !—

। इति नित्यमुक्तस्वरूप ।

केवलमुक्तस्वरूप

योगादिके द्वारा चित्तशुद्धि आदि प्राप्त करके आत्मबलसें मुक्तिको प्राप्त करनेवाले योगी केवल मुक्त कहाते हैं। संसारसे उपरत होकर यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा और समाधि द्वारा माया विजयकर स्वतन्त्र होते हैं। और ब्रह्माण्ड भेदकर प्रभुसानिध्यमें प्राप्त होने वाले केवलमुक्त जीव हैं।

। इति केवलमुक्तस्वरूप ।

उपायस्वरूप

सर्वभूतदया चैव सर्वत्र सम दर्शनम् ।
अन्यत्रानिन्दनं चैव स्वेशेस्नेहाधिकं तथा ॥१२॥

गुरावीश्वरबुद्धिश्च तदाज्ञा परिपालनम् ।
स्वेशस्य तज्जनानां च सेवनं माययाविना ॥१३॥

प्रभोः कृपावलम्बित्वं भोक्तव्यं तत्समर्पितम् ।
सच्छास्त्रेषु च विश्वासः प्राप्त्युपाय इहोच्यते ॥१४॥

"समस्त प्राणिमात्रपर पर दया करना यह वैष्णवोंका प्रथम कर्तव्य है—

वैष्णव जनतो तेने रे कहिये जे पीड पराइ जाणेरे ।
पर दुःखे उपकार करे तोय उर अभिमान न आणेरे ॥
वैष्णवानां त्रयं कार्यं दया भूतेषु नारद ।

इसमे भी प्रथम कर्तव्य सर्वजीवों पर दया करना है अन्य कोई भी सत्कार्य अहिंसाकी समानता करनेका साहस नही रखता है ।

दानं तपस्तीर्थनिवेषणं जपो नचास्त्यहिंसासदृशी शुभाकृतिः ।
हिंसामतस्तां परिवर्जयेज्जनः सुधर्मनिष्ठो दृढधर्मवृद्धये ॥

(वैष्णवमताब्जभास्कर)

"अहिंसाकी समानतावाले दान, तप, तीर्थवास, और जपादिक कोईभी शुभ कर्म नही हैं। अतः शुद्ध प्रभुभक्तिपरायण धर्मिष्ठ पुरुषोंको दृढ धर्मकी बुद्धिकेलिये हिंसाका सर्वथा परित्याग करदेना चाहिये"

दूसरा उपाय है समदृष्टि, प्रभु सर्वव्याक हैं, समस्त जगत् भगवान्का विराट् स्वरूप है यह समझकर सबके प्रति समान भाव राखै, ये मेरा शत्रु है, ये मेरा मित्र है आदिक विनाशकारी भावोंको निकालकर दूर फेंकदें.

समः सर्वेषु भूतेषु यः पश्यति स पश्यति।

(गीता)

जो सर्वत्र समद्रष्टिसे देखता है वही देखता है अन्य सब अन्ध हैं। तीसरा उपाय है अनिन्दकता। किसी भी मनुष्यकी निन्दा न करे। निन्दा करनेंसे जिसकी निन्दा करेंगें उसके दिलमें आघात पहुंचेगी और आघात पहुंचाना ही हिंसा है, सज्जन पुरुष निन्दाका त्यागकरते हैं।

दूसरे देवताओंकी भी निन्दा नही करता है, अपने इष्ट देवके चरणोंमे परम अनन्य प्रेम रखता है वह प्रभुप्रेमको प्राप्त कर सकता है।

चौथा उपाय है आचार्यको ईश्वर समझकर सेवा करना। प्रभु कहते हैं—

आचार्य्यं मां विजानीयात् नावमन्येत् कर्हिचित् ।

(भागवत)

"आचार्य्यको मेराही स्वरूप समझो उनकी कोई दिवस अवहेलना मत करो"

चोथा उपाय है भक्तोंकी सेवा करना। प्रभुसें भी प्रभु भक्तोंकी महिमा अधिक है प्रभु कहते हैं "मद्भक्तापूजाभ्यधिका" प्रभुके भक्तोंकी सेवा परम गरीयसी है—

"वैष्णवः परमो धर्मो वैष्णवः परमंतपः।
वैष्णवः परमाराध्यो वैष्णवः परमागतिः॥
"निमिषं निमिषार्द्धं वा यत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः।
तदेव परमं स्थानं तत्तीर्थं तत्तपोवनम्॥

"वैष्णवोंकी सेवा ही परम धर्म है, परम तप है, परम गति है, और वैष्णवही परमाराध्य है।"

एक पलभर या आधी पलभर भी जिस जगह पर प्रभु प्रिय वैष्णवजन वास करते हैं वह स्थान परमपावन तीर्थ और तपोवन सदृश हो जाता है। अतः कपट त्यागकर विशुद्ध प्रेमपूर्वक वैष्णवोंकी अर्चा करनी चाहिये।

पांचमा उपाय है प्रभुकृपाका पूर्ण भरोसा, प्रभु करुणासागर हैं, भक्तवत्सल हैं, शरणागत रक्षक हैं, मैं उनका शरणागत भक्त हूं अतएव प्रभु मुझपर कृपा अवश्य करेंगें, मैं तो महा असमर्थ हूं परन्तु परम समर्थ परमेश्वर अवश्य मुझे अपनी प्रेमभरी गोदमें प्रेमसहित बैठावेगें. इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखना। छठा उपाय है प्रभुके प्रसादका सेवन, भक्तजन सदा प्रभु प्रसादकाही सेवन करते हैं—

सप्तम उपाय है सत् शास्त्रोमें विश्वास। शास्त्र हमारे प्रभुकी दिव्य आज्ञाओंसे भरपूर हैं अतः सर्वथा माननीय हैं ऐसा समझकर सत्शास्त्रोंको मानना और तत्कथित कर्मोंका पालन करना—

ऋग्यजुः सामथर्वा च भारतं पञ्चरात्रकम् ।
श्रीमद्रामायणं चैव शास्त्रमित्यभिधीयते ॥
यच्चानुकूलमेतेषां शास्त्रत्वं तस्य कीर्त्यते ॥

उपरोक्त ग्रन्थही सत् शास्त्र हैं और उसके अनुकूल जो अन्य ग्रन्थ हो वह शास्त्र शब्द वाच्य हैं और इन ग्रन्थोंसे प्रतिकूल ग्रन्थ यदि स्वयं ब्रह्माका कहा हुआ हो तो भी कुमार्गमें प्रवृत्त करनेवाला अशास्त्र है, अतएव शास्त्रमें ही दृढ़ श्रद्धा करनी परमोचित है। उपरोक्त उपाय प्रभु भक्ति और भगवत्प्राप्तिके हैं।

और—

भवन्त्युपायान्तर एव सर्वे स्वातन्त्र्यतो मुक्तिपदप्रदास्ते ।
सुकर्मसंवेदनभक्ति योगाः प्रपत्तिनिष्ठैः समनुष्ठितास्तु ॥
(वैष्णव म० भा०)

"प्रपत्तिनिष्ठ भक्तजन उत्तम रीतिसे कर्मयोग, ज्ञानयोग, और भक्तियोगका पालनकर परम पद प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् मुक्ति प्राप्त करनेके ये तीन उपाय भी हैं।"

कर्म[१] ज्ञान[२] अरु भक्ति[३]शुभ, सुखद् प्रपति[४] जान ।
सदाचार्य्य[५] अभिमान दृढ़ पांच उपाय प्रमाण ॥

कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, श्रीहरि शरणागति, सदाचार्य्याभिमान यह पांच मुक्तिके मार्ग हैं।

। इति उपायस्वरूप ।

कर्मयोग

यज्ञ दान व्रत तीर्थ जप, सविधि नियम यम श्राद्ध।
कामवासना रहित हो कर्मयोग को साध॥

सकाम कर्म सर्वदा बन्धनकारक है प्रभुकी आज्ञा है कि—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

तुझे कर्म करनेका अधिकार है, फल प्रदान करना मेरा काम है। तू फल प्राप्तिके लिये कभी प्रयासमत कर, नहितो दण्डका पात्र बन जावेगा।

शुभ कर्म और अशुभ कर्म दोनों वन्धनकारक हैं सोनेकी और लोहेकी दोनों जंजीरें बांधेगीतो जरूर अतः जो पुरुष मुक्ति प्राप्त करना चाहे वह पुरुषकर्मके शुभाशुभ फलोंको प्रभुके पवित्र पद पङ्कजमें समर्पण कर दें अन्यथा मुक्तिको प्राप्त करना महा दुर्लभ है॥—

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे नचार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥

(**श्रीमद्भागवत**)

"प्रभु प्रेम रहित अमल और निरञ्जन ज्ञान भी शोभा नही देता है महान् भद्दा लगता है तो फिर सतत पापयुक्त प्रभु समर्पग न किया हुआ कर्म कब शोभा दे सकता था।"

कर्म तीन प्रकारके हैं सञ्चित, प्रारब्ध और क्रियमाण—

सञ्चित

सञ्चित कहते हैं अनन्त जन्मोंसे लेकर इस जन्म तकके पाप पुण्यके सङ्ग्रहको। मनुष्य कर्म मन और वाणीसे जो क्रियारूपेण कर्म करता है उसको क्रियमाण कहते हैं परन्तु ज्योंही वह कर्म समाप्त होता है त्योंही वह सञ्चित कर्म बन जाता है। जैसे एक वणिक धनोपार्जन करके घरमें आकर खजानेमें रख देता है तो वह सञ्चित द्रव्य होजाता है उसी तरह मनुष्यका पाप पुण्यरूपी अनन्त द्रव्य जो ईश्वरके बेन्कमे जमा है वह तो सञ्चित हैही परन्तु हरहमेश नवीन कर्म करता है। वह भी सञ्चित होजाता है।

मनुष्यकी इस अखूट कर्म राशिमेंसे कुछ अंश पाप और पुण्य कर्ममेंसे निकालकर सुख दुःख भोगनेके लिये प्रभु देता है वह प्रारब्ध कहाता है।

सञ्चितसें प्रारब्ध, प्रारब्धसें क्रियमाण, क्रियमाणसें सञ्चित, पुनः सञ्चित प्रारब्ध इस प्रकार घोर कर्म प्रवाहमें जीव सतत वहा करता है। अतः जबतक इस कर्म प्रवाहका वहना बन्ध न होगा तबतक जीव कदापि शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता, मुक्ति नहीं मिल सकती है।

सञ्चित कर्मही सात्विकी राजसी और तामसी प्रवृत्तियोंका प्रधान हेतु है। वह स्फुरणा मात्र करता है परन्तु उसे कार्य्य करनेको विवश नही करता है। वर्तमान समयके कर्म और सङ्गत ही शुभाशुभ कर्मका प्रधान कारण है।

जिसका पुरुषार्थ और सङ्ग सञ्चितके अनुकूल होता है उसका सञ्चितकर्म स्फुरणाकरनेके साथ सहायकभी बन जाता है। और पुरुषार्थ और सत्सङ्ग सञ्चितके प्रतिकूल होय तो वह सञ्चितकर्म शुभाशुभ कर्म करनेमें बाधा नहीं करता है। जैसे खराब सञ्चितके प्रभावसे मनमें चोरी, छिनाली, हिंसा, मद्यपान, आदिक पापकर्म करनेकी स्फुरणा होती है परन्तु उस समय वह सच्चे सज्जन साधुओंके सङ्गमे होनेंसे इच्छा होते हुए भी पापकर्म नही कर सकता, लोकभयसें समाज भयसे किसी तरह उस समय पापसे बच जाता है। उसी तरह एक कुसङ्गमे पडे हुए जीवके हृदयमे शुभ सञ्चितके प्रभावसे लालसा हुई कि मैं कुछ दान करूं या देवदर्शन करूं या कथा वार्ता सुनूं परन्तु वह बिचारा कुसङ्गमे पडा है उसके कर्म अतिशय खोटे हैं अतः वह जीव शुभकर्म नही कर सकता है।

देखनेसे प्रत्यक्ष विदित होता है कि जो मनुष्य रातदिवस पापरत है उसके हृदयमें सर्वदा पाप प्रेरणाही हुआ करती है भले वह पूर्वोपार्जित सुकृतद्वारा कुछ रोज सुख प्राप्त करले परन्तु उसके हृदयमे सदा पापी स्फुरणायें ही उत्पन्न हुआ करती हैं। और आखिर घोर अन्धकूप नरकगामी ही होता है। और जो सर्वदा पुण्यरत है उसके हृदयकी प्रेरणायें सदा पुण्यमयी ही होगी। विशेश तो क्या परन्तु दोचार दिनके लिये भी जो तीर्थ, व्रत, दानादिक शुभकर्म करता है उसको भी दश पांच रोज शुभ स्फुरणायें ही होती हैं। अत एव प्रत्येक मनुष्य मात्रको सर्वदा शुभकर्ममें ही प्रवृत्त रहना सर्व प्रकारेण उचित है।

प्रारब्धकर्म

पुण्य और पापरूप सञ्चितके कुश अंशको लेकर सर्वनियन्ता जगदीश्वर प्राणियोंको भोगनेके लिये जिसे देता है उसको प्रारब्ध कहते हैं। यह प्रारब्ध भोग तीन तरहका होता है, एक निजेच्छा प्रारब्ध, दूसरा परेच्छा प्रारब्ध, तीसरा अनिच्छा प्रारब्ध, किसीको रास्ते चलते ठोकर लगी अकस्मात् घोर दुःख उपस्थित होगया, सांप काटलिया. अस्मात् विनाकारण ही किसीके हाथकी लाठी या शस्त्र लग गया, और घायल होना पडा, या अपने ही हाथका शस्त्र रखते, उठाते, देते, लेते, हाथमे लगगया. अकस्मात् रोगने आक्रमग कर लिया, यह सब दुःखरूप अनिच्छा प्रारब्ध कहलाते हैं। रास्ते चलते धनकी प्राप्ति हो गई किसी गाममें वास किये और वहांके लोगोंने जान पहिचान विना ही जमीन धन, या यश दिया, इत्यादिक सब सुखरूप अनिच्छा प्रारब्ध कहलाते हैं।

विना इच्छा किसी अपरिचित व्यक्तिसे धन, सुख या दुःखकी प्राप्तिको परेच्छा प्रारब्ध कहते हैं। हमारी इच्छा नही है कि अमुक व्यक्तिद्वारा हमें सुख या दुःख प्राप्त हो परन्तु वह व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छासें जो सुख या दुख देवे वह परेच्छा प्रारब्ध कहलाता है।

अवश्य जो मनुष्य परेच्छासे प्रारब्ध भोग चुका उसका तो उतना प्रारब्ध कर्म नष्ट होगया, परन्तु उस मनुष्यने दुख देनेवाले और दिलवानेवालेने तो दुष्ट सञ्चित किया ही और उसको उस दुष्ट सञ्चितका फल भोगना ही

पडेगा इसमें कोई संशय नहीं। क्योंकि कर्म फलका हेतु प्रथमसे निश्चित होता नहीं है कि अमुकव्यक्ति अमुकव्यक्तिद्वारा अमुक भोग भोगेगा, अमुकव्यक्तिको अमुकव्यक्तिद्वारा सुख और अमुक द्वारा दुःख मिलेगा, अमुक मनुष्य अमुक दिन अमुक पाप करेगा और अमुक पुण्य,यदि ऐसा ही होता तबतो प्रत्येक जीव निर्दोष साबित होते, क्योंकि उन्होंने तो ईश्वराधीन होकर ही चोरी डकैती हिंसादिक घोर कुकृत्य किये हैं, यदि ऐसा होता तो शास्त्र उन जीवोंके लिये दण्ड विधान भी नहीं करता अतएव यह विदित होता है कि ईश्वर तो केवल उसके शुभाशुभ सञ्चितके अनुसार प्रेरक मात्र है, परन्तु कर्म करनेके लिये प्रत्येक जीव स्वतन्त्र हैं। जब स्वतन्त्र है तव उसे निजकृत कर्मोंका फलभी भोगनाही पडेगा।

स्वेच्छा प्रारब्ध उसे कहते हैं जो निज इच्छासे सुन्दर जलसा किया, सुन्दर गाने सुने, सुन्दर पदार्थ बनवा कर खाये, सुन्दर वस्त्राभूषण पहिरे, और प्रारब्धद्वारा सब सुखके साधन प्राप्तभी होते गये उसे सुखरूप निजेच्छा प्रारब्ध कहते हैं। और अपनी इच्छासे ठण्डी सही अपनी इच्छासे धूप सहा, अपनी इच्छासे वरसादमे भीजे, इत्यादि दुःखरूप स्वेच्छा प्रारब्ध है। यह याद रखना कि स्वेच्छा प्रारब्ध पूर्वकृत कर्मद्वारा भोग भोगनेके लिये मिले हुए प्रारब्धसें ही भोगे जाते हैं।

सञ्चित प्रेरणा मात्र करता है तदनन्तर क्रियमाण होता है परन्तु क्रियमाण कर्मसें सुख या दुःखरूप फलसिद्धि देना या न देना. अभी तत्काल देना या विलम्बेन देना वह प्रारब्धके हाथकी वात है। यह तो समझना अत्यन्त दुस्साध्य है कि—अमुक सुख या दुख पूर्वकृत पुण्य पापका फल है या हाल इसी जन्ममे हमने किया और वह प्रारब्ध

बनकर हमें सुख दुःख दे रहा है अतः कहना पडता है कि गहना कर्मणो गतिः। प्रारब्ध भोगके और भी दो भेद हैं। एक मानसिक भोग दूसरा शारीरिक। किसी–किसी समय देखा जाता है कि कोई व्यक्ति अनन्त कष्ट में है परन्तु उस समय भी उसके चेहेरे पर आनन्दकी मधुर मोहिनी नाचती हो ऐसा मालुम होता है। और किसी किसी समय अत्यन्त हँसमुख और अनेक सुखसाधनोंको प्राप्त पुरुषभी चिन्ताके अगाधसमुद्रमे डूबते देखनेंमे आता है। या स्वप्नेमें, किसी अन्य अवस्थाओंमें अकस्मात् मनमें दुःख सुखका उद्भव होना मानसिक प्रारब्ध भोग है।

और शारीरिक प्रारब्ध भोग तो प्रत्यक्ष भोगते ही है। कितने लोगोंका कथन है—

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिःपक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते॥

तीनवरषमे, तीनमासमें, तीनपक्षमें, तीनदीनमें, अत्यन्त उत्कट पाप और पुण्यका फल इसी लोकमें प्राप्त होजाता है। परन्तु यह कोई खास नियम नही है। यह नियम हरजगह लागू पडते नहीं दीखता है। तब यहां यही कहना परमोचित है कि कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ प्रभुके सिवा अन्य कोईभी इस कर्म सागरकी अथाह थाहको नहीं पा सकता है सिवा प्रभुस्वरूप, प्रभुप्रेमी अभिन्न हृदय भागवतोंके।

क्रियमाणकर्म

अपनी इच्छासें भले बुरे नव्य कर्मोंको क्रियमाण कहते हैं। मनुष्य ईश्वरीय नियमोंके आधीन रहते हुएभी क्रियणाण करने या न करने और शुभाशुभ कर्म करनेको स्वाधीन है। इस कारणसे जीवको फल भोगनेके लिये विवश होना पडता है. हमारे प्राचीन शास्त्रकारोंने चारो वर्णों और चारो आश्रमोंके और सब त्यागकर प्रभु शरणागत भक्त जनोंको क्या कर्तव्य होने चाहिये उसका सविस्तर वर्णन लिखा है प्रत्येक स्मृति, पुराण, और संहिताकारोंने न्यूनाधिक्यसें अवश्य इसका वर्णन किया है यदि उन समस्त आप्त वचनोंको एकत्रित करने लगें तो कितनें ही जन्म व्यतीत होजायँ परन्तु पार न आवे अतः मैं तो सन्त महात्मा सद्गुरु और सतशास्त्रोंमें कहीं पर जो वाँचे सुने हैं उनमेंसे कुछ यहाँ वर्णन करता हूं।

ब्राह्मणोंके कर्म

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

मनकानिग्रह करना, इन्द्रियोंका निग्रह करना, तपनिष्ठ रहना क्षमा, सरलता, शास्त्रज्ञान, और आनुभविकज्ञानादि सद्गुण युक्त होना और ईश्वरके प्रति अथाह प्रेम होना यह ब्राह्मणोमें स्वाभाविक गुण होते हैं।

ब्राह्मण सर्वगुण सम्पन्न हो परन्तु भगवत्परायण न हो तो

उसके समस्त कर्म भार स्वरूप होजाते हैं शुभकर्म व्यर्थ होजाते हैं। कहाभी है—

विप्राद्विषट्गुणयुतारविन्दनाभपादारविन्द विमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्। मन्ये तदर्पितदृशो वचनेहितार्थप्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः॥

(भागवत)

"यदि ब्राह्मण शम दमादिक गुण युक्त हो परन्तु कमलनाभ प्रभुके पदारविन्दसे यदि विमुख हो तो उस ब्राह्मणसे वह शूद्र नीच चाण्डाल श्रेष्ठहै जिसनेकि अपना सर्वस्व कर्ममनवचनेन प्रभु समर्पण करके श्रीहरि भजन करता है। कारण कि वह श्वपच भक्त अपने कुल सहित भवसागर पार होजाता है और प्रभुभक्ति विहीन विप्र स्वयम्भी नही तर सकता है."

ब्रह्माजी कहते हैं—

अहो बतश्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्। पुतेस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्य्या ब्रह्मानुचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

(भागवत)

"अहाहा! हे भगवन्! जिसकी रसना आपका सुमधुर नामामृतका निरन्तर पान करती है। वह यदि श्वपच जातिका क्यों न हो परन्तु उन ब्राह्मणोंसे अत्यन्त श्रेष्ठ है जो तुम्हारे पावनतम नामकी अवहेलना कर यागादि कर्मोंमें फँसे हैं। हे नाथ! जो आपके त्रिभुवन पतितपावन नामका सप्रेम सङ्कीर्तन करता है वह समस्त तपोंका, सस्वर वेदाध्यनका, विधिवत् यज्ञानुष्ठानका, और समस्त तीर्थाटनका

फल प्राप्तकर लेता है क्योंकि आपके पुण्यधाम नाममें ही समस्त पुण्य कर्मोंका समावेश है. ऋषिगण कहते हैं—

स कथं ब्राह्मणो यश्च हरिभक्तिविवर्जितः।
स कथं श्वपचो यश्च भगवद्भक्तिमानसः॥

अरे भाई वह ब्राह्मण कैसे हो सकता है जो प्रभुभक्ति विहीन कोरा कडाक प्रभु प्रेमशून्य है। और वह श्वपच कैसे हो सकता है जो प्रभुप्रेम परायण परमदीन आस्तिक और भगवान्का शरणागत है। अतः—

विद्याविनयसम्पन्ना ब्राह्मणा वेदपारगाः।
मदीयभक्तिहीनाश्च चाण्डालसदृशा हि ते॥

(भार्गवपुराण)

"विद्या और विनय सम्पन्न वेदज्ञभी वह ब्राह्मण चाण्डाल सदृश हैं जोकि मेरी भक्तिसें हीन हैं।"

आजकालके नामधारी वेदज्ञतो क्या परन्तु वेंद किसका नाम है उसकोभी नही जानने वाले गायत्री मन्त्रभी पूरा शुद्ध याद न रखने वाले, ब्राह्मणोचितकर्मशून्य, स्नान, संध्या, तर्पण, स्वाध्यायादिकोंसे रहित, जातीके अभिमानके नशेमें मतवाले इन बातोंपर विचार नही करते हैं। परन्तु अब उन्हें सचेत होना चाहिये और अपने ही पूर्वजोंके ग्रन्थोंको पढना चाहिये। विद्वान् होना चाहिये और वेदोंको समझकर वेद प्रतिपाद्य पूर्ण ब्रह्म परमात्मा प्रभु श्रीरामके उपासक होना चाहिये अन्यथा "मैं ब्राह्मण हूं" "मैं ब्राह्मण हूं" इस तरह बकवाद करनेसे

कोईभी लाभ नही है। हां, भगवद्भक्त शूद्रादिकोंकी निन्दा कर भागवतापराधके महान् पापके भागीदार अवश्य होते हैं। हे प्रभु। तू कृपा कर और तेरे बालकोंकी बिगडी हुई दशाको अब तू स्वयं आकर निज करकमलोंसे ही सुधार। अब हमें और कोईभी उपाय नहीं सूझ रहा है। हमारी टूटी हुई नाव भवसागरकी घोर तरङ्गोंमें अथडा रही है। हे दयालु! अब तू निर्हैतुकी दया दिखाकर बालकोंकी रक्षा कर।

क्षत्रियोंके कर्म

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

(गीता १८, ४३)

शूरता, तेजस्विता, धैर्यता, चतुरता, युद्धमें परम दृढ़ता, वीरता, अभीरुता, दान देनेमें उदारता, और ईश्वरभाव अर्थात् शरणमे आये और आश्रित मनुष्योंका निःस्वार्थभावेन परिपालन करना, मेरे आश्रितों का हित किस तरहसे हो ऐसी चिन्ता रखकर उन लोगोंका हित करना, गो, ब्राह्मण, और देवताओंपर आते हुए विघ्नोंको विदारण करना और गौ, ब्राह्मणकी रक्षा करना, पूजा करना, इत्यादि क्षत्रियोंके सहज कर्म हैं।

क्षत्रिय राजाको उचित है कि अपनी प्रजाका पुत्रवत् पालन करे, किसीको पीडा न दे, प्रजाका खून पी पीकर अपना पेट न

पाले, पहले प्रजाको सुखी करे पश्चात् अपने सुखको देखे, प्रजाके सुखसे सुखी और प्रजाके दुखसे दुःखी रहे, जिस राजाके राज्यमे प्रजा दुःखी होती है वह राजा घोर निरयगामी होता है, अतः प्रजाका पालन करते हुए प्रभु भजन तत्पर रहना चाहिये. जहांतक बने अपनी प्रजामें धार्मिक भावोंकी वृद्धि करे। नास्तिक वादका नाश हो और सब प्रजा स्वधर्मनिष्ठ और प्रभु प्रेम परायण हो ऐसा उपाय करना चाहिये और स्वयं भी प्रभु भक्त बनना चाहिये।

वैश्योंका कर्म

कृषिगोरक्ष वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ॥
(गीता अ० १८, ४४)

वैश्योंका शुभ क्रियमाण गौओंकी सेवा करना, शुद्ध कपट रहित, दगाबाजी त्यागकर व्यापार करना. और खेती वाडीका काम करना यह वैश्योंका स्वाभाविक धर्म है।

आजकालतो व्यापारियोंकी इतनी दशा बिगडी हुइ है कि–जिसका कुछ वर्णन भी नही कर सकते, आज शुद्ध घी, शुद्ध दूध, शुद्ध आटा, शुद्ध चीनी, कोई भी चीज शुद्ध विना दगलबाजीकी नही मिलती है। तौलनेमें, लेनेमें, देनेमें, भावमें, सबमें कपट भरा पडा है। ग्राहक हमारी दुकानकी सडी गली चीज लेजाकर भले रोता रहे परन्तु मेरे घरमेतो पैसा आना चाहिये। एक पाई भी क्यो जानेंदे, ऐसे दुष्ट भाव प्रत्येक व्यापारियोंके दिलमे भरे पडे हैं। ऐसे आचरण

करनेंसे हमारी अन्तमें कैसी दशा होगी ? मरणके बाद हमे सुख मिलेगा अथवा दुःख ? इसकी किसीको परवाह नही है। केवल पापमय पैसे कमाकर गरीब लोगोंका खून चूसकर अपने पेटका पालन करना ही सीखे हैं टका धर्म टका कर्म और टकाही परमा गति, मान बैठै हैं। परन्तु विचारो, आंखैं खोलो। उस धधकती हुई काल ज्वालासें कोई भी बचा नही है, तुम क्या परन्तु तुम्हारे सरीखे लाखों जिसके एक रोमके बराबर भी न हो सको वैसे वैसे प्रतापी, धनी और पापी पलक मारते मारते नाश होगये कोई भी उनके साथ न गया. एक कविने कहा हैं–

मुहैया गर्चे सब सामान मुल्के और मालीथे ।
सिकन्दर जब चला दुनियासें दोनों हाथ खालीथे ॥

यह तुम्हारे मुठ्ठीभर पैसे जहां गाडे होंगे वहां ही रह जायँगें और कालके पाशमें बांधकर तुम्है कालेकराल यमदूत पकड लेजायँगें। तुम्हारा धन, स्त्री, पुत्र, पशु, सब यहीं रह जायँगें, जिन्दगी पानीके बुद्बुदेके समान है न माऌम किस समय विलाय जायगी इसका कोई निर्धारित समय नही है अत एव सचेत होकर कपट और दगाबाजी छोडकर प्रभुभजन करो.

शूद्रोंके कर्म

परिचर्य्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥

(गी० १८, ४४)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्योंकी सेवा करना, उसीमेंसे जो प्राप्त हो उसमें सन्तुष्ट रहना, प्रभुभजन करना यह शूद्रोंका कर्म है–

प्रत्येक वर्णोंका कर्म

अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, प्राणिमात्र पर दया, चोरी न करना, परधन हरण न करना, कामादिक षट् विकारों पर विजय प्राप्त करना. प्रभुभजन करना, द्वेष, हिंसा, मिथ्यावाद, अत्यन्त विषयलोलुपता, दुष्ट बुद्धि, नास्तिकता, अश्रद्धा, अविश्वासादिका परित्याग करना, और सर्वत्र प्रभुव्यापक हैं प्रभु सर्व स्वामी और सर्वशक्तिमान् हैं ऐसा समझकर अपना सर्वस्व उसी दीनदयालु प्रणतार्तिहर प्रभुके पाद पद्मोंमे समर्पण करदेना. यह प्रत्येक वर्ण और आश्रमनिष्ठ मनुष्योंके कर्तव्य हैं प्रभुभजन करना प्रत्येक प्राणीको योग्य है और भगवद्भक्त चाण्डालका भी अपमान् महान् हानिकारक है–प्रभुका वचन है–

चाण्डालमपिमद्भक्तं नावमन्येत बुद्धिमान् ।
अवमन्येद्विमूढ़ात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

" यदि चाण्डाल भी मेरा भक्त हो तो उसकी भी अवहेलना मत करो, यदि कोई मेरा यह वाक्य न मानकर चाण्डाल भक्तकी भी अवहेलना करता है वह महा घोर रौरव नरक गामी होता है "

अत एव भक्तोंकी निन्दा न करना, पाप न करना, धर्माचरणका पालन करना, प्रभुभजन करना, और समस्त दुराचरणोंका त्याग करना. सार्वजनिक धर्म है ।

ब्रह्मचारीके कर्म

ब्राह्मणका बालक जब आठ वरषका होजाय तब उसे वेद विधान सह यज्ञोपवीत प्रदान किया जाता है। तबसें वह ब्रह्मचारी बालक आचार्यके आश्रम पर जाकर विद्या प्राप्त करता है, गुरु-गृहवास, जप, शुद्धसात्विकअल्पाहार, राजसी उपकरणोंका त्याग, शुद्ध सात्विक व्यवहार, गुरुसेवा, त्रिकालसंध्यावन्दन, ब्रह्मचर्यपालन, वीर्यरक्षा, अष्ट प्रकारके मैथुनोंका त्याग. अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गौ, देवादिकोंकी, सेवा, और ईश्वराराधन इन नियमोंका पालन करता है, जिन्दगीका चतुर्थांश समय इन नियमोंमें विताकर श्रीगुरु दक्षिणा देकर गुरुपूजनकर, उनका शुभ आशिर्वाद प्राप्त कर समावर्तन संस्कारकर दूसरे आश्रमको ग्रहण करना यह कर्म उपकुर्वाण ब्रह्मचर्याश्रमीके हैं। श्रेष्ठ ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्याश्रमके पश्चात् गृहस्थाश्रममें न जाकर संन्यास लेलेता है। और जिसकी इच्छा गृह धर्म पालन करनेकी है वह अभीष्ट धर्मग्रन्थ, अर्थग्रन्थ, और अनेक प्रकारकी, यौगिक, मानसिक और शारीरिक विद्याएं प्राप्त कर गुरु आज्ञा लेकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है। शौच, सदाचार, गुरुसेवा, सन्ध्योपासन, सरलता, जप, तप, ईश्वरभजन सभी आश्रमवालोंके कर्म हैं परन्तु ब्रह्मचारीके तो मुख्य कर्तव्य हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी तीव्र तेजस्वी बनता है। कठिन तपद्वारा उसकी समस्त आशा, तृष्णा, कामवासना और सांसारिक लिप्साका नाश होजाता है वह परम वैराग्य और ज्ञानको प्राप्त कर अन्तमे अविच्छिन्न ईश्वर प्रेम प्राप्त कर कृतार्थ होजाता है इस लोकका महान् देवता बन जाता है।

गृहस्थके कर्म

ब्रह्मचर्याश्रमका विधिवत् पालन करके वेदमन्त्रोद्वारा वैवाहिक कर्मकर अपने गृह संसारको हाथमेंले—अपने कुटुम्बका पालन करे धर्मसहित धनोपार्जन करे पापका पैसा एकठा न करे. देव, ऋषि, गौ, अतिथि, संन्यासी, और अनाथ प्राणियोंकी सेवा करे, अपने परिवारमे ही परमासक्त न होजाय, बृहद् कुटुम्बवाला होजाय तो प्रमाद वश प्रभुभजन न भूल जाय, जहांतक बने घरकाम शीघ्र निपटाकर प्रभु भजनमे विशेष काल व्यतीत करे, और आधी अवस्था होजानेपर घर, दारा, पुत्र, धन, पशु और सुहृद मित्रादिकोंके प्रेममे एकदम फँस नजाकर हृदयमे वैराग्य धारणकर स्त्री सहित या स्त्री रहित वानप्रस्थ आश्रम धारण करले यह गृहस्थोंका शुभ कर्म है।

वानप्रस्थके कर्म

वानप्रस्थ यथावत् गृहस्थाश्रमका पालन करके स्त्री सहित या एकला वनमे जाकर निर्द्वन्द निश्चिन्त और दृढ़ वैराग्य धारणकर प्रभु सुमिरण करे—

संन्यासीके कर्म

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ धर्मका पालन करके एक कौपीन एक कन्था दण्ड और कमण्डलुके सिवा समस्त चीजोंका परित्यागकर एकला, निर्भय होकर निर्जन देशमें वासकर शुभ वर्णवालोंके

घर भीक्षा माँगकर या वनमें स्वयं पेदा होनेवाले फल, फूल, कन्द, मूलका सेवनकर जीवन निर्वाह करे उसे संन्यासी कहते हैं। इन्द्रिय और मनको आत्माके वश करके, नदी, पर्वत, तपोवन, तीर्थ अथवा प्राचीन महर्षियोंके आश्रम पर वास करे, भिक्षा न मिलने पर उदास न होय और अधिक भिक्षा मिल जाने पर प्रसन्न नही हो सदा शान्त एकरस संयमनियमनिष्ठ और ईश्वराधन तत्पर रहे।

संन्यासी सत्शास्त्र और सन्तपुरुषोंके वचन सुनाकर सदा संसारके जीवोंको सन्मार्गपर लाते हैं, जिसका अन्न खाते हैं उसको पूर्णतया प्रभुपरायण बना करही छोडते हैं। और स्वयं देश–देश ग्राम–ग्राम घूमकर जीवोंको प्रभु चरणोंमें झुकाते हुए दूसरोंका और अपना परम कल्याण करते हैं।

जो काम, क्रोध, लोभ, मोहके वश, इन्द्रियोंकागुलाम, ज्ञान, वैराग्य और उपासना शून्य, चञ्चल, विषयलोलुप, दुर्बुद्धि, आलस्य और प्रमादके वश होकर लोगोंको ठगकर पेट पोषण करता है, दण्ड कमण्डलु और काषाय वस्त्र धारण करता है परन्तु हृदय अत्यन्त मलिन और पापाचरणी दुष्ट है वह पापात्मा महाघोर नरकके कष्टोंको भोगता है। विरक्तोंके लक्षणोंसे रहित होकर केवल दिखलानेके लिये नटों और भाँडोंकी तरह वेष बनाकर लोगोंको धोखा देता है वह अधम गतिको प्राप्त होता है।

पूज्य विरक्तो! धर्मके आचार्यो ! बहुत सोये, जागो, उठो, अपने कर्तव्य पथ पर आरूढ़ हो जाओ और समस्त अपवादोंके कार-

णोंको दूर कर पूर्वजोंके समान गौरवशाली बन जाओ, इसमे अपना और जनताका दोनोंका हित समावेशित है। अपने पूर्वजोंकी महिमाका स्मरण करके अबतो कुछ आंख खोलो नही तो अब आपका और आपकी सम्प्रदायका अधःपतन होनेका समय उपस्थित होगया है। आप धर्मोपदेशक कहलाते हो यदि स्वयं धर्मका पालन नही करोगे अविचारीही बने रहोगे तो क्या जगत्को धर्म मार्ग बता सकोगे? अतः स्वयं पढ़ो और अपने शिष्योंको पढ़ाकर धर्मके धुरन्धर उपदेशक बनाओ. प्रेमपूर्ण बनजाओ कलह, वैर, विरोध और दुर्व्यसनोंका सर्वथा त्याग करदो, आज वैष्णव संन्यासकातो नाम तक कोई जानता नही है न मालूम आज हमारा वह प्राचीन परम पावन वैष्णव संन्यास किस कन्दरामें जा छिपा है कि आज उसके किसीको दर्शनकाभी लाभ नही हो रहा है.

पूर्वके संन्यासी आजकालकेसे नहीथे हमारे वैष्णव संन्यासी परम वैराग्यशील प्रभुपरायण ऊर्ध्वपुण्ड्र, धनुषबाणके चिह्नसे चिह्नित, यज्ञोपवीत, तुलसीमाला, श्रीराममन्त्रके उपासक त्रिदण्ड और काषाय वस्त्र-धारी परमदिव्य और भव्य विग्रहवान, सन्तोष, तथा ज्ञान वैराग्य और उपासनाके मूर्तिमान् विग्रह ही होते थे, विशिष्टाद्वैतवादी और सतत संसारके हितके लिये प्रयासी होते थे.। यदि आज विद्या भक्ति वैराग्य और परम प्रचण्ड तपोधन एकभी आचार्य हमारेमें मौजूद होते तो आज वह समस्त विद्रोहियोंका मुख भञ्जनकर सम्प्रदायका उद्धार कर देते—

हे प्रभो ! हे जगद्गुरु श्री रामानन्द स्वामी ! आज आप भी अपनी सम्प्रदायको भूल बैठे हैं। आपके अनुयायियोंका अधः पतन हो रहा है तो भी आज कुछ खबर नही ले रहे हैं, आपतो सर्वान्तर्यामी हो, धर्मके उद्धारक हो, भक्तिके प्रबल सिद्धान्तोंके स्थापक हो, श्रीराम प्रेमकी परमपावनी भागीरथीको अवनीतलमें वहाने वाले हो, प्रभो ! जिस समय आप अवनीतल पर पदार्पण किये थे उससें भी विकट और महा त्रासदायक समय आज उपस्थित है। अब हम लोगोंमे विद्या, बुद्धि, धन या तप शक्ति कुछ भी नहीं है। हम परम दीन होकर आपके शरणागत हैं। आप कृपामृत वरषाकर अपनी किसी दिव्य विभूतिको पुनः संसारमे भेज दीजिये और हम सबका उद्धार करिये।

यदि कोई ऐसा कहे कि हम जो कुछ करते हैं वह सब प्रभुही कराता है हम कुछ भी नही करते यह कहना सर्वथा अनुचित है क्योंकी ऐसा कहनेंसे दयालुता, न्याय परायणता, समदार्शिता—इन तीन ईश्वरीय गुणों पर आघात पहुंचती है—

जब प्रारब्ध और ईश्वर ही भले बुरे कर्म कराता है तो फिर शास्त्रोंमे 'सत्यंवद' धर्मंचर, मातृदेवोभव, पितृदेवोभव, आचार्य्यदेवोभव सुरांनपिबेत्, परदारान्नाभिगच्छेत्, माहिंस्यात्सर्वाभूतानि, आदिक विधि निषेधमय वाक्य होनेंही न चाहिये। पुनः ईश्वरही पाप पुण्य कराता तो हमें उसका फल क्यों भोगना पडता? उसका फल तो ईश्वरको ही भोगना चाहिये। अतएव पाप पुण्यका कारयिता प्रभुको

माननेंसे ईश्वर निर्दयी और अन्यायी ठहरता है। आजतक कोई भी न्यायाधीश ऐसा नही हुआ है जो कि पाप करनेका विधान भी करे और पाप करनेवालेको दण्ड भी करे। क्योंकि एक व्यक्ति राजाकी मरजीसे और राजाके करानेसे कोई भला बुरा काम करे तो वह दण्ड भोक्ता नही होता है यदि राजा उसको दण्ड देवे तो वह क्रूर और अन्यायी माना जायगा. परन्तु ईश्वर परम दयालु, न्यायी, और समदर्शी है अतः प्रत्येक प्राणीको शुभाशुभ कर्मानुसार प्रेरणा करता है परन्तु वह कर्म करनेके लिये बाध्य नही करता है। यदि ईश्वर पाप करानेके लिये विधान करे और पुनः पापीयौंको पाप फलरूप दुखप्रदान करे तो जीव कभी पापसें छूट ही नही सकता, कर्म करना मनुष्यका कर्तव्य है और फलप्रदान करना ईश्वरका कार्य है-

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

प्रत्येक मुमुक्षु जीवोंको तो उचित है कि अपने २ कर्मोंको विधिवत् पालन करके वह कर्मफल अपने पास न रखकर प्रभुको अर्पण कर दे—

प्रभुकी आज्ञा है—

"भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्"

जो अपने लिये ही कर्म करता है प्रभुको समर्पण नही कर देता है वह पापको भोगता है। अतः

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम् ॥

हे कोन्तेय ! जो कुछ करे, जो कुछ खाय, जो कुछ हवन करे जो कुछ दान करे, और जो कुछ तप करे संक्षेपसे समस्त कर्म मुझे अर्पण कर दे.

भगवद् भजनसे पापका नाश, सुकृत समर्पण करनेंसे सुकृतोंका नाश, और भोगभोगनेंसे प्रारब्ध कर्मका नाश होजायगा और कर्म बन्धनसे छूटकर परम पदकी प्राप्ति करलोगे। परन्तु प्रत्येक कर्म निष्काम भावसें और ईश्वर सेवा मानकर करना चाहिये। वही कर्म घोर बन्धनकारक है जो सकाम भावसें अपने लिये करता है और वही कर्म मुक्तिका मार्ग है जो ईश्वर सेवा समझकर निष्काम भावसें किया जता है। और कार्य समाप्ति होते ही वह कर्म प्रभु समर्पग कर देना चाहिये। प्रभु भजन,प्रभु पूजा प्रभु वन्दन, और प्रभु सेवामें किये जानेवाला कर्मबन्धन नही करता है प्रत्युत समस्त पापोंको विध्वस्तकर मुक्तिका मार्ग परम सरल बना देता है—

। इति कर्मयोग ।

ज्ञानोपाय

वेदान्तार्थ विचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम् ।
तेनात्यन्तिक संसार दुःखनाशो भवत्यनु ॥
त्यक्त्वाऽहं ममताभावं निश्चेष्टो निरुपाधिकः ।
धीरो ज्ञान कुठारेण छिन्ते संसारबन्धनम् ॥

वेदान्तके तत्त्वोंका निरन्तर विचार करनेंसे हृदयमें शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है। उस ज्ञानकी प्राप्ति होनेंसे सांसारिक दुःखोंका आत्यन्तिक नाश होजाता है। धीर पुरुष अहन्ता और ममताको त्यागकर निश्चेष्ट और उपाधिरहित होकर परम ज्ञानकी प्राप्ति करके संसारके बन्धनको काट देता है।

येत्वक्षर मनिर्देश्य मव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यञ्च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
सन्नियम्येन्द्रिय ग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥
ते प्राप्नुवन्तिमामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

(गीता १२, ३-४)

"जो समस्त इन्द्रियोंको दमनकर, अव्यक्त, अवर्णनीय, अचिन्त्य सर्वव्यापक, कूटस्थ परमध्रुव, ऐसे प्रभुस्वरूपमे निष्ठ, समबुद्धिवाला, सर्व भूत प्राणि मात्रके हितमें रत है वहभी मुझको प्राप्त कर लेता है!"

इन वचनोंसे मालुम होता है कि ज्ञान मार्ग भी प्रभुको प्राप्ति करा देता है। परन्तु यह मार्ग है परम कष्ट साध्य, अरे जहां–

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"

"वाणी और मन पहुंच नही सकते तो फिर बिचारा मन उस अव्यक्तसे कैसे प्रीति करै? जो मन हमेशाँ सुखही सुखकी चाहना करता है वह ऐसे क्लेशकर मार्गपर क्यों चढ़ेगा? अव्यक्तोपासनाके कष्टको तो प्रभु स्वयं वर्णन करते हैं।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

(गीता १२–५)

जिनके हृदयमें देहाभिमान बना हुआ है ऐसे लोगोंसे अव्यक्त ब्रह्मकी उपासना हो नही सकती, क्योंकी अव्यक्तमें चित्तको आसक्त रखनेवालोंको अत्यन्त कष्ट भोगने पडते हैं।

अव्यक्तोपासक अनन्त क्लेश भोगकर कहीं प्रभुकी प्राप्ति करेतो करे यदि वीचमें ही मायाका झपाटा लगा तो फिर नापता भीहोजाता है, परन्तु सगुण उपासकोंको इन कष्टोंका सामना नही करना पडता, उनके लिये तो प्रभुकी आज्ञा है—

"तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥"

(गीता १२–७)

" सगुणदेहधारी मुझमें चित्त लगाने वाले प्रेमी जनोंका इस मृत्युरूप संसारसे मैं शीघ्र उद्धार करता हूं । "

जो भाग्यवान् भगवद्भक्त प्रभुके इन वचनोंपर पूरा भरोसा रखकर परमकरुणासागर प्रभुको अपनी जीवन नौकाका खेवैया बना लेता है वह अनायास ही संसारसे पार होजाता है उसको किसी प्रकारका भय नहीं रहता कि हमारी नाव डूबेगी, टूटेगी, टकरायगी या किसी प्रकारसे नष्ट होजायगी, क्योंकि उसके नाविक परम समर्थ प्रियतम प्रभु हैं। अव्यक्त उपासक भी भवपार जाता है परन्तु उसका रास्ता बडा भयावह हो जाता है नावके टुटने, फूटने और डुबनेका भय सतत उसे सताया करता है। अव्यक्तोपासक, अहङ्कार, लोकैषणा, पाखण्ड, काम, क्रोध, मदलोभादिक भयङ्कर भँवरोंसे वचकर यदि आगे बढ पाया तो पार होगया, नहींतो मध्य महासागरमे ही डूब जायगा. और भक्तके इन विघ्नोंके निवारक प्रभु होते हैं सर्व विघ्नोंका नाश करके वह दीनबन्धु भक्तको असीम शान्ति और आनन्दमय परम धाममें पहुंचा देता है भक्तका बाल भी वांका नही होने देता।

अव्यक्तोपासककी साधना अत्यन्त कष्टदायनी होती है। उसको दुर्निग्रहा और परमप्रवला इन्द्रियोंका सामना करना पडता है अरे जो इन्द्रियें " विद्वांसमपिकर्षति " अर्थात् बड़े बड़े धीर विद्वानोंको ज्ञानियोंको भी ऐसा पटकती है कि उन बेचारोंकी हड्डी हड्डी चूर होजाती है, उनको जीतना क्या काचे पोचेका काम है ? इन्द्रियोंकी नग्न लीलाकाही नाम माया है। ऐसी स्वतन्त्र इन्द्रियोंको वशकर जिसका न रूप है न रङ्ग

न गुण है और न कोई आकर्षक शक्ति उसमें लगाना क्या सहज काम है?

यह तो "ज्ञानकी पन्थ कृपानकी धारा" क्या कोई मनुष्य तीव्रतर तलवारकी धार पर निश्चिन्त होकर दौड सकता है? कदापि नहीं, यदि कोई अल्पबुद्धि ऐसा काम करेगा तो वह घायल होकर गिरही पडेगा, वैसे अव्यक्तोपासनाका मार्ग अत्यन्त कष्टमय है। और इसकी अपेक्षा साकारोपासना अत्यन्त सुगम सरल और रसमयी है। साकार मनुष्य साकार प्रभुकी ही उपासना कर सकता है, साकार प्रभुकी भक्ति तथा पूजन कर सकता है, उसीको अपना पालक पोषक और उद्धारक बना सकता है, भक्त साकार प्रभुके सामने ही—

अवगुण मेरे बापजी, बहुत हैं गरीब निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिताको लाज॥
मैं अपराधी जनमका, नखशिख भरा विकार।
तुम दाता दुःख भञ्जना, मेरी करौ सम्हार॥

(कबीर)

ऐसी प्रार्थना कर सकता है और अनन्त शक्तिमान् दीनदयालु भक्तोंके दोषोंको माफ करके प्रेमके आधीन होजानेवाले प्रभुको ही—

अरे शिकारी निर्दयी, करिया नृपति किशोर।
क्यौं तरसावत दरश विनु, रामसखे चित चोर॥

इस प्रचार भय और सङ्कोचका त्यागकर खरी खोटी सुना सकता है, भला, यह भक्त और भगवान्के पारस्परिक प्रेमयुद्धका आनन्द वह

शुष्क ब्रह्मज्ञानी कब प्राप्त कर सकताथा, अव्यक्तोपासक तो परमपदको प्राप्त कर मुक्त होजाता है वे परमात्मामे घुल मिलकर एक होजाता है, फिर वापिस लौटकर मर्त्यलोकमे नही आता, बस इससे विशेष उन्हे कोई भी सुख नहीं मिलता केवल आवागमन मात्रका कष्ट निवृत्त हो गया। वह न तो सुखका ही अनुभव करता है और न दु:खका ही, और न अनन्त कन्दर्प लावण्यधाम प्रभुका दर्शनही कर सकता है और न वार्तालाप या सेवा, उसे श्यामसलोने जगमनमोहन प्रभुके मुखडेकी माधुरीके पानका कभी सुअवसर प्राप्त नही होता, अब आप ही कहिये कि सुगमता और सरलतासे अत्यन्त आनन्द प्रद स्थान किसको प्राप्त हुआ ? कहनाही पडेगा कि दिव्य रूपसागर और दिव्य गुणसागर व्यक्त प्रभुके सेवकोंको ही। सक्कर सक्करमे मिल गई तो मिलजानेवाली साकर मींठे रसका आश्वादन नही कर सकती परन्तु साकरका स्वाद तो विभिन्न रहकर सदा साकरका सेवन करनेवाला चींटाही जानता है उसी प्रकार ब्रह्मके अमित तेजमें मिल जानेवाला जीव ब्रह्मसुखका यथार्थ भोक्ता नही हो सकता है।

मृत्युसें भी तीव्र कष्टकारी जहरको आजतक कोई मनुष्य नही पी सका, भारी सुमेरू पहाडको कोई चवाय नही सकता उसी प्रकार मनुष्यको (देहधारी प्राणियोंको) निराकार प्रभुकी प्राप्ति नही हो सकती इसीसे विगत तृष्ण और निराकारके ध्याताओंको भी सगुणरूपमेंही आसक्त होना पडता है। अवश्य ज्ञान भी प्रभु प्राप्तिका मार्ग है मुक्ति-दाता है परन्तु है महाकष्ट साध्य। भागवत दशमस्कन्धमे ब्रह्माजी प्रभुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

**श्रेयः श्रुतिं भक्तिमुदस्यते विभोः क्लिश्यन्ति ये केवल ज्ञानलब्धये।
तेषामसौ क्लेशहि एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥**

हे प्रभो! कल्याणकी मार्गभूता आपकी भक्तिका त्याग कर जो नर केवल शुष्क ज्ञानकी प्राप्तिके लिये ही श्रम करता है उसको दाना रहित धानके पैयाके कूटनेवालेके हाथमे जैसे फोल्ला पडजानेंके सिवा और कुछ भी नही मिलता उसी तरह अव्यक्तोपासकको केवल क्लेशही प्राप्त होनेंके सिवा और कुछ नही मिलता।

महारामायणमे श्री शिव वचन है—

**ये रामभक्तिममलां विहाय सुरम्यां
ज्ञाने रताः प्रतिदिनं परिक्लिष्टमार्गे।
आरान्महेन्द्र सुरभिं परिहृत्य मूर्खा
अर्कं भजन्ति सुभगेशुभदुग्धहेतोः**

हे सुभगे! जो लोग निर्मल और परम रम्य प्रभु भक्तिका त्याग कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लियेही परिश्रम करते हैं वह घरमे बँधी हुई काम धेनूके दूधका त्यागकर आकडेके पत्ते तोड़ तोड़ कर दूध इकट्ठा करनेवाले मनुष्यके समान् हतबुद्धि मूर्ख हैं।

**श्रीरामं येहित्वा खलमति निरता ब्रह्म जीवं वदन्ति,
ते मूढ़ा नास्तिकास्ते शुभगुणरहिता शुद्ध बुद्धयातिरिक्ताः।
पापिष्ठा धर्महीना गुरुजनविमुखा वेदशास्त्रैर्विरुद्धाः,
ते हित्वा गाङ्गं रविकिरणजलं पातुमिच्छन्त्य तृप्ताः॥**

ये मर्त्या राम पादौ परमविमलौ संविहायार्तबन्धू,
ते मूढा बोध हेतोः घृत परिघटने वारिमन्थानयुक्ताः।
यो ब्रह्मास्मीति च नित्यं वदति हृदि विना रामचन्द्राङ्घ्रिपद्मम्।
तेऽबुद्धास्त्यक्तपोतास्तृण परिनिचये सिन्धुमुग्रं तरन्ति॥

किं वर्णयामि विमले बहुभिर्प्रकारैः
सीतापतेः विगत ज्ञान विशेषसर्वम्।
ज्ञानं तदेव कुसुमं ख यथा न भोजं
सत्यं वदामि च तदा न सुखं तु स्वप्ने॥

(महारामायण)

हे पार्वति! श्रीरामजीमहाराजकी पवित्र और सुगमतर भक्ति-मार्गको छोडकर जो मनुष्य "मैंही ब्रह्म हूं" इस प्रकारका मिथ्या-डम्बर करते हैं वे नास्तिक हैं, मूढ हैं, शुभगुण विहीन हैं, शुद्धबुद्धि शून्य हैं, पापिष्ठ हैं, गुरुजन (श्रेष्ठजन) विमुख हैं, वेदशास्त्रसें विरूद्ध वर्ताव करनेवाले हैं और गङ्गाकी विमल धाराको त्यागकर प्यास बुझानेके लिये ओसकणोंको इकठा करनेवाले मनुष्यवत् मूर्ख हैं।

जो मनुष्य परमविमल प्रभुपद पद्म मकरन्दको त्याग ज्ञान प्राप्त्यर्थ परिश्रम करते हैं वह पानी विलोकर घी प्राप्त करनेकी लालसा-वाले मनुष्यकी तरह व्यर्थ श्रमके भागी होते हैं। और जो प्रभुकी चरण कृपाकी चाहना न करके केवल मैं ही ब्रह्म हूं मैं निज पुरुषार्थ-द्वाराही मुक्तिको प्राप्त कर लूंगा. इस प्रकारके अभिमानवाले हैं वह जबरजस्त जहाजका त्यागकर दोचार तृणके तिनकेके सहारे घोर साग-

रको पार जानेकी हिम्मत बांधनेवाले मनुष्यकी तरह मध्य महासागरमें डूबकर मर जाते हैं।

हे विमले! बहुत क्या कहूं! आकाशके पुष्पको आजतक कोई प्राप्त न कर सका उसी तरह भक्ति विहीन व्यक्तोपासना रहित अव्यक्तोपासक कभी सुख प्राप्त नही कर सकता।

उपरोक्त पंक्तियां पढ़कर हमारे ब्रह्मज्ञानी अद्वैतवादियोंको अवश्य कुछ खोटा लगेगा परन्तु मैंने ये वातें अपनी तरफसे गढ़कर नही रक्खी है परन्तु यह मुझे शास्त्रद्वारा प्राप्त हुई है और अच्छे अच्छे विद्वान् भी उस पुस्तकका मान्य करते हैं और भक्तिरस पिपासु सुजन इसका प्रेमपूर्वक कथन करते हैं। तब ही मैंने इन पंक्तियोंका यहां उल्लेख किया है अत एव हमारे अद्वैत अव्यक्तोपासक भाई मनमे बुरा न मान कर भक्तिरसके रसिक बन जायँ। अस्तु—

प्रभु सत्, चित्, आनन्दरूप, विज्ञानस्वरूप, पूर्ण, अनादि, अनन्त, अज, अव्यक्त, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी और मन वाणी अगोचर हैं और वही प्रभु भक्तके प्रेमके आधीन दयालु, भक्तवत्सल, प्रेमपूर्ण, उदार, कृपासागर, परम मनोहर, सुन्दररूपधारी, रसिक, और प्रेमके सागर हैं अतः ज्ञानयोगसे भी प्रभु प्राप्त होते हैं परन्तु अतिशय कष्ट भोगनेपर, और भक्तिद्वारा सुगमरूपेण, अब आप तटस्थ होकर खूब विचार करलें कि सुगम सरल और आनन्दमय कौन मार्ग है? फिर उस मार्ग पर आरूढ़ होजाय। क्योंकि—

आत्मारामाश्चमुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूत गुणो हरिः॥

आत्मामें आराम माननेवाले बन्धनरहित महात्मा पुरुषभी उरुक्रम प्रभुकेही प्रेममें सदा मस्त रहते हैं क्योंकी प्रभुके अद्भूत परमरम्य और अनन्त ऐसे ही गुण हैं कि जिसके वशीभूत होकर समस्त विज्ञ पुरुषोंको भक्तिपरायण होनाही पडता है।

। इति ज्ञानोपाय ।

भक्त्युपाय

न ततोन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्॥

(भागवत)

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना,
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतोमहद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः।

(श्रीमद्भागवत ३, २५, २१)

"इस घोर संसृतिमे पडे हुए जीवोंको भगवान वासुदेवकी भक्ति सिवा मुक्ति प्राप्त करनेका और कोई रास्ता ही नही है"

"हे देवताओ! जिस भक्तकी प्रभुके चरणोंमे अविचल अहैतुकी भक्ति है उस भक्तके हृदय भवनमे सम्पूर्ण अप्राकृत दिव्य गुण आकर

निवास करते हैं और जो अनित्य सांसारिक विषय सुखोंमें ही निमग्न रहकर मनके रथपर सवार होकर विषयोंकी बाजारमें भ्रमण करनेवाले हैं वे पामर जीव महात्माओंके उपयुक्त सद्गुणोंकी प्राप्ति नही कर सकते हैं।" उसी सर्व सद्गुणमयी प्रभु भक्तिका स्वरूप भाष्यकार इस तरह वर्णन करते हैं।

उपाधि निर्मुक्तमनेकभेदिका भक्तिः समुक्ता परमात्मसेवनम्।
अनन्यभावेन मुहुर्मुहुः सदा महर्षिभिस्तैः खलु तत्परत्वतः ॥
सा तैल धारासम संस्मृति प्रसन्तानरूपेशि परानुरक्तिः।
भक्ति विवेकादिक सप्तजन्या तथायमाद्यष्ट सुबोधकाङ्गा ॥

(वैष्णवमताब्जभास्कर)

विद्वान् प्रभुभक्तिपरायण महर्षियोंने, अनन्य भावसे तत्परताके साथ सदा पुनः पुनः छलकपटका सर्वथा त्यागकर परमात्मा श्रीराम-चन्द्रजीकी सेवा करनेको भक्ति कहा है।

विवेक आदिसे जिसकी उत्पति होती है यमादि जिसके आठ अङ्ग हैं तैल धाराके समान निरन्तर स्मृति सन्तानरूपा भगवानमें जो दृढ अनुराग वही परा भक्ति कही जाती है।

सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन सेवनम्।
हृषीकेणहृषिकेश सेवनं भक्तिरुच्यते ॥

(नारद पञ्चरात्र)

समस्त उपाधियोंको त्यागकर प्रभुपरायण हो समस्त इन्द्रियों-द्वारा भगवान हृषिकेशकी सेवा करनेका नाम भक्ति है।

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारा वाहिकतां गतः।
सर्वेशे मनसो.वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते।

(भक्तिरसायने)

भगवद्धर्मके श्रवण और मननसे चित्त अत्यन्त द्रविभूत होकर सर्वेश्वर प्रभुके चरणोंमे जो धाराकी तरह वहता है उसका नाम है भक्ति।

अनन्य ममताविष्णो र्ममता प्रेम संज्ञिता।
भक्तिरित्युच्यते भीष्म प्रह्लादोद्धव नारदैः॥

अनन्य प्रेम संज्ञक प्रभुचरणमे जो ममता होती है उसको भीष्म उद्धव प्रहलाद और नारदादिक महर्षियोंने भक्ति कहा है।

"सा कस्मै परम प्रेमरूपा" अमृतरूपाच"

(नारदभक्तिसूत्र)

"प्रभुके चरणोंमे परम प्रेम रूप अचल श्रद्धा ही भक्ति है। वह अमृत समान परम मधुर है।

"यं लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतिर्भवति तृप्तो भवति"

(ना० भ० सू०)

जिस भक्तिको प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अर्थात् उसे साधनान्तरकी आवश्यक्ता नही रहती है यथा—

तस्माद्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥
यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्चयत्।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरै रपि॥

सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद्यदि वाञ्छति ॥

(श्रीमद्भागवत)

प्रभु कहते हैं कि—मेरे भक्तियोगनिष्ठ प्रेमीयोगियोंको न ज्ञानसे प्रयोजन है और न वैराग्यसे। उनका कल्याण तो केवल भक्तियोग-द्वाराही हो जायगा, कर्म करनेसे, तप करनेसे ज्ञान और वैराग्यपालन करनेसे, योगसे, दानसे, तीर्थाटन जपादिक अन्य शुभ कर्मोंसे और समस्त कल्याणकारी शुभ साधनोंके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है वह समस्त फल मेरा भक्त मेरे भक्तियोगके आराधनसे प्राप्त कर लेता है। स्वर्ग मोक्ष और मेरा दिव्य धाम जो कुछ चाहता मैं उसे देनेको हर समय तैयार हूं।

जब समस्त साधनोंका फल उस प्रेमी भक्तको घर बैठे प्राप्त होजाता है तबतो सिद्ध होही गया, पुनः अमृतिर्भवति, वह भक्त अमर होजाता है उसको मृत्युका भय नही रहता है—

श्रीरामनामाखिल मन्त्रबीजं सञ्जीवनं चेद्धृदि सन्निष्टम्।
हालाहलंवा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतोभिः ॥

जिस भाग्यभाजन भगवद्भक्तने श्रीराम इस दो अक्षरके दिव्य मन्त्रको अपने हृदयमे धारण किया है वह फिर हलाहल विष पीजानेसे, प्रलयके पावकमे दाडनेसे, और मृत्युके मुखमे पैठनेसे क्यों डरेगा? कारण कि वहतो रामनामामृत पीकर अमर होगया है। पुनः तृप्तो भवति प्रभु भक्ति प्राप्त करके मनुष्य ब्रह्मलोक तकके सुखोंसे तृप्त होजाता

है सिवा एक श्यामसुन्दर प्रभु दर्शनके उसे और किसी भी चीजकी लालसा नहीं रहती है यथा—

**न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धि र्न पुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः॥**

(श्रीमद्भागवत)

प्रभुकी चरण रजके शरणात भक्त ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्ति पद, पातालका आधिपत्य, योगसिद्धि और मोक्ष भी नही चाहते सिवा प्रभुचरणरजकी मीठी रसभरी कृपाके प्रभु कहते हैं कि—

**न किञ्चित्साधवो धीरा भक्ताह्येकान्तिनो मम।
वाञ्छत्यपि मयादत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्॥**

मेरे एकान्तिक भक्त साधु, धीरपुरुष, मेरे दिये हुए मोक्ष पदको भी नही चाहते हैं तो फिर सांसारिक पदार्थोंकी चाहना तो कब करनेवालेथे ? पुनः प्रभु भक्ति—

सा तु कर्म ज्ञान योगेप्यधिकतरा।

(नारद भक्तिसूत्र)

वह प्रभुभक्ति कर्मयोग और ज्ञानयोगसे भी अधिकतर है। वह प्रभु भक्ति कर्मयोगसे अधिकतर है। गीतामें भी प्रभु भक्तिकी उत्कृष्टता बताते हुए कहते हैं—

**तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः॥
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥**

योगिनामपि सर्वेषामद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां समे युक्त तमो मतः ॥
(गीता ६, ४६, ४७)

तपस्वियोंसे योगी श्रेष्ठ है और ज्ञानियोंसे भी योगी श्रेष्ठ है और कर्मियोंसे भी योगी श्रेष्ठ है अतः हे अर्जुन ! तू योगी होजा। ऐसा कहकर अब योगियोंसे भी श्रेष्ठ कौन है ? उसको दर्शाते हुए प्रभु कहते हैं कि—समस्त योगियोंमे भी परम प्रेमयुक्त मुझमें आसक्त होकर सतत मेरा स्मरण करता है वह मेरे मतसे युक्ततम है सर्वश्रेष्ठ है। इससे विदित होता है कि भक्ति कर्म और ज्ञानसे अत्यधिक है।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्याय तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥
भा० ११, १४, २०

हे उद्धव ! जिस प्रकार मेर प्रति बढ़ी हुई भक्ति मुझे वशमें करलेती है उस प्रकार अष्टाङ्गयोग सांख्यशास्त्रका अध्ययन, धर्म, स्वाध्याय और तपादिक समस्त क्रियाएं मुझे वशमे करनेको समर्थ नही है। अवश्य अन्य ज्ञानादिक साधनद्वारा जब मन शुद्ध होजाता है तब भक्ति उत्पन्न होती है भक्ति साध्य है और ज्ञानादिक क्रियाएं साधनरूप हैं। यथा—

अहङ्कारं बलंदर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥

ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

गी० १८, ५३, ५४,

" इस गीताके वाक्यसे माळूम होता है कि शुभ कर्म और ज्ञान साधनरूप हैं और भक्ति साध्य स्वरूप है–

" तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः ॥
(नारद भक्तिसूत्र)

अतः मोक्षकी इच्छा रखनेवाले सज्जनोंको सदा भक्तिही ग्रहग करनी चाहिये ।

भक्तिः प्रसिद्धा भवमोक्षणाय नान्यं ततः साधनमन्य किञ्चित् ।

भवबन्धनसे मोक्ष होनेके लिये केवल शुद्धभक्ति ही प्रसिद्ध है अन्य कोई भी उपाय भवदुःखका नाशक नही है। संसारके घोर रोगोंकी नाशक विना दामकी ओषधि केवल प्रभु भक्ति ही है यथा–

संसार रागेण बलीयसाचिरौ निपीडितैस्तत्प्रशमेऽति शीक्षितम् ।
इद भवद्भिर्बहुधा व्ययातिगं निपीयतां भक्ति रसायनं बुधाः ॥

हे सज्जन वृन्दो ! इस संसारके रागरूप महा बलवान् जो पीडा है उससे यदि आप छूटना चाहते हो उसे दबाना चाहते हो तो संसारकी पीडाको प्रशमन करनेवाला सस्ता, विना दामका, भक्तिरसायन रूपी औषधका सेवन करो क्योंकि भक्तिरूपी रसायन भवरोगके नाश करनेके लिये अत्यन्त शिक्षित है । यदि हृदयमे प्रभु भक्ति नही है और वेद शास्त्रका भले ही अध्ययन करले परन्तु वह सब भाररूप है।

यथा खरश्चन्दन भारवाही भारस्यवेत्ता न तु चन्दनस्य ।
तथा हि विप्रः श्रुतिशास्त्रयुक्तो मद्भक्ति हिनो खरवद्वहन्ति ॥

"जैसे खर चन्दनका भार ढोता है परन्तु वह यह नही समझता है कि मेरे शिर पर चन्दन है । वैसे ही मेरी भक्तिहीन ब्राह्मण वेद और शास्त्रयुक्त होते हुए भी गधाके समान वेदके भारको ढ़ोता है।"

भगवान ब्रह्म कात्स्न्र्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ।
तदध्यवस्यत कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत् ॥

भगवान् ब्रह्माने तीन वार वेदोंका पूर्णरीत्या पर्यालोचन किया परन्तु अन्तमे सार यही मिला कि प्रभुके चरणोंमें प्रेम हो। अतः अब तो—

अलं व्रतैरलंतीर्थैरलंयोगैरलं मखैः ।
अलं ज्ञान कथालापै भक्ति रेकैव मुक्तिदा ॥

बस करो, व्रतका कोई काम नही है तीर्थ, योग, यज्ञ, दान और ज्ञानकी वार्ताओंका कोई काम नही है मुक्तिदाता तो केवल भक्ति ही है। इसी लिये तो महात्मागण अपने शिष्योंको उपदेश देते हैं—

श्रीराम भक्तिरस भाविता मतिः क्रीयताम् यदि कुतोऽपिलभ्यते।
तत्र मौल्यमपि लौल्य केवलं जन्मकोटि सुकृतैर्न लभ्यते।

हे शिष्य! तू जब कभी संसाररूपी बजारमे जाय तब देखना कि कहीं प्रभु भक्ति प्राप्त होती है यदि तुझे कहीं भी प्रभु भक्ति प्राप्त होय तो तू अवश्य खरीद लेना। उसका मूल्य भी केवल उत्कट

ईच्छा ही है अन्य अनेक जन्मके सुकृतद्वारा भी प्रभु भक्ति प्राप्त नही हो सकती है।

इससे मालूम होता है कि सर्व श्रेष्ठ चीज और अत्यन्त कीमती चीज प्रभुकी प्यारी भक्ति ही है।

भक्त्यैव तुष्टिमभ्येति विष्णुर्नान्येन केनचित्।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम्॥

"भगवान् विष्णु केवल भक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं अन्य उपायोंसे नहि प्रभुकी निर्मल भक्तिके सिवा और सब विडम्बना मात्र है.

त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी।
भक्तया तुतोष भगवान् गजयूथपाय,
भक्तिः पुनातिमन्निष्ठा। भक्त्याहमेकया ग्राह्यः।
भक्तिमान् यः स मे प्रियः भक्तियोगेन सेवते॥
धर्मार्थ कामैः किंतस्य तस्य मुक्तिकरे स्थिता।
समस्त जगतां मूले यस्यभक्तिः सुखावहा॥
भक्त्यैक लभ्यो पुरुषोत्तमोहि। भक्तिप्रियो माधवः॥

इत्यादिक शतशः प्रमाण भक्तिकी उत्कृष्टता दिखा रहे हैं। बडी दुर्लभ है प्रभुकी भक्ति और बडी ही श्रेष्ठ है प्रभु चरण कमलानुरक्ति.

नृणां जन्म सहस्रेषु भक्तौ प्रीतिर्हि जायते।
कलौ भक्तिःकलौ भक्तिर्भक्त्या प्रभुः पुरस्थितः॥

मनुष्य हजारों जन्मतक कर्म, ज्ञान और वैराग्यका पूर्णयता पालन करता है तब उसका अन्तःकरण परम विशुद्ध बन जाता है तब प्रभु

भक्ति प्राप्त होती है। कलियुगमे भक्तिही संसारसे पार जानेके लिये श्रेष्ठ और सरल साधन है भक्तिके विना प्रभु प्राप्तिकी चाहना करना नितान्त मूर्खता है।

यस्मिन् शास्त्रे पुराणेषु हरि भक्तिर्न दृश्यते।
न श्रोतव्यं न मन्तव्यं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्॥

"जिस किसी शास्त्र और पुराणमें प्रभु भक्ति वर्णित न हो वह शास्त्र भलेही अत्यन्त श्रेष्ठ हो स्वयंब्रह्मा प्रकट होकर सुनावे तो भी उसको सुनना न चाहिये और न मानना चाहिये।" जिसका हृदय भक्ति पूरित है उसकी देवगण सदा पूजा करनेको तत्पर रहते हैं। सुर, नर, नाग, किन्नर, गन्धर्व, यज्ञ, सिद्ध, चारण और योगीश्वर सतत भक्तिकी महिमा वर्णन करते हैं। महात्मा तुलसीदासजी कहते हैं—

जाको प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताको कोटि वैरि सम यद्यापि परम सनेही।

× × ×

तजु मन हरि विमुखनको सङ्ग।
जाके सङ्ग कुमति मति उपजे परत भजनमे भङ्ग॥

(सुरदास)

येषां रामःप्रियो नास्ति रामे न्यूनत्व दर्शिनाम्।
दृष्टव्यं न मुखं तेषां सङ्गतिस्तु कुतस्तराम्॥

जो प्रभुमे न्यूनता बतलाता है और जिसको प्रभु श्रीराम चरणोंमें

प्रेम नही है। उस पापीका मुँह भी न देखना चाहिये तो फिर सङ्ग तो कैसे किया जाय?

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद् गृह्यमाणैर्हरिनाम धेयैः।
नविक्रियेताऽथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्रकहेषु हर्षः॥
(भागवत २, ३, २४)

जो भरा नही है भावोंसे वहती जिसमे रसधार नही।
वह हृदय नही है पत्थर है जिसमे रघुवरका प्यार नही॥

अपने हृदयको कबतक वज्रसा बनाए रखोगे? अबतो प्रभुकी विरहाग्नि सुलगाकर उसके तीव्रतर तापोंसे अपने कठोर हृदयको कर दो पिघलाकरके पानी, और भरदो प्रभुकी रसमयी भक्ति, प्रभुके सन्मुख हाथ जोडकर माँगो—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥
(श्रीचैतन्यदेव)

अर्थ न धर्म न कामरुचि गति न चहौं निर्वाण।
जन्म जन्म रति रामपद यह वरदान न आन॥
(श्रीतुलसीदासजी)

यदि सच्चे दिलसे पूर्ण विश्वास और श्रद्धासे प्रभुके पाद पद्मोंमे ऐसी प्रार्थना करोगे तो वह दानी, दयालु, सर्वार्थप्रदाता प्रभु अवश्य नन्दाअविचल भक्ति प्रदान करेगा, और शीघ्र अ धाम निवासी बनावेगा—

इस प्रभुकी परम पाविनी भक्तिके शास्त्रकारोंने नव भेद बताये हैं।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्ममरणं पादसेवनम् ॥
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ॥
(भां० सप्तम स्कंध)

उदारकीर्तेः श्रवणं च कीर्तनं हरेर्मुदा संस्मरणं पदश्रितिः।
समर्चनं वन्दन दास्य सख्यकान्यात्मार्पणं सा नवधेति गीयते।
(वैष्णवमताब्जभास्कर)

उदार यशवाले प्रभु श्री रामचन्द्रजीकी कथाका श्रवण करना उनके नामोंका कीर्तन करना, प्रभुके प्रिय रूपका संस्मरण करना, उनके चरणका आश्रय ग्रहण करना, प्रभुकी पूजा करना प्रभुकी वन्दना करना प्रभुका दास बन जाना, प्रभुसे मित्रता करना, प्रभु चरणमे सर्वस्व अर्पण कर देना. यह नव प्रकारकी प्रभु भक्ति कहलाती है।

इनमेंसे एक एक भक्तिका पूर्णतया पालन करनेंसे जीव प्रभुको प्राप्त कर लेता है। जगत्के श्रेष्ठ पुरुषोंकी और देवताओंकी भक्ति की जाती है परन्तु जीवको नित्य अनन्त और अगाध सुखकी दात्रीतो केवल इश्वर भक्ति ही है अतः भक्ति शब्द वाच्य ईश्वर प्रेम ही है अन्य देव नर आदिकोंकी भक्ति गौणरूपेण सत्कार्यं समझकरही करनी चाहिये मुक्तिदात्री मानकर नहीं।

जो भक्ति, हिंसा, दम्भ और अहङ्कार सहित कामना पूर्तिके लिये की जाती है वह भक्ति तामसी है।

यश ऐश्वर्यकी इच्छासे ईश्वर भक्ति करना राजसी भक्ति है।

और जो भक्ति प्रभु प्रेमके लिये, ईश्वर दयाके लिये, समस्त कामनाओंका नाशकर की जाती है वह शुद्ध सात्विकी भक्ति समझना चाहिये। यद्यपि किसी तरह करनेंसे भी भक्ति निष्फल नही जाती परन्तु यथार्थ फल तो योग्य अनुष्ठान करने परही देती है, पहिले भक्ति साधनरूप होती है और अन्तमे परम प्रेमरूपा प्रभु भक्ति साध्यरूप बन जाती है। जैसे भक्तको उपाय और उपेय प्रभुही है वैसे ही साधन और साध्य भी प्रभु भक्तिही हैं।

अतएव हरतरह प्रभु भक्ति करनी ही जीवनका परम लक्ष्य है यथार्थ ध्येय है और परम कर्तव्य है।

। इति भक्त्युपाय।

सत्सङ्गमहत्व

प्रभु भक्ति सतसङ्ग द्वारा ही प्राप्त होती है, विना सत्सङ्ग प्रभुकी प्यारी भक्तिका प्राप्त होना सर्वथा असम्भव है अतः यहां प्रथम सत्सङ्गका कुछ वर्णन लिखता हूं बाद नवधा भक्तिका क्रमशः वर्णन करूंगा. प्रभु कहते हैं कि—

प्रथम भक्ति सन्तनकर सङ्गा। दूसर रति मम कथा प्रसङ्गा॥

अतएव सतसङ्ग यही मूल है, कारण है, सत्सङ्गद्वारा ही महाराणी भक्तिदेवी भक्तके हृदयमें पदार्पण करती है। अन्यथा प्रभु भक्ति प्राप्त हो ही नही सकती। प्रभुका सच्चा प्यारा वही हो सकता है जो सन्तोंकी सेवा करता है—प्रभु कहते हैं कि—

ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः।
मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः॥

(आदिपुराण)

हे अर्जुन! जो मेरी भक्ति करते हैं वह मेरे शुद्ध भक्त नहीं हैं परन्तु मेरे भक्तोंका पूजन करनेवाले ही भागवतभक्त ही यथार्थ मेरे भक्त हैं।

हरिकीर्तन शीलो वा तद्भक्तानां प्रियोऽपिवा।
शुश्रुषुर्वापि महतां स वन्द्योऽस्माभिरुत्तमः॥

(श्रीमद्भागवत ५, १९)

देवता कहते हैं—जो नित्य निरन्तर प्रभुके नामका कीर्तन करता है और प्रभु भक्तोंका प्रिय है और महान् पुरुषोंकी सन्तजनोंकी सेवामे तत्पर है वह हमलोगोंका परम पूज्य देवता है।

पद्माकरं दिनकरो विकचं करोति
चन्द्रो विकासयति कैरव चक्रवाकम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयम् परहितेषु कृताभियोगः ॥

(भर्तृहरि नी० श० ७४)

रात्रीके घोर दुःखरूप अन्धकारसे पीडित कमलोंको भुवन भास्कर स्वयं विकासित कर देते हैं। सूर्यके तीव्रतर तापसे तप्त मुरझाई हुई कुमुदनी चन्द्रमाके पास जाकर अपने दुःख निवृत्तिकी प्रार्थना नही करती परन्तु दयालु चन्द्रमा स्वयम् उसको प्रमुदित कर देता हैं। याचनाके न करने पर भी जगदाधार जलधर स्वयम् ही पृथिवीको पाणीसे प्लावित करता है उसी तरह परोपकार परायण सन्तगण भी स्वयम् ही दूसरोंके कष्ट निवारणार्थ सतत उद्यत रहते हैं। जैसे समस्त देहधारी हर समय श्वास प्रश्वास लेते ही रहते हैं वैसे ही सन्तगण सर्वदा लोक कल्याणकारी चेष्टाएं करते ही रहते हैं।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थः सद्यः साधुसमागमः ॥

(सु० र० भां० ९०-७)

साधुओंके दर्शनसे महान् फल प्राप्त होता है, साधु तीर्थरूप

होते हैं। तीर्थ तो कालान्तर पर फल देते हैं परन्तु साधुजनका समागमरूपी महत्तीर्थ तो शीघ्र फलदाता है।

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं पुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गि सङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥

(भाग० १, १८, १३)

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अङ्ग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसङ्ग॥

(तु० रा० सुन्द०४०)

जिसका हृदय सुकोमल है, सदा परोपकार करनाही जिसका कर्तव्य है, समस्त विश्वके प्रत्येक प्राणियोंके प्रति जिसका निःस्वार्थ और अविचल प्रेम है ऐसे महत्पुरुषोंका सङ्ग अवश्यही घोर पापात्माओंके पापोंको भी नाश करके अविचल आनन्द देनेको परम समर्थ है! जैसे भगवानकी प्रतिज्ञा अमोघ होती है, वैसे ही भक्तोंको भी प्रतिज्ञाएं अमोघ होती है। भक्तवत्सल भगवान् तो प्रेमके वश होकर अपनी प्रतिज्ञाका भङ्ग करते पाये गये हैं परन्तु भक्तोंकी तो समस्त प्रतिज्ञाएं अमोघही बनी रही है, महा पापी दुष्टात्मा जीवोंको भी महान् पुरुषोंने क्षणभरमें अत्यन्त दीन और प्रेममय बना दिये हैं। यदि इस पापपूर्ण स्वार्थरत संसारमें ऐसे प्रभुके प्यारे सन्त न होते तो अवश्य यह अवनितल आज घोर रौरवनरकसे भी अधिक सोचनीय बन जाता, इस दुःखमय जगत्को साधुओंने ही सुखमय बना रक्खा है। इस आनन्द शून्य अन्ध कूप, पापी, क्रूर और हिंसक

प्राणियोंसे परिपूर्ण जगत्को आनन्दमय, तेजस्वी, पुण्यरूप और शुद्ध भक्तमय बनाया है तो केवल परोपकारी सन्त पुरुषोंनेही। कितने कितने घोर विघ्नोंका सामनाकर, पापी और दुष्टात्माओंके प्रहार सहनकर धर्मका डङ्का बजवानेवाले, पापात्माओंका विनाश करनेवाले, और समस्त जगत्को प्रभुमय बनानेवाले साधुपुरुषोंनेही मातृभूमिका मान्य रक्खा है। साधुपुरुष कष्टोंको देखकर घबडा नही जाते कहा भी है—यथा—

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम्।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥
(भा० १०, १, ५८)

साधुओंके लिये कौनसी वात दुःसह है? विद्वानोंको किस चीजकी अपेक्षा है? नीचके लिये क्या काम अकर्तव्य है? और धैर्यवान् पुरुषोंके लिये कौनसा काम कठिन है?

अर्थात्—साधुओंके लिये सब कुछ सहनीय है विद्वान् सर्वचीजोंसे अनपेक्षित रहते हैं, नीच महा पाप करनेसे भी हिचकते नही हैं और धैर्यवान् महान् कष्टोंके पडने पर भी धैर्यताका त्याग नहीं करते हैं।

ऐसे साधु पुरुषोंका सङ्ग महान् दुर्लभ होता है—यथा—

"महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च"

भगवान् कहते हैं—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥

महात्माओंके सङ्गसे मेरी पराक्रमकी वार्ताएं सुननेंको मिलती है जो हृदय और कानोंको तृप्त करनेंके लिये अमृतवत् है और उस कथाके श्रवणके प्रभावसे मेंरे चरणोंमे प्रेम श्रद्धा और अन्तमे अनन्य भक्ति प्राप्त होती है—

सांसारिक जीव अनेक जन्म जन्मान्तरसे दुःख भोगते हैं उन्हें सुख और शान्ति प्राप्त करनेका कोई भी उपाय नही सूझता है, उनको निर्हैतुकी दया द्वारा शान्ति और सुख प्रदायक सन्त पुरुष ही हैं। यदि इस भारत वर्षमें भगवान् व्यास, शुकदेव, श्रीरामानन्दजी महाराज, कबीर, तुलसीदासजी, आदिक प्रभुप्रिय भक्त न होते और वह अपनी प्रसादी भूत दिव्य ग्रन्थ हम लोगोंको सुख मार्ग समझानेके लिये छोड न गये होते तो आज हम कौन हैं? हमैं क्या करना चाहिये? इसका भी पता न चलता परन्तु अभिवन्दन है उन दिव्य विभूतिवान् महात्माओंको जिन्होंने जगदुद्धारार्थ अनेक चेष्टाएं करके इस भूतल पर सुख शान्ति और प्रेमका साम्राज्य स्थापन किया—

सत् नाम है परमात्माका और "तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्" प्रभुके भक्तोंका सङ्ग ही सत्सङ्ग है। सन्तोंका सङ्ग साक्षात् जगदीश्वरके सङ्गके समान ही फलदाता है.

जबतक मनुष्यका मन प्रभुके प्यारे सन्तोंकी पावनतम चरण रज स्पर्शद्वारा पावन नही हुआ है तब तक मनुष्य उस दिव्य आनन्द और प्रकाशमयी प्रभुकृपाके दर्शन प्राप्त नही कर सकता है।

श्रुति कहती है—

"अत्यन्तोत्कृष्टसुकृतपरिपाक वशात् सद्भिः सह सङ्गो जायते तेन विधिनिषेधविवेको भवति"

जब मनुष्यका अत्यन्त उत्कृष्ट सुकृत परिपक्व दशाको प्राप्त होता है तब उसको सज्जनोंका सङ्ग प्राप्त होता है जिसके द्वारा विधि और निषेधात्मक ज्ञान प्राप्त होता है।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे—
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥

हे भगवन्! इस घोर संसार वनमें भटकते भटकते थके हुए जीव पर आप कृपा करते हो तब उसे साधु सङ्ग प्राप्त होता है और साधु सङ्ग प्राप्त होने पर आपके चरणोंमें दृढारति होती है और आपके चरणोंका प्रेम ही तो मोक्षदाता है। सत्सङ्ग विना भक्तिका उदय होही नही सकता भक्तिकी प्रथम भूमिकाही सत्सङ्ग है यथा—

प्रथमं महतां सेवा तद्दयापात्रता तथा।
श्रद्धाऽथ तेषां धर्मेषु ततो हरिगुणश्रुतिः॥
ततो रत्यङ्कुरोत्पत्तिः स्वरूपाधिगतिस्ततः।
प्रेमवृद्धिः परानन्दे तस्याथ स्फुरणं ततः॥
भगवद्धर्म निष्ठातः स्वस्मिंस्तद्गुणशालिता।
प्रेम्णोऽथ पराकाष्ठेत्युदिता भक्ति भूमिका॥

(भक्तिरसायन)

" प्रथम महान् पुरुषोंकी सेवा, उनकी दयाके पात्रवनना, उनके धर्ममे श्रद्धा हो, प्रभुके गुणोंका श्रवण, प्रेमाङ्कुरकी उत्पत्ति, स्वस्वरूपका ज्ञान होना, परमानन्द स्वरूप प्रभुचरणमें प्रेमकी वृद्धि, प्रभु विषयक स्फुरणाए होना, भागवत धर्ममें दृढ़ श्रद्धा, स्वयं अपनेंमे भी महात्मा-ओंके लक्षणोंका प्राप्त होना तथा प्रेमका पराकाष्ठादशापर पहुंचना. यह सब भक्तिकी भूमिकाएं हैं। इसमें भी प्रथम भूमिका सत्सङ्ग ही है अतः सत्सङ्ग विना प्रभु प्रेम प्राप्त होना दुर्लभ है और प्रभु प्रेम विना आज तक कोई भी भवपार गया नही है इससे मुमुक्षुओंको सर्वदा सत्सङ्ग करना चाहिये—

महान् अनुभवी पुरुषका वचन है—

श्रीगुरुदया सङ्ग साधुनको इनकी विना सहाये।
देव चरण रति कैसे उपजे साधेहु कोटि उपाये॥

(श्रीदेवस्वामी काष्ट जिह्वा)

जिन साधु पुरुषोंकी इतनी गजबकी महिमा है जिनके आधीन स्वयं प्रभु बन जाते है। उनके क्या लक्षण हैं उसको भी जानना चाहिये, क्यों कि " जाने बिनु होय नहि प्रीती " अतः अब उन गरिष्ठ गुणवान् गोविन्द प्रिय महात्माओंके कुछ लक्षण लिखता हूं।

तत्साधुमन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद् हरिमाश्रयेत्॥

(भा० ७।५।५)

हिरण्यकशिपुके यह पूछने पर कि बेटा, तुम्हारे मतमें सबसे श्रेष्ठ कौन है? तब प्रह्लादजीने उत्तर दिया—हे असुरोंके अधीश्वर पूज्य पिताजी! मैं तो उसे सबसे अधिक श्रेष्ठ समझता हूं कि—अहन्ता और ममता अर्थात् "मैं ऐसा हूं, यह सब चीजें मेरी ही है" इस प्रकार मिथ्याभिमानके कारण जिसकी बुद्धि सदा उद्विग्न रहती है. और जिस घरमें रहकर सदा प्राणी मोहमें ही फँसा रहता है, उस अन्धकूपके समान घरको त्यागकर एकान्त वासकर श्रीहरिके चरणाश्रित रहकर प्रभुभजन करता है मैं उसको ही सर्वश्रेष्ठ साधु समझता हूं—

क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः।
अस्पंदप्रणयानन्दसलिलामीलिते क्षणः॥
आसानः पर्यटन्नश्नञ्छयानः प्रपिवत् ब्रुवत्।
नानु संधत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः॥

"भगवद्भक्त प्रभुरूपमें मग्न होकर पुलकित हो उठता है अचल प्रेमके कारण प्रेमाश्रु वहाता है, ऐसी अवस्थामे कुछ न बोलकर एकान्तमें चुपाचाप बैठा ईश्वर चिन्तवन करता है, बैठते, खाते, पीते, घूमते, सोते, उठते, जागते, संलाप तथा संभाषण करते हुए संक्षेपमे सर्वावस्थाओंमें प्रभु भजन करता रहता है एक पलभर भी प्रभु सुमिरण नही छोडता है।

सन्त पुरुषोंके हृदयमे सर्वदा ऐसी भावनाएं रहती हैं।

सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिदुःखभाग्भवेत्॥

सब कोई सुखी रहें, सब कोई स्वस्थ रहें, सब कोई कल्याण-मय हो जायँ और संसारमें कोई भी दुःख भोक्ता न रह जायँ —

प्रभुके प्यारे भक्तजन तो—

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्वीर्याणि लीला तनुभिः कृतानि।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥

(श्रीमद्भागवत ७, ७, ३४)

जिन्होंने अपते प्यारे भक्तोंको सुख देनेके लिये अत्यन्त माधुर्य परिपूर्ण अद्भुत लीलाएंकी है उन प्रभुके अप्राकृत गुण और अलौकिक लीलाओंको सुनकर प्रेमी भक्तके हृदयमें अतिशय आनन्द होता है और आनन्दके मारे शरीरके रोम रोम खडे हो जाते हैं। आंखोंसे आंसु वहने लगते हैं, कण्ठ गद्गद् होजाता है, कभी रोता है, कभी गाता है, कभी पागलकी तरह नाचनेही लगता है। प्रभुकीर्तनकार भक्त—

तृणादपिसुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।

(चैतन्यशिक्षाष्टक)

अपनेंको तृणसे भी नीच समझता है, वृक्षसे भी विशेष सहिष्णुतावाला होता है। स्वयम् सदा अमानी रहता है। और दूसरोंको मान्य देता है वह भक्त प्रभुसङ्कीर्तनका अधिकारी है। प्रभुका प्यारा भक्त—

वाग्भिः स्तुवन्तो मनसा स्मरन्तस्तन्वा नमन्तोऽप्यनिशं न तृप्ताः।
भक्ताः स्रवन्नेत्र जलाः समग्रमायुर्हरेरेव समर्पयन्ति ॥

(हरि० भ० सु० १८, ३८)

प्रभुके प्यारे भक्त अपनी वाणीसे निरन्तर सुमधुर हरि नामका उच्चारण करते रहते हैं, अथवा प्रभुके यशोंका कीर्तन करते हैं, प्रभुके सुन्दर स्वरूपका निरन्तर ध्यान करते हैं, वह सदा विकल, पागल, अधीर, तथा प्रभु प्रेमका निरन्तर पान करते हुए भी सदा प्रभु दर्शनके लिये अतृप्त रहते हैं। नेत्रोंसे स्नेहका जल टपकता रहता है, इस प्रकार भक्त अपने जीवनकी समस्त क्रियाओंको प्रभुके पदारविन्दमें समर्पण कर देता है—

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठ चिन्ताशलव चेतनः।
क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित्॥
नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित्।
क्वचित् तद्भावना युक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह॥
(भा० ७। ४। ३९-४०)

भगवान्के प्रेममें पागल होकर प्रभुप्रेमी साधुजन—कभी कभी प्रभु विरहसे विकल होकर क्षुब्ध हो उठता है. वियोग दुखके मारे रोने लगता है. भगवच्चिन्तनसे प्रसन्न होकर प्रभुरूप सुधाका पान कर आनन्दके मारे हँसने लगता है, प्रभुके गुणोंका गान करता है. परम उत्कण्ठित होकर प्रभुकी लीलाओंका अनुकरण लगता है। इस प्रकार सन्तोंके विशुद्ध लक्षण समस्त शास्त्रवेद और पुराणोंमे वर्णित हैं जिनमे ऐसे लक्षण नहीं है और केवल वेष मात्र ही बनाये हुए हैं उनके सङ्गसे कोई लाभ नही. श्रीरामका सच्चा सेवक तो कोई लाखोंमे एकही मिलेगा. "कोइ राम उपासक लाखमे" अतः वेषको देखकर भूल मत जाना और सच्चे साधुकी खोज करना अन्यथा

जैसों तैसोंकी सङ्गति करके फिर कहने लग जायँ कि हमें तो सत्सङ्गका कुछ भी फल मालूम न हुआ यह सर्वथा अनुचित है, सच्चे सन्ततो-

कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी,
नैश्चिन्त्यं निरपेक्षभैक्षमशनं निद्रा स्मशाने वने।
स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशं विहरणं स्वान्तं प्रशान्तं सदा,
स्थैर्ययोगमिदं भवेद्यदि तदा त्रैलोक्यराज्येन किम् ?।
प्रतिष्ठा सौकरीविष्ठा गौरवं चाति रौरवम्।
अतिमानं सुरापानं त्रयं त्यक्त्वा सुखी भवेत्॥

जिनका कौपीन सौ टुकडेवाला अत्यन्त जीर्ण है वैसी ही गुदड़ी है जो सदा निश्चिन्त है. निरपेक्ष है. सदा भिक्षान्न सेवन करता है। स्मशानमें या वनमें निद्रा लेता है। स्वतन्त्र है. निरङ्कुश है. शान्त है, और सदा प्रभुसे प्रेम लगाये हुआ है उसके सुखके सामने त्रैलोक्यके राज्यका सुख कया चीज है?

सन्तजन प्रतिष्ठा सुअरकी विष्ठाके समान, अभिमानको रौरव नरकवत् और अत्यन्त मान्यताको मदिरावत् समझकर तीनोंको मनसे त्यागकर सुखी होते हैं। सतसङ्गका महिमा गाते हुए एक महात्मा कहते हैं।—

मन कहां जो सतसङ्गति भावै।
तौ सब विषय विलास छांडिकै सहज परम सुख पावै॥
तीरथ जपतप नेमदान व्रत बहु जन्मनि करि आवै।
शुद्ध होय तत्काल सन्तके दरश परश कर तावै॥

योगविरति विज्ञान काल बहु शुद्ध समाधि लगावै।
परम तत्वसोई एकै छिनमे सतसङ्गति दरसावै॥
ब्रह्मलोक दिग्पाल लोकसुख परसुख मोक्ष कहावै।
तुलै न छिन सतसङ्गत सुखहि "रामचरण" श्रुति गावै॥

महात्मा सूरदासजी कहते है—

जादिन सन्त पाहुने आवत।
तीरथको अस्नान करै फल, जैसे दरशन पावत॥
नेह नयो दिन दिन प्रति तिनको, चरण कमल चितलावत।
मन क्रम वचन और नहि जानत, प्रभुसुमिरत सुमिरावत॥
मिथ्यावाद उपाधि रहित है, विमल विमल यश गावत।
बन्धन कामकठिन इस जगको, सोऊ काटि वहावत॥
कुलं पवित्रं जननी कृतार्थी वसुन्धराभाग्यवती च धन्या।
स्वर्गे स्थिता ते पितरश्चधन्या येषां कुले वैष्णव नाम धेयम्।

उसका कुल पवित्र हो गया, वहांकी भाग्यवती पृथिवी धन्य हो गई, स्वर्गस्थ पितरगण धन्य हो गये जिसके कुलमे एक भी वैष्णव साधु या वैष्णव धर्मनिष्ठ भक्त हुआ हो—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति सत्यवाक्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सङ्गतिकथय किन्न करोति पुंसाम्॥

बुद्धिकी जडताको हरलेता है. सत्यका सिञ्चन करता है, मानकी उन्नति करता है. पापको दूर करता है, चित्तको प्रसन्न करता है, दिशाओंमे सुयश फैलाता है भला, कहोतो सत्सङ्ग क्या क्या नही कर सकता ?

दुर्लभो वैष्णवो लोके दुर्लभं वैष्णवं व्रतम् ।
दुर्लभा वैष्णवी भक्तिः सधन्यो यत्र वर्तते ॥

(ब्रह्माण्ड पुराण)

वैष्णव दुर्लभ हैं लोकमें वैष्णव व्रत के पालन कर्ता दुर्लभ हैं भगवान् विष्णुकी भक्ति दुर्लभ है वह देश धन्य है जिस जगह पर वैष्णव भक्त वास करते हैं।

गुर्जर भाषामें एक''भक्त चरित्र''नामक ग्रन्थ है जिसकी भूमिकामे भक्तोंकी उत्कृष्टताका प्रतिपादन है उसका कुछ आशय संक्षेपतः आपकी सेवामें उपस्थित करता हूं। आशा है पाठकगण इससे भी कुछ लाभ प्राप्त करेंगें ।

भक्तकी जय! भक्तकी जय!

जिस स्थानपर दुःख और दुर्गति अशान्ति और असन्तोषभरपूर है वहींपर भक्तजन सुख और सन्तोष क्षणभरमें परिपूर्ण कर देते हैं।

अतः भक्तकी जयमें अखिललोकका हित भरा हुआ है। सर्व धर्म शास्त्रोंमें भगवत् तुष्टि ही परम धर्म माना गया है। जिससे पाप-ताप दुःख शोक आपत्ति विपत्ति–सब नष्ट हो जाते हैं। परन्तु वह तुष्टि परम पिताके भक्तोंकी जय घोषणामें जैसी रहती है वैसी किसीमें नही है अतः **भक्तकी जय ? भक्तकी जय.**

भगवान्‌की अनन्त शक्ति है। वही प्रभु भक्तकी जयध्वनीद्वारा निज शक्तिका सञ्चार पाषाण हृदय जीवों पर करता है. आज दिन तक करोडोंवार उसने भक्त जयके गहगहे निशान बजवाये हैं। तबभी उसपूर्ण कामकी कामना पूर्ण नहीं हुई। अतः वह भक्त जयके साथ आनन्दोल्लासके मधुर तरङ्गोसे अपने हृदयको प्रफुल्लित करता है। इस प्रकार भगवान्‌को आनन्ददाता भक्त हुए अतः **भक्तकी जय! भक्तकी जय!! भक्तकी जय!!!**

भक्त बडे! भक्त बडे! भक्त न होते तो भगवत्स्वरूपको कौन दर्शाता परन्तु भक्तही ज्ञान भक्ति दयादि गुणोंद्वारा विषयी पामर जीवोंको भगवत्स्वरूप दर्शाते हैं। अतः भक्तकी जय!

भक्त विना भगवान्‌को कौन दर्शावे? कौन जान शके? कौन पहिचाने? और पहिचान करावे? क्योंकी प्रभु तो असीम ऐश्वर्यमें छिपा हुआ है उसके लिये हजारों मतवादी झगडते हैं, पर उसे गूढ़ ऐश्वर्यमेंसे प्रत्यक्ष लानेकी शक्ति भक्तमें ही है अतः भक्त बड़े, भक्त श्रेष्ठ, भक्त उत्तम, और भक्त ही पूजनीय हैं। प्रभुके लाडिले सन्त कहां नही हैं? सर्वत्र हैं भगवद्भक्तके ही सब वास स्थान हैं, श्रीरघुनाथ-जीके नामरूप लीला गुणोंको अविराम चित्तसे मनन करते हैं और उसका रहस्य सबको समझाते हैं। और उसके महिमारूप अमृत रससे महा शुष्क हृदयोंको भी प्लावितकर देते हैं। उस अमृत रसका स्वाद लेते समय महा घोर कठोर भीषणातिभीषण दुःखोंसे तप्त जीवोंके भी दुःख क्षण भरमें नष्ट होजाते हैं और आनन्द सिन्धुमें मग्न होजाते हैं। और हृदयमें नित्य नूतन अपूर्व प्रेमभरी लहरें लहरानें लगती हैं।

यद्यपि वह सर्वेश्वर प्रपञ्चातीत है तथापि भक्त उसी प्यारे प्रभुको प्रकृतिमें प्रपञ्चमें ले आते हैं। प्रभु भक्तके विनोदार्थ ही आते हैं। तभी तो कहते हैं कि (मद्भक्तानां विनोदार्थं करोमि विविधाः क्रियाः)

परन्तु वह भक्त भक्तिद्वाराही है। भक्ति और भावसे, स्नेह और अनुरागसे, प्रेम और प्रणयसे, आप्तकामकी तरह सर्व कामनाओंका त्याग कर प्रतिक्षण, प्रबल यत्नसे, अनुपम आदरसे प्यारे रामको भजते हैं। जिससे उनके हृदयमें आनन्द सागरकी लहरें लहरानें लगती हैं। और नित्य शुद्ध सत्त्वका विकास होता है। जिससे निर्गुण प्रभु सगुण, अलौकिक लौकिक और अगोचरको भक्त अतुलनीय प्रेमद्वारा दृष्टिगोचर बना देता है। अतः जो कोई भगवच्चरणाकांक्षी हो वह प्रथम अनन्य भक्तके शरणगत होजाय. भक्तके भावसे भावित होकर भगवत् शरण होजाय, और सदा सतसङ्ग करे भक्तसङ्ग करे और स्वयम् भक्त बननेंकी चेष्टा करे।

जहां भक्त वहां भक्ति और जहां भक्ति वहां भगवान् अतः
भक्तोंकी जय! भक्तोंकी जय जय! भक्तोंकी जय जय जय!

। इति सत्सङ्गमहत्व ।

श्रवण भक्ति

सत्सङ्गका महत्व सर्वश्रेष्ठ और कल्याणकारी माना गया है परन्तु सत्सङ्गमें मुख्य चीज क्या है? किसके बजहसे सन्तोका इतना महत्व है उसकी यदि समालोचना की जायगी तो स्पष्टतया विदित हो जायगा कि वह महत्ता केवल भगवत्यश कथाकी ही है। महात्मा पुरुषोंके पास प्रभुकी प्यारी लीला, गुण और रूपमाधुर्य्यका श्रवग कर-करनेका परम लाभ प्राप्त होता है, और नवधा भक्तियोंमें श्रवण भक्तिही प्रथम है यदि प्रभुकी प्यारी कथाएं सुननेको न मिले तो हम प्रभुकी महत्ता कैसे समझ सकते हैं? और विना कुछ गुण सुनेही प्रभुके प्रति प्रेम कैसे हो सकेगा? अतः प्रथम हमें श्रवण भक्ति तो करनीही पडेगी श्रवण भक्तिका स्वरूप महात्मागण बतलाते हैं।

श्रवणं भगवान् विष्णोर्यशसो गुणकर्मणाम्।
वेदान्त श्रवणं चैव श्रवणभक्तिरुच्यते॥

अनन्तगुणगरिम, परमयशधाम, आप्तकाम, प्रभु श्रीरामके पवित्र यशोंका गुणोंका और लीलाओंको सुनना, तथा ब्रह्म प्रतिपादक वेदान्त ग्रन्थोंको श्री आनन्द भाष्य उपनिषद् गीतादिको सुनना श्रवण भक्ति कहलाती है

या या कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः।
गुण कर्माश्रया पुंभिः संसेव्यास्ता मुमुक्षुभिः॥

मोक्षार्थी मनुष्योंको एक मात्र कथनीय, परम पराक्रमी प्रभुके विशद और विमल गुण और कर्मोंसे ओत प्रोत पावन कथाका सदा सेवन करना चाहिये। श्रुति कहति है—

"आत्मावारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।

है मैत्रेयि! वह परमात्मा देखने लायक है, उसके रूप, गुण, और कर्म श्रवण करने लायक हैं तथा वह परमात्मा सतत स्मरण करने लायक हैं। प्रभु श्रीमुखसे कहते हैं।

श्रद्धालुर्मे कथां शृण्वन् सुभद्रां लोकपावनीम्।
श्रद्धामृत कथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम्॥
(श्रीमद्भागवत)

मेरी कल्याणी, लोक पाविनी कथा सुननेको परम श्रद्धावान् और निरन्तर मेरे नाम और यश कीर्तन करनेवाला मेरा प्रिय भक्त है।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विश्वक्सेन कथासु यः।
नोत्पादयेद्यदि रतिः श्रम एवहि केवलम्॥
(भागवत)

अनेक प्रकारके धर्मानुष्ठान करने पर भी यदि प्रभुकी परम रम्य कथाओंमे प्रेम न हुआ तो वह धर्मानुष्ठान केवल श्रम मात्र है उसके आचरणसे कुछ भी फल नहीं है।

भक्तराज ध्रुव कहते हैं कि—

या निर्वृत्तिस्तनुभृतां तव पाद पद्म,
ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन त्वा स्या।

सा ब्रह्मणि स्व महिमन्यपि नाथ मा भूत,
किन्त्वन्तकासि लुलितात् पततां विमानात् ॥

हे नाथ ! देहधारी प्राणियोंको, जो आनन्द आपके चरणारविन्दके ध्यानसे और आपके जनोंद्वारा कथित आपकी रम्य कथाओंके श्रवणसे मिलता है वह आनन्द सदा ब्रह्मके ध्यानमें रत योगीजनोंको भी प्राप्त नहीं होता है तो कालकी कराल तलवारका झटका लगते ही नीचे गिर जानेवाले स्वर्गवासी देवगण बिचारे कब पाने वालेथे ?

जब सचमुच इतना भारी रस प्रभुकी कथा सुननेमें है तभीतो राजा पृथुने प्रभुसे और कुछ न माँगकर यहि माँगा कि—

न कामये नाथ तदप्यहं ध्रुवम् ,
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो,
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ।

हे नाथ ! मैं और कुछ भी नही चाहता हूं, जो आपके चरणकमलकी वाससे सुवासित नही है वह मोक्ष पदवी भी क्यों न हो परन्तु मैं नही चाहता हूं यदि मुझ पर दया हो और कुछ देना चाहते हो तो यही दीजिये कि महात्माओंके हृदयसे निरन्तर मुखद्वारा निकलती हुई भक्ति भागीरथीके पान करनेके लिये मैं इन्हीं कानोंसे दश हजार कानोंके बराबर सुन सकूं बस नाथ ! मुझे तो यही चाहिये । श्री व्यास भगवान् तो लिखते हैं ।

" विलेवतेरुक्रम विक्रमान्ये न श्रृण्वतः कर्णपुटे नरस्य "

जिन्ह हरि कथा सुनी नही काना। श्रवणरन्ध्र अहि भवन समाना।

संसार सिन्धुमति दुस्तरमुत्तितीर्षोः,
नान्यःप्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिवेषणमन्तरेण,
पुंसो भवेद्विविध दुःखदवार्दितस्य ॥

(भागवत)

महा घोर अत्यन्त दुस्तर इस संसार सागरसे पार जानेके लिये पुरुषोत्तम भगवान्‌की कथाको छोडकर और कोई भी नाव नही है, प्रभुकी दिव्य और आश्चर्यमयी कथाओंके श्रवणसे ही मनुष्य घोर पीडा-ओंसे मुक्त हो सकता है।

सङ्कीर्त्यमानो भगवाननन्त श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥

प्रभुकी दिव्य लीला और नाम, यश, सङ्कीर्तनका नित्य श्रवण करनेका जिसको व्यसन पड गया है, उसके चित्तके समस्त पाप नाश होजाते हैं, और हृदयमें दिव्य प्रकाश होजाता है जैसे सूर्य तमका नाश करके प्रकाश करता है और पवन वादलोंको हटाकर आकाशको निर्मल कर देता है वैसे प्रभुकथाका श्रवण पाप विनाशकर हृदयको प्रकाशित और विशुद्ध बना देता है।

श्रृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्।

श्रीराम कथाके ओजस्वी शब्दोंको सुनकर कौन परम पदको नही पा सका है ? अर्थात् रामकथा श्रवण करनेवालोंने परम पद प्राप्त कर लिया है। महात्मा श्री तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी पिछले पापसो रामकथा न सोहाय।
जैसे ज्वरके जोरसे भोजनकी रुचि जाय॥

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रसविशेष जाना तिन्ह नाही।
ते जड जीव निजातम घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती॥
भवसागर चह पार जो जावा। रामकथा तिन्हको दृढ़ नावा॥

हृदयसो कुलिशसमान, जो न द्रवहि हरिगुण सुनत।
कर न रामगुण गान, जीहसो दादुर जीह सम॥

जो मनुष्य सदा श्रीराम चरित्रामृतका पान करता है वह, जन्म, मृत्यु, जरा, दुःख, विपत्ति और अनन्त उपद्रवोंसे पूर्ण संसार सागरसे पार होजाता है। एक महात्मा कहते हैं।

वैदेही रघुनाथकी कथा सजीवन मूरि।
तनके मनके वचनके करत रोग सब दूरि॥
करतरोग सब दूरि सुनत मन मोद बढ़ावै।
हृदय होत अति हर्ष सुनत जग मोह घटावै॥
बलदुदास आरोग्य भई निर्मल तेहि देही।
जिनके मन प्रियलगें रामरघुवर वैदेही॥

प्रभुके प्यारे भक्त तो प्रभु कथा श्रवणमें इतने तन्मय होजाते

हैं कि उनको खाना पीना सब कुछ विसर जाता है। श्रवणनिष्ठ भक्त परीक्षितजी कहते हैं कि—

नैषाति दुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखम्भोजाच्युतं हरिकथामृतम्।

हे मुनिराज! आपके मुखसे गिरती हुई हरि कथामृतधाराका पान करके मुझे इतनी तृप्ति मालुम हुई है कि यह घोर कष्टकारी भूख और प्यास मुझे जरा भी दुःख नहीं दे सकती है मैं परम शान्त हूं और अविचल आनन्दमय हूं। श्रवणनिष्ठ भक्तवरहनुमानजी भी प्रभुकथा सुनकर ऐसे ही प्रेम विभोर होजाते हैं—यथा—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिंनमत राक्षसान्तकम्॥

रामकथा जहां होतहै तहां तहां पवनकुमार।
शिरपर अञ्जलि धरिसुनत, वहत नयन जलधार॥

सुर दुर्लभ मानव देह धारणकरके सारासार विवेक होते हुए भी यदि प्रभु यश श्रवणमें प्रेम न हुआ तो उसका जीना ही व्यर्थ है। यथा—हारीते—

नूनं देवेन विहिता ये चाच्युत कथासुधाम्।
हित्वा श्रृण्वन्त्यसद्गाथां पुरीषमिव विड् भुजः॥

श्री प्रभुकी अमृतरूप परम शुभ कथाको त्यागकर जो मानव देहधारी सांसारिक व्यर्थ वार्ताओंके श्रवणमें मन लगाता है यह पावन पदार्थोंको त्यागकर सूकरके समान विष्टाकोही खाता है।

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे॥
श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः॥

(भागवत २, ३, १८-१९)

क्या वृक्ष जीवन धारण नहीं करते हैं? क्या लोहारकी भाथी श्वास नहीं लेती हैं? क्या ग्रामके पशु खाते पीते और मलमूत्र त्याग नहीं करते हैं? परन्तु इन सकल क्रियाओंसे युक्त पुरुष यदि प्रभुके पावन नामोंको और गुणोंको नहीं सुनता है वह पामर नर पशुका जीवन वृक्षवत् जड है, श्वास प्रश्वास भाथीके समान व्यर्थ है, उसका खाना, पीना, सोना, जागना पशुवत् चेष्टाएं हैं वह मूढ़, स्वान, सुअर, बिलाड, ऊंट, और गधासे भी नीच है ओ प्रभु गुण श्रवणसे विमुख है—

। इति श्रवणभक्ति ।

सङ्कीर्तनभक्ति

(कीर्तन)

मित्रो! सङ्कीर्तन है सार। कलिके जीवोंका आधार ॥ टेक ॥
हिल मिल प्रभु सङ्कीर्तन करिये, ध्यान सदा सियवरका धरिये।
कहते वेद पुराण पुकार, कलिके जीवोंका आधार ॥
और उपाय नही है जगमें, भला सभीका सङ्कीर्तनमें !
सन्तनका मत यही विचार, कलिके जीवोंका आधार ॥
निन्दकको निन्दा करनेदो, नहि किञ्चित् मनको डरनेदो।
प्रेमसुधा पीलो सुखकार, कलिके जीवोंका आधार ॥
ऊंचे स्वरसे नाम उचारो, लोक लाज हिरदयसे टारो।
नाचो प्रेम मगन हो यार, कलिके जीवोंका आधार ॥
सङ्कीर्तन संसार निधीसे, तार मिलावे प्रेमनिधीसे।
कर देता है बेडा पार, कलिके जीवोंका आधार ॥

रामकृष्णादिनाम्नां तु रटनं वा मुहुर्मुहुः।
भगवतो यशोगानं कीर्तनभक्तिरुच्यते ॥

भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके नामका धीरे धीरे या ऊंचे स्वरसे कीर्तन करना, गान करना, सङ्कीर्तन कहलाता है, श्रीहरि सङ्की-

र्तनकी महिमा अपार है। इस घोर कलिकालमें तो केवल प्रभु नाम सङ्कीर्तन मात्र ही आधार है।

कृते यद्धायते विष्णुस्त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

(भागवत)

सत्ययुगके लोग अत्यन्त उग्र तपकरके जो फल प्राप्त करतेथे त्रेतायुगके लोग बड़े बड़े यज्ञ करके जो फल प्राप्त करतेथे, द्वापरयुगके लोग प्रभुपूजनद्वारा जो फल प्राप्त करतेथे आज इस घोर कलिकालमे वही फल परम सुगमतासे केवल प्रभु सङ्कीर्तनद्वारा ही प्राप्त होता है। उसीसे कहा गया है—

कलियुग योगयज्ञ नहि दाना। एक आधार रामगुणगाना॥

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना।
तत्फलं भाप्यते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात्॥

तप, योग, और समाधिद्वारा जो फल मिलता है वह फल कलियुगमें केवल प्रभु कीर्तनद्वारा ही प्राप्त होजाता है।

कलेर्दोषनिधेराजन्नस्ति एकोमहान्गुणः।
कीर्तनादेव कृणस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

(भागवत)

हे राजन्! इस कपट, द्वेष, क्रोध, दुर्बुद्धि, दुराचरणादि पापमय कलियुगमें परम सत्वका विकास करनेवाला और भव बन्धनसे मुक्त करनेवाला श्रीहरिनाम कीर्तन ही है।

राजा परीक्षित् अनशन व्रत धारण करके प्रभु कथा सुनने बैठे हैं, और एक चित्त होकर प्रभुयशका श्रवण करते हैं परन्तु महात्मा शुकदेवजीने परीक्षित्की परीक्षा करनेके लिये यह पूछाकि यदि आपको कथा सुनते सुनते चित्त घबडा गया होय तो मैं कुछ दूसरी बातें कहूं इसको सुनकर राजर्षि परीक्षितजी कहते हैं कि हे महाराज !

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात् भवौषधाच्छ्रोत्र मनोऽभिरामात् ।
क उत्तम श्लोकगुणानुवादात् पुमान्विरज्येतविना पशुघ्नात् ॥

(श्रीमद्भागवत)

जिनकी तृष्णा निवृत्त होगयी है ऐसे महामुनिभी जिस प्रभु का निरन्तर गुणगान करते हैं, जो भवरोगकी परमौषधि है, मन और वाणीको परम आनन्ददाता है, ऐसे उत्तम श्लोक प्रभुके गुणगानसे एक आत्महन् मनुष्यके सिवा और कौन उपरत हो सकता है ?

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्यवा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ।

तप करनेका, वेदशास्त्र श्रवणका, इष्ट साधनका, सुकृत साधनका, समस्त शुभ कर्मका फल यही है कि प्रभुके गुणगानमें प्रेम हो। विज्ञ पुरुषोंने यही सिद्धान्त दृढ़ किया है कि समस्त शुभ कर्मका फल प्रभुकीर्तनमें प्रेम होना हीहै । भागवत रत्न भक्त प्रह्लादजो महा घोर वैतरणीसे पार होनेका सहज और सुरम्य एक मात्र यही उपाय बताते हैं कि—

नैवोद्विजे पर दुरत्यय वैतरण्या,
त्वद्वीर्य्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियाणां,
मायासुखायभरमुद्वहतो विमूढान्॥

हे नाथ ! मैं आपके चरित्र, यश, और नाम सङ्कीर्तनके महा अमृत सिन्धुमें मग्न होनेंके कारण विकराल परम भयावह मल मूत्र रुधिरसे परिपूर्ण वैतरणीसे नही डरता हूं परन्तु मुझे सोच उन्हींका है जो आपके नाम यश और लीलाओंका कीर्तन नही करते हैं और मूढ बनकर इन्द्रियोंके विषयोंकी पूर्तिके लिये सदा मायाजालमें ही फँसे रहते हैं।

जो प्रभुके चरणरजका सदा स्मरण करते हैं जो निरन्तर प्रभुके महान् चरित्र सिन्धुमें अवगाहन करते हैं। वह परम भाग्यशाली हैं। वेद्भी वर्णन करते हैं—

दुरधिगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो-
श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्तिकेचिदपवर्गमपीश्वर ते,
चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥
(वेदस्तुति-भागवत)

हे ईश्वर ! दुख करके भी न जाना जाय ऐसे अत्यन्त निगूढ तत्त्वको दिखलानेके लिये जो आपने पावन अवतार धारण किये हैं और लोक हितकारी अद्भुत कर्म किये हैं। उन आपके पावन चरित्र-

रूप अमृत सागरमें निमग्न हैं और उसमें अवगाहन करके अपने परिश्रमोंको दूर कर दिये हैं ऐसे आपके चरणोंमें परमासक्त महापुरूषोंने गृह स्त्री परिवार युक्त संसारका तो त्याग कर दिया है परन्तु वह हंस कुलावतंस सन्तजनतो अतिदुर्लभ मोक्षकी लालसाओंका भी विनाश कर बैठे हैं।

ऐसे वेद प्रतिपादित प्रभुसङ्कीर्तनका लाभ जो नहीं लेते हैं और घर संसारमें मग्न रहते हैं ऐसे लोगोंका आयु व्यर्थ ही व्यतीत होता है मानव देह सरीखे अमूल्य देहको वे पामर प्राणी मुफ्तमें गुमा बैठते हैं—

आयुर्हरति वै पुसांमुद्यन्नस्तमयन्नसौ।
तस्यर्ते यत्क्षणोनीतः उत्तमश्लोकवार्तया॥

भगवान् भास्कर उदय और अस्तरूप क्रियासे समस्त प्राणियोंकी आयु हरण कर लेते हैं परन्तु जिस क्षणमें प्रभुकीर्तन किया हो उस क्षणको छोड कर।

जिह्वासती दादुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः।
जीहसो दादुर जीह समाना। जो न करै रघुपति गुणगाना॥

प्रभु कथाका श्रवण करना प्रभुके नामका कीर्तन करना, प्रभुके स्वरूपका ध्यान करना, वह मनुष्यके समस्त पापोंको विध्वंस कर देता है क्योंकि भगवद्यश परम पावन है। प्रभु नाम सङ्कीर्तन राजसी और तामसी प्रकृतिओंका नाश कर देता है। अतः विद्वान्

पुरुषोंको और सन्तोंको परम रसमय प्रभु नामका सदा सङ्कीर्तन करना चाहिये।

परदारारत, पापवृत्ति परायण, और घोर पापीनर प्रभु सङ्कीर्तनसे पावन होजाता है। श्रीराम सङ्कीर्तनद्वाराही गणेशजी प्रथम पूण्य हुए.

नामसङ्कीर्तनके प्रभावसेही हलाहल जहर शङ्करजीका बाल भी बाँका न कर सका, नाम सङ्कीर्तनके प्रभावसे ही ब्रह्मा सृष्टि रचयिता विष्णु पालक और रुद्र संहर्ता हुए, और नाम कीर्तनके प्रतापसेही वाल्मीकि व्यास, शुकदेव, नारद और अनन्त महर्षिगण जगत्पूज्य होगये, नाम सङ्कीर्तनके प्रभावसे चैतन्य महाप्रभु ईश्वरावतार माने गये, नाम सङ्कीर्तनके प्रभावसे ही कबीर नाभा, नामदेव, तुकाराम, मीरां, नरसिंह और तुलसीदासजी गोस्वामी ईश्वरके साक्षात् दर्शन कर सके। अतः प्रत्येक सुखाकांक्षी सज्जनोंको सच्चे प्रेमके साथ श्रीहरि नामका सङ्कीर्तन करना चाहिये।

महानिन्दनीय, अनाथ, अवलम्बरहित, दुर्भागी, परम दुःखी परम दरिद्र, सन्तप्त मनुष्य भी श्रीराम नाम सङ्कीर्तनसे परम सुखी हो जाता है। प्रभुनाम सङ्कीर्तनमे जिसका प्रेम नहीं है वह करोडो साधन क्यों न करे परन्तु कभी मोक्षकी प्राप्ति नहीं कर सकता है। और श्रीराम राम सीता राम इस प्रकारके प्रभुनामोंका उच्चारण करके प्रेम सहित सङ्कीर्तन करता है वह शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति कर लेता है। करोडों यज्ञ करनेसे, अनन्त दान देनेसे, समस्त तीर्थभ्रमण करनेसे, हजारोंवार गङ्गा स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है उससे

भी कोटिगुण फल प्रभुनाम सङ्कीर्तनद्वारा शीघ्र ही प्राप्त होता है। जिस स्थलपर प्रभुभक्त सन्तजन प्रेममें मतवाले होकर ऊंचे आवाजसे श्री सङ्कीर्तनध्वनि करते हैं वह अवाज जितनी दूरी पर जाता है उतना स्थल तीर्थभूत होजाता है।

वर्तमानञ्च यत्पापं यद्भूतं यद्भविष्यति।
तत्सर्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानलकीर्तनात्॥
(विष्णुपुराण)

तीनों कालमें जो कुछ पाप किये होगें वह समस्त पापोंको श्रीहरिनाम सङ्कीर्तन जलाकर भस्म कर देता है।

साङ्केत्यं परिहास्यंवा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघ हरं विदुः॥
(भा० ६, २, १४)

सङ्केतसे, उपहाससे, अवहेलनासे, किसी तरहभी प्रभुनाम लेनेंसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

महर्षि शुकदेव कहते हैं।

एवं निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोऽभयम्।
योगीनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥
(भागवत)

हे नृप! संसारसे निर्विद्यमान, वैराग्यशील, अकुतोभयकी कामनावाले योगियोंने निर्णय करके यही बताया है कि अभय चाहनेवाले मनुष्यके लिये श्रीहरिनाम सङ्कीर्तन ही परम श्रेयस्कर है।

सर्व रोगोंका नाशक समस्त उपद्रवहारक, शान्तिदाता, अरिष्टोंको दूर करनेवाला, श्रीहरिनाम कीर्तन है। विवश हो कर भी यदि कोई प्रभुका नाम लेता है तो भी उसके समस्त पाप, ताप, भाग जाते हैं जैसे सिंहको देखकर मृगा भाग जाते हैं। अतः मित्रो ! आप भी अपनी आलसी जीभको समझावो कि—

वद जिह्वे वद जिह्वे चतुरे श्रीराम रामेति।
पुनरपि जिह्वे वद वद जिह्वे श्रीराम रामेति ॥
हे जिह्वे रस सारज्ञे मधुर किं न भाषसे।
मधुरं वद कल्याणि श्रीरामनामात्मकम् ॥

जब आप अपनी प्यारी जिह्वाको प्रभुकीर्तनका रसास्वादन करावोगे तब ही तुम्हें सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दीखने लगेगा. तुम्हारे समस्त पाप, ताप, दुःख, शोक, रोग, और भय निवृत्त हो जायँगे।

मृषा गिरस्ता ह्यसती रसत्कथा न कथ्यते यद्भगानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदुहैव मङ्गलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥
तदेवरम्यं रुचिरं नवं नवं तदेवशश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥
नयद्वचश्चित्रपदं हरे र्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्ध्वांक्षतीर्थं न तु हंस सेवितं यत्राच्युतस्तत्रहि साधवोऽमलाः।

(श्रीमद्भागवत)

वह जीभ परम अशुद्ध और असती है जो प्रभुके पावन गुणोंका कीर्तन नही करती है। वही जीभ सत्य है, मङ्गलकारी है और पुण्यमय

है जो प्रभुके गुणोंका कीर्तन करती है। जिस जगह पर प्रभु प्रिय भक्तोंकी कीर्तनध्वनि ध्वनित हो रही है वहांकातो आनन्द ही अवर्णनीय है, परम रम्य है, परम रुचिकर है और उस स्थल पर सदाकाल महान् उत्सव मचा रहता है, उस स्थलके समस्त शोकोंके समुद्र क्षण मात्रमें ही सूख जाते हैं।—अर्थात् जिस समय और जिस स्थलपर कीर्तन होता है उसी क्षण उस स्थलके समस्त दुरितोंका नाश होजाता है और आनन्दकी विमल धारा प्रवाहित होजाती है। भले अत्यन्त चित्र विचित्र और मनोमोहक शब्दोंसे युक्त रसीली कविताएं क्यों न होय, अच्छे अच्छे आख्यान और रङ्गीली वार्ताओंसे भरपूर ग्रन्थ क्यों न होय, परन्तु यदि वह ग्रन्थ श्रीहरिगुणगानसे रहित होय तो वह साधु पुरुष और सज्जन, महानुभावोंको कभी माननीय हो ही नही सकता, वह तो कौओंके और बगुलोंके योग्य मैले नाले हैं परन्तु हंस कुलावतंस सन्तोके योग्य मान सरोवर नही है। सच्चे सन्त तो जिस जगह प्रभु कीर्तन होता है वहीं वास करते हैं।

तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतां पतिः॥
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्चध्येयः पूज्यश्च नित्यदा॥

इसीसे भक्तोंको प्रियतम प्रभु, प्राणपति परमेश्वरके नामका सदा कीर्तन करना चाहिये, उनके यशोंका सदा श्रवण करना चाहिये और उनके रूपका सदा ध्यान धरना चाहिये।

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यत्स्मरणं यदर्चनम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोतिकिल्विषं तस्मै सुभद्रश्रवसेनमोनमः॥

जिसका स्मरण, जिसका कीर्तन, जिसका पूजन, जिसकी वन्दना, समस्त जगत्के अघोंको तत्काल नाश कर देती है उस निरतिशय कल्याणमय प्रभुको वारम्वार नमस्कार है।

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं,
श्रेयः कैरव चन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिदिनं पूर्णामृतास्वादनं,
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीनाम सङ्कीर्तनम्॥

श्रीहरि नाम सङ्कीर्तन चित्तरूपी दर्पणको साफ करनेवाला है, भवरूप महा दावाग्निको प्रशमन करनेवाला है. जीवोंके मङ्गलरूपी कैरव चन्द्रिकाका फैलानेवाला है. विद्यारूपी वधूका जीवन है, प्रत्येक पद पर पूर्ण सुधाका मधुर पान करानेवाला है, हर समय आनन्द सागरको बढ़ानेवाला है, और सर्व प्रकारेण शीतल स्वरूप है ऐसे श्रीहरि नाम कीर्तनकी सदा ही जय हो।

श्रीहरिनाम कीर्तन जोर—जोरसें किया जाता है। सङ्कीर्तनके लिये किसी समय या अवस्था या अमुक संख्याका नियम नही होता है। जप जितने गुप्त स्वरसे या मनसे होगा उतनाही उसका अधिक महत्व है और कीर्तन जितने ऊंचे स्वरसे गगनभेदा तुमुलध्वनिसे होगा उतनाही उसका विशेष महत्व है। कीर्तनमें गायन और वाद्य यन्त्रकी उपयोगिता भी शोभाको प्रवर्द्धित करती है। परन्तु यह कोई खास नियम नही है कि गाना और वाजा होनें ही चाहिये। कीर्तन कई प्रकारसे किये जाते हैं।

आर्त स्वरसे दीन होकर अकेले ही प्रभुको पुकारना सङ्कीर्तन है। प्रभुके गुण, यश, चरित्रादिकोंके नामोंको लेकर कोई एक रागसे गाना भी कीर्तन है। भगवान्‌के चरित्र या भक्तोंके चरित्रोंको कथा रूपेण गान करना भी सङ्कीर्तन है। कुछ लोगोंको साथ मिलाकर प्रभुके नामोंका गान करना भी सङ्कीर्तन है। और खूब लोगोंको साथ मिलाकर करताल, मृदङ्ग, सितार, हारमोनियम आदिक सङ्गीतद्वारा ताल, स्वर और लयकी एकतानता करके प्रभु गुण गाना भी सङ्कीर्तन है। इन विभेदोमेंसे जिस भक्तको जैसे प्रिय लगे वैसे प्रभु सङ्कीर्तन करते हैं।

कितने लोगोंका कथन है प्रभुतो अन्तर्यामी है "चींटीके पग नूपुर बाजे वह भी साहिब सुनता है" अतः जोर जोरसे चिल्लानेसे क्या फायदा? मन ही मन प्रभु सुमिरण क्यों न करै? शास्त्र तो कहता है—

विधियज्ञाज्जप यज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः॥

पाठको! उपरके श्लोकमें तीन प्रकारके जप बतलाये हैं। और मानसिक जपको सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। परन्तु यह नियम उन मन्त्रोंके लिये हैं जिन मन्त्रोंको श्रीगुरु महाराजने प्रभु शरणागति ग्रहण करनेके समय गुप्त रूपसे प्रदान कियें हो किन्तु भगवन्नाम जपके लिये यह बन्धन नहीं है। नाम सङ्कीर्तनमें तो—

"न कालनियमोराजन् नदेशनियमस्तथा"

अमुक समयमें या अमुक देशमें या अमुक अमुक विधिसे जपना यह नियम प्रभुनाम कीर्तनमें नही है। केवल नामके दश अपराधोंको त्यागकर. प्रभुकीर्तनमें तो मनमें जपना ऐसा नियम तो है ही नहीं उसे जितने जोरसे जपा जाय उस जगत्पवित्र अशेष पतितोद्धारक प्रभु नाम जितने अधिक मनुष्य सुन सकें वैसे ही प्रयत्नके साथ उच्चारण करना चाहिये। कहा भी है—

जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः।
आत्मानञ्च पुनात्युच्चै जपञ्श्रोतॄन् पुनातिच ॥

भगवन्नामका जितनेही जोरसे उच्चारण होगा इतना ही अधिक फल है क्योंकि धीरे धीरे नाम जप करनेवाला तो अकेला ही अपने आपको तारता है, पावन करता है परन्तु उच्च स्वरसे कीर्तनकार सुननेवाले जड—चेतनको भी पावन कर देता है। यथा—

रामनामात्मकं शब्दं श्रृण्वन्मुनि शिरोमणे।
रामनाम समं पुण्यं फलमाप्नोति मानवः ॥
(सदाशिव संहिता)

अर्थ—हे मुनि शिरोमणे! श्रीरामनामात्मक शब्द श्रवण करनेंसे भी मनुष्य श्रीरामनाम कथनके समान ही फल प्राप्त करता है। श्री चैतन्य देवका कथन है—

पशु पक्षी कीट आदि बोलिते ना पारे।
सुनि लेईं हरिनाम तारा सब तरे ॥
जपिले से हरिनाम आपनिसे तरे।
उच्च सङ्कीर्तने पर उपकार करे ॥

अतएव उच्च करि कीर्तन करिले।
शतगुण फल हय सर्व शास्त्रबले।।

यह हरिनाम कीर्तन कुछ अर्वाचीन नहीहै यह तो परम प्राचीन है महान्—महान् महर्षियोंने कीर्तन कल्प वृक्षकी शुभ और शीतल छायाका आश्रय लिया है। विना कीर्तनकी सुखद छायाके आजतक किसीको शीतलता प्राप्त नहीं हुई है। नारद प्रह्लाद, शुकदेवादिक महर्षियोंने ही इस सङ्कीर्तन कल्पवृक्षका बीज बोया है और समय समय पर भगवान्‌की दिव्य विभूतियोंने बराबर उस कीर्तन कल्पवृक्षका पालन किया है। एक संस्कृत कविने क्या ही सुन्दर कहा है।

प्रह्लादनारदशुकादिभिरुप्त बीजो,
वाल्मीकभीष्मविदुरप्रमुखैश्च सिक्तः।
गौराङ्गनाथतुकागोकुलरायमुख्यैः,
सम्वर्धितो जयति कीर्तनकल्पवृक्षः।।

यदि भगवत्कीर्तनकी कुछ महत्ता न होती तो नारदजी शुकदेवजी, वाल्मीकिजी, चैतन्यदेव, प्रभृति महर्षिगण इतने भारी कीर्तनकार क्यों हुए? शास्त्रतो कीर्तनका महत्व दर्शाते हैं कि—

विष्णोर्गानं च नृत्यं च वादनं च तथैव च।
सदा ब्राह्मणजातीनां कर्तव्यं नित्यकर्मवत्।।
नृत्यतां श्रीपतेरग्रे करसंस्फोटनादिभिः।
उड्डीयन्ते शरीरस्थाः महापातकपक्षिणः।

नास्ति नास्ति महाभाग कलियुगसमं युगम्।
स्मरणात् कीर्तनाद्विष्णोः प्राप्यते परमं पदम्।
(नारायणसारसंग्रह)

भगवान् विष्णुके सामने गाना, बजाना, तथा नाचना, और उच्च स्वरसे कीर्तन करना यह ब्राह्मण जातियोंको सदा नित्य कर्मकी तरह करना चाहिये। भगवान्के सामने नाचते—नाचते जो मनुष्य प्रेमपूर्वक ताली पाडता है उसके देहरूपी वृक्ष पर बैठे हुए समस्त पापरूपी पक्षी उड़ जाते हैं। हे महाभाग! इस कलियुगके समान और कोई भी श्रेष्ठ युग नहीं है, क्योंकि इस घोर पापमय युगमें भी विशेष श्रम विना ही केवल भगवत्स्मरण और कीर्तनद्वारा ही वह फल प्राप्त होता है जिस फलको बड़े बड़े महर्षिगण उग्र तप करके भी प्राप्त नहीं कर सकतेथे। प्रभु अर्जुनसे कहते हैं कि—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः।

हे अर्जुन! मेरे दृढ़ भक्त सर्वदा मेरा कीर्तन, यजन करते हैं।

जिस हरिनाम कीर्तनका इतना भारी महत्व है, ऐसा प्रबल प्रताप है उससे जो नरदेहधारी वञ्चित रहता है वह निश्चयही महा मन्दभागी है—

जिह्वां लब्धापि यो विष्णुःकीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्धापि मोक्षनिःश्रेणिं स नारोहति दुर्मतिः॥

परम कीर्तनीय प्रभुका कीर्तन परम शुभ जिह्वाको प्राप्त करके भी जो नहीं करता है वह दुर्मति मोक्षकी सीढ़ियोंको प्राप्त करके भी उस पर नहीं चढ़कर भटकनेवाले मूर्ख सदृश है।

जिस जगह पर कीर्तन होता है वहांपर प्रभु सर्वदा उपस्थित रहते हैं प्रभुका वचन है कि—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

मैं योगियोंके हृदयमें वास नही करता हूं मैं वैकुण्ठमें नहीं रहता हूं परन्तु मेरे भक्त जिस स्थल पर मेरे नाम यश और लीलाओंका कीर्तन करते हैं वहीं पर सदा मैं उपस्थित रहता हूं—पुनः—

गीत्वा तु मम नामानि नर्तयेन्मम सन्निधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥

जो मेरे नामोंका गान करता हुआ, मेरे सामने नाचता है, हे अर्जुन! मैं सत्य कहता हूं कि मैं उसके द्वारा विक जाता हूं।

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं, रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च, मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भागवत ११, १४-२४)

जिसकी वाणी गद्गद होजाती है, हृदय द्रविभूत होजाता है, वारम्वार ऊँचे स्वरसे नाम ले—लेकर मुझे पुकारता है। कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी लाज छोडकर हाथ ऊंचे करके नाचने लगता है। ऐसा भक्तिमान् मेरा भक्त अपनेको तो पवित्र करता ही है परन्तु अपने दर्शन स्पर्शन और सम्भाषणद्वारा तीनों भुवनोंको पावन करता है।

ऐसे—ऐसे शतशः प्रमाण हमारेधर्मशास्त्रोंमें पाये जाते हैं अतः प्रभुनामकीर्तन उच्चस्वरसे ही करना चहिये—मन्त्र, जप अवश्य ही गुप्त

रूपेण करना उचित है परन्तु प्रभु नामका कीर्तनतो सबके सामने सब समयमें और हरेक तरहसे करना उत्तम है। यदि हम मनमें ही प्रभु नाम स्मरण करते हैं तो आजकालके पापी प्राणियोंका मन स्थिर नहीं रहता है यह तो ऐसा बुरा प्रेत है कि क्षणभरमें कहींका जहीं जाकर पटक देता है। परन्तु परमेश्वरके नाम कीर्तनमें ऐसा नहीं होने पाता क्योंकि—

नामामृतेन रसनामसकृत्पुनाति,
श्रोतॄँश्चरञ्जयति गायनवादनाभ्याम्।
प्रीणाति बोधवचनैश्च मनो नितान्तं,
सङ्कीर्तनं सुखकरं सकलेन्द्रियाणाम्॥

अनेकोवार नामामृतास्वादन करके जीभ अनेकोवार पावन हुआ करती है. कान प्रभुके नाम यश लीलाओंका श्रवण करके परम पावन होजाते हैं, गायन और वाजाओंके द्वारा प्रभु कीर्तन सुनकरके परमानन्दका अनुभव करते हैं और मन प्रेमोत्पादक प्रभुचरित्र सुनकर और सुन्दर उपदेश सुनकर परम पावन होजाता है अर्थात् सङ्कीर्तन सर्व इन्द्रियोंको सुख देता हुआ जीवोंको प्रभुमय मना देता है।

कलिमल ग्रसित पामरोंकेलिये पूज्य शास्त्रकारोंने केवल कीर्तन मात्र ही आधार बतलाया है। महात्मा तुलसीदासजी लिखते हैं—

न टरै भव सङ्कट दुर्घट है तप तीर्थ सुजन्म अनेक अटो।
कलिमें न विराग न योग कछू सब लागत फोकट झूट जटो॥
नट ज्यों जनि पेट कुपेटक कोटिक, चेटक कौतुक ठाठ ठटो।
तुलसी जो सदा सुख चाहिये तो, रसना निशिवासर राम रटो॥

बहुत क्या लिखूं यदि शास्त्रोंके प्रमाण ही देने लगजाऊं तो एक महाभारत तैयार होजाय, परन्तु **सब शास्त्रोंका यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि कलियुगमें श्रीहरिनाम सङ्कीर्तनही प्रभु प्राप्तिका एक मात्र साधन है।** अतः आप सब भी एक महानुभावके स्वरमें स्वर मिलाकर अपनी जीभको समझाओ तो--

रसना मेरी लाडिली लेहु लाडिलो नाम।
महाराणी श्रीजानकी महाराजा श्रीराम॥
महाराजा श्रीराम सदा सेवक सुखदायक।
निज भक्तनके काज धरेऊ कर धनुअरु सायक॥
"बलदुदास" अस स्वामी ताहि भजु तजु सब कसना।
गावहु सीताराम विमल यश मेरी रसना॥

पद्मपुराण पातालखण्डमें एक आख्यायिका है कि--राजा सुमति और राणी सत्यव्रती दोनों परम प्रभु भक्त थे, और नीतिपूर्वक राज्य चलाते थे. उनका यह नियम था कि रोज प्रभु मन्दिर पर एक परम सुन्दर ध्वजा चढ़ानी और जो ध्वजा उतारी जाय उसको हाथमें लेकर राजा और राणी प्रेमविभोर होकर आरतीके समय नाचते थे--उनकी यह प्रथा कितने लोगोंके हृदयमें खटकतीथी परन्तु भयके मारे कोई पूछ भी नही सकताथा कि आप ऐसा क्यों करते हो? और कोई ना भी नही कह सकताथा कि आप ऐसा मत करिये।

एक समयकी वात है कि महर्षि विभाण्डकजी दैवयोगसे राज सभामें पधारे, राजाने उनका अपूर्व आदरके साथ योग्य पूजन किया, कुछ समय सुन्दर सत्सङ्ग हुआ, वात होते-होते राजासे श्रीविभाण्डकजीने

पूछाकि--राजन् ! आप रोज प्रभु मन्दिरमें प्रेमपूर्वक नृत्य करते हैं और ध्वजा चढ़ाते हैं उसका क्या हेतु है ?

इस प्रश्नको सुनकर राजा सुमति आनन्द और सङ्कोचके वश होकर बोलेकि--हे महाराज ! मैं पूर्व जन्ममें एक शूद्र कुमार था, मेरा नाम मलिन था जैसा नाम था वैसा मेरा कृत्य भी था, चोरी, छिनाली, मद्यपान, हिंसा, असत्य, और क्रूरताकीतो मैं साक्षात् मूर्ति था, मेरे अत्याचारोंकी अत्यन्त प्रचुरता देखकर राजाने मुझे देशसे निकाल दिया, मैं जङ्गलोंमे मारा मारा फिरताथा, और जीवोंको मारकर पेट भरताथा.

एक समय मेरे निकट रहनेवाले दामुककी पुत्री कोकिलनी भी उसी जङ्गलमे आ पहुंची, मैं उससे परिचित नही था परन्तु मेरी दुर्बुद्धिने मुझे उससे खूब परिचित करा दिया, और हम दोनों उसी जङ्गलमें जीवोंको मारकर कामासक्त हो जीवन व्यतीत करने लगे.

एक समय अत्यन्त वर्षा हुई, हम दोनों थरथर कांपने लगे, शीत निवारणके लिये उपाय करने लगे, दैवयोगसे पासहीमें एक जीर्ण मन्दिर हम दोनोंको दिखाई पडा, तुरत हम उस मन्दिरमें गये और रात वहां विताई—

मैं पापी तो था ही थोडासा सुख मिला कि फिर इन्द्रियाँ प्रबल हो उठीं, और मद्यपान करनेंकी प्रबल इच्छा हुई, बडे परिश्रमसे थोडासा मदिरा मैं ले आया, आधा मैंनें पिया और आधा कोकिलनीको पिलाया, अब कहना ही क्याथा, दोनों खूब मतवाले होगये, मैं मन्दिरके ऊपर की ध्वजा उतार लाया और लगे उस ध्वजाको पकडकर दोनों नाचने।

संयोग वश उस समय वहांपर राजाके दूत आ पहुंचे, और हमारी नग्न लीलाओंको देखकर उन्हे बडा क्रोध आया—और हम दोनों पापी प्राणियोंको तीक्ष्ण तलवारके झटकेसे मार कर कालका स्वागत किया ।

महर्षिजी ! बस, उसी मतवाले होकर प्रभुके सामने नृत्य करनेका फल यह है कि घोर नरकोंके कष्ट न भोगकर आज राजा बना हूं वही शूद्र कन्या मेरी राणी बनी हुई है, और उसी पुण्यके प्रभावसे आजतक मुझे पूर्व जन्मकी कथा याद है—और आगे दुःख न भोगना पडे सदा सुखके भागी बने रहें एतदर्थ मैं प्रभुके सामने लज्जाको छोडकर ध्वजा हाथमें लेकर सङ्कीर्तन करता हूं । मैं यह खूब जानता हूं कि मेरा यह कृत्य प्रजाके कितने पुरुषोंको अच्छा नही लगता है परन्तु महात्माजी ! आप ही बतलाइये कि लोकलाज सरीखी नजीवी चीजके लिये मैं अपने अनन्त ऐश्वर्यका त्याग कैसे करदूं ?

यह कथा सुनकर महर्षिजी भी प्रेममें मस्त होगये, और प्रभु गुण गाते विदा हुए ।

यदि आज हम भी असीम सुखकी चाहना करते हैं तो हमें भी उसी तरह कीर्तन भक्तिके रससागरमें खूब ही अवगाहन करना चाहिये। अन्यथा हमें इस संसारसे पार करनेवाला सरल और सरस कोई भी उपाय नही है ।

। इति सङ्कीर्तनभक्ति ।

स्मरणभक्ति

(गज़ल)

श्रीरामका सुमिरण सदा कल्याणका भण्डार है।
श्रीरामके सुमिरणसे कितने होगये भवपार हैं॥
रामके सुमिरण विना दुःख पायगामें रेजीव तू।
यमगण तुझे लेजायगें यमराजके दरबारमें॥
श्रीराम सुमिरण छोड मत जो चाहता है तू भला।
क्यों है फँसा हे मूढ़ झूठे दुःखमय संसारमें॥
यज्ञ जप तप और साधन शीघ्र फलदाता सभी।
श्रीरामके सुमिरण विना होजाते सब बेकार है॥
जो चाहता है आत्मशुद्धि भक्ति दीनानाथकी।
"प्रेमनिधी सुमिरण सदा, सह प्रेम करना यार है॥

अविस्मृतिः कृष्ण पदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि च शं तनोति।
स्वत्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्॥
(श्रीमद्भा० १२, १२-५५)

श्रीकृष्ण भगवान्के चरणका ध्यान समस्त अकल्याणोंको नाश कर देता है और आत्मशुद्धि, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्ययुक्त प्रभुकी रस-रूपा भक्तिका शुभ विकास करता है।

एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायण स्मृतिः॥
(श्रीमद्भा० २, १-६)

सांख्य और योगके पालनका, और स्वधर्म निष्ठाका एक मात्र यही फल है कि भगवान्‌के चरणोंकी अन्त समयमें स्मृति आवें।

सकृन्मनः कृष्ण पदारविन्दयोर्निवेशितं तद्गुणरागियैरिह।
न ते यमं पाश भृतांश्चतद्भटान् स्वप्नेऽपिपश्यन्तिहि चीर्णनिष्कृताः॥
(श्रीमद्भा० ६, १-१९)

प्रभुके चरणोंका, गुणोंका, और चरित्रोंका सदा स्मरण करता है वह परम पुण्यात्मा प्रभुभक्त स्वप्नमें भी यमदूत और यमराजाके दर्शन नही करता है क्योंकि प्रभुस्मरण समस्त पापोंका घोर नाशक है।

दृष्टस्तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्ग.
ब्रह्मादिभिर्हृदिविचिन्त्यमगाध बोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं,
ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथास्मृतिः स्यात्॥
(भागवत १०, ६९, १८)

श्रीनारदजी कहते हैं—हे अगाध बोधवाले, ब्रह्मादिक योगियों द्वारा वन्दित प्रभु! मैं आपके उन चरणोंका सदा स्मरण करता हुआ निरन्तर भ्रमण करता हूं जो चरण संसाररूप कूपमें पडे हुए जीवोंके तारक हैं अर्थात् जिन चरणोंका स्मरण करनेंसे मनुष्य संसारसे पार चला जाता है।

विद्यातपः प्राणनिरोधमैत्री तीर्थाभिषेको व्रतदानजप्यैः।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेन्तरात्मा यथाहृदिस्थो भगवत्यनन्ते ॥

(भाग० २, ३, ४८)

विद्या, तप, प्राणायाम, मैत्री, तीर्थाटन, व्रत, दान, जप, और यज्ञान्ताभिषेकद्वारा भी जो शुद्धि प्राप्त नहीं होती है वह चित्तकी शुद्धि प्रभु सुमिरणसे शीघ्रही प्राप्त होजाती है।

ऐसा शरीर वारम्बार नहीं मिलेगा इस शरीरके प्रत्येक श्वास तीनों लोककी सम्पत्तिसे भी अधिक मूल्यबान् हैं कहा भी है—"सम्पति सारे जगतकी श्वासा सम नहि होय" अतः हमें उन श्वासोंको व्यर्थ ही न वितानें चाहिये, भला, ऐसे अमूल्य श्वास रत्नोंको व्यर्थ ही खो देना कितनी भारी मूर्खता है उसका विचार तो करो, मनुष्यकी जब अन्तिम घडी उपस्थित होती है उस समय यदि कोई कितनें भी उपचार करे तो क्या वह मनुष्य जीवित रह सकता है? कोई कैसा भी डाक्टर हो, वैद्य हो और अनेक आरोग्यताके सिद्धान्तोंका ज्ञाता तथा रोगोंका उपचारक हो परन्तु आजतक कोई भी टूटीकी बूटी बता सका है? अमुक घडीमें तो बेचारे रोगीको कराल कालके वश होना ही पडता है—उस अन्तिम घडीके समय यदि कोई हाथमें जल लेकर सङ्कल्प करे कि यदि अमुक मनुष्य न मरे तो मैं तीनों लोकका राज्यका दान दे—देता हूं परन्तु ज्यादा तो नही एक घडी भी वह अधिक नही जी सकता है उसका धन, जन, माल, खजाना, स्त्री, पुत्र और मित्र स्नेही सबके सब यहां रह जाते हैं। वह सबको त्यागकर चल

वसता है। अतः " सो श्वाँसा रघुनाथ विनु तुलसी वृथा न खोय " वह अमूल्य श्वासोंको प्रभु सुमिरण विना व्यर्थ न खोनें चाहिये।

छोडगफलत तूनें ये पाये हैं कुछ गिन्तीके श्वाँस।
भोगमें विषयोंके फँस उनको न खोना चाहिये।

पद्मपुराणमें श्री ब्रह्माजीका वाक्य है—

चिन्तामणिसमं कायं लब्धाश्रीभारतेऽमलम्।
संस्मरेन्न परं नाम मोहात्सपतति ध्रुवम्॥

इस पवित्र भारत वर्षमें मनुष्यका शरीर पाकर जो कोई प्रभुके नामका स्मरण नहीं करता है वह मूढ मोहके वश होकर घोर नरकमें पडता है। बडी आश्चर्यकी वात है कि रोज एक एक करके मनुष्य यमके दरबारमें जाते हैं परन्तु दूसरे यही समझते हैं कि हमारा तो नाश होगा ही नही।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
अन्ये च स्थातुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महाभारत)

अतः जब जागे तबसे सवेरा समझकर लग जाओ प्रभुके स्मरणमें नही तो फिर यमराजाकी कचहरीमें जबाब देते नही बनेगा.

अभी तो भजन करनेंको फुरसत नहीं मिलती है परन्तु वहां यमराजाके दूतोंके मार खानेको जब फुरसत निकालनी पडेगी तब बडीही कठिनाई माल्रुम पडेगी, जिस मूर्खने मानव शरीर प्राप्त करके व्यर्थही गुमा दिया उसने, **काकत्रासप्रदानाय त्यक्तवान् कामदं**

मणिम्, कौओंको भगानेंके लिये पत्थर मानकरके कामद् मणिका त्याग कर दिया।

किसी एक किसानको खेतमेंसे एक सुन्दर मणियोंसे परिपूर्ण एक घडा मिला, परन्तु उस जङ्गलीने उन मणियोंको पत्थर मानकर अपनी मचानपर रख छोडा, जब कौए चिडिआं, और कोई जानवरकी आहट सुनाई पडे तो उन मणियोंके घडेमेंसे एक मणि फेकें, तो वह जानवर या पक्षी उड जाय परन्तु वह मणियां गिरती रही पासहीकी एक नदीमें।

एक दिन उसके लडकेको लेकर उसकी औरत खेतमें आई, सुन्दर और चमकीले पत्थरोंको देखकर लडकेने पांच दश मणियोंको अपनी जेबमे रखलीं, और घर जाकर उसकी कण्ठी बनवाकर गलेमें बांधली।

एक समय उस किसानके घरमें नमक नही था, और घरमें छदाम भी नही थी अतः किसानकी औरत उस लडकेके गलेमें जो कण्ठीथी उसमेंसे दो मणि निकालकर नमक लेनेको चली, मनमें विचार करती है कि ऐसे–ऐसे पत्थर तो बहुत पडे रहते हैं, मुझे इसके बदलेमें कौन नमक देगा? परन्तु कोई दयालुकी दुकान पर जाऊं तो वह अपने लडकेको खेलनेके लिये इन पत्थरोंको ले लेगा और मुझे आज कामचले उतना नमक दे–देगा, आगे देखा जायगा।

इस प्रकार विचार करती–करती एक जौहरीकी दुकानके पासहीमें किसी बनियेकी दुकानकर नमक लेने गई–उस बनियेने तो साफ ना करदी, परन्तु जब वह बहुत दीनता दिखाने लगी, तब

उसका करुण स्वर जौहरीके कानमें पडा, और वह बाहर आकर देखता है तो अमूल्य मणियोंके बदले एक तोला नमक माँगनेवाली किसानकी स्त्री उसके नजर आई। वहतो देखकर आश्चर्यचकित हो गया। और उस औरतसे मणियोंको लेकर उसे पांच लाख रुपिया देकर कहाकि तू क्यों इतनी गरीबाई भोग रही है ये तो अमूल्य मणियां हैं, ले अभी पांच लाख रुपिया लेजा और बाकी रहेगा तो मैं और जौहरियोंको बुलाकर इसका दाम निर्णय करके भेज दूंगा। किसानकी औरत तो आनन्द सागरमें गोता लगाने लगी और परम प्रसन्न हो घरमे गई, थोडे दिनमें सुन्दर बाग, बङ्गला, भव्य मकान, आदिक अनेक सुखके साधन कर लिये और अवशिष्ट मणियोंको सुरक्षित रूपेण घरमें रखदी—अस्तु—

जब घरमें सब प्रकारसे सुख हुआ तब वह एक दिन अपने पतिके पास गई और कहने लगी कि प्रभुकी कृपासे अपने घरमें सब सुख है बाग बङ्गला हवेलियां बन गयी हैं अतः आप चलें और घरमें रहकर सुखपूर्वक जिन्दगी बितावें ?

भार्याके इन वचनोंको सुनकर किसानतो आश्चर्यमें पड गया उसको तो विश्वास ही नहीं आया परन्तु पत्नीके आग्रह वश वह अपने घर गया, और सत्य वात होनेसे उसका आनन्द सागर सीमाको छोडकर आगे उछलने लगा. स्त्रीने धन प्राप्तिकी कथा अथसे इति तक पति चरणोंमें निवेदनकी, जब उसने सुना कि यह प्रभाव उन मणियोंका है जिनको हम सियार और कौए उडानेंमे काम लेते थे, तब तो वह

महान् शोक संतप्त होगया और रोने लगाकि हाय–हाय ऐसे अमूल्य मणियोंको मैंनें व्यर्थ ही खो दिया—

ठीक आज उस किसानकी तरह हमारी दशा है हमैं अमूल्य रत्नोंसे भरपूर मनुष्य देहरूप घडा मिला, परन्तु उन रत्नोंको हम लोगोंने सांसारिक विषय भोगोंमें लगाकर व्यर्थ खो दिये–अस्तु खोदिये तो खोदिये परन्तु उस जौहरीके समान सन्तगण हम लोगोंको वारम्वार उपदेश देते हैं कि **यह श्वास अमूल्य हीरे हैं पथरे नही हैं अतः इनको प्रभु सेवामें लगाओ, भवसागरमें मत फेंकदो** परन्तु हम ऐसे वज्र बधिर हुए है कि उन महात्माओंका एक भी शब्द नहीं सुनते हैं। परन्तु याद रक्खो कि यदि अब भी सचेत न हुए और विषय वासनाओंमें फँसे ही रहे तो अवश्य उस किसानकी तरह फूट–फूटके रोना पडेगा. अतः सचेत हो जाओ और प्रभुका सुमिरण करो। भयहारी भगवान्का सुमिरण करोगे तो तुम्हें जरा भी कष्ट न भोगना पडेगा.

भयं भयानामपहारिण स्थिते परात्परे नाम प्रकाश सम्पदे।
यस्मिन्स्मृते जन्म शतोद्भवानिभयानि पापानि प्रयान्ति तात ॥

(बृहन्नारदीय)

भयोंके भी भयको हरण करनेवाले परात्पर प्रभुके नाम सुमिरण करनेंसे सैकडों जन्मकृत पाप, और समस्त भय क्षण भरमें नाश हो जाते हैं। नाम स्मरणमें पाप नाश करनेकी जितनी प्रबल शक्ति है उतना पाप तो पापी मनुष्य कर भी नहीं सकता है

स्वप्ने तथा संभ्रमतः प्रमादाच्चैज्जृम्भणात्संस्खलनाद्य भावाः।
रामेति नाम स्मरतः सकृद्वै नश्यन्त्यसंख्यद्विजधेनुहत्या ॥
(भुषण्डिरामायण)

जो मनुष्य स्वप्नावस्थामें, भ्रमावस्थामें, प्रमादसे, और जमुहाई लेते हुए, गिरते, पडते, उठते, बैठते किसी प्रकार श्री रामनामका एक वार भी स्मरण करता है उसके गो हत्या, ब्रह्म हत्या, स्त्री हत्या, बाल हत्यादिक समस्त पाप नष्ट होजाते हैं। प्रभुका प्यारा भक्त तो हृदय खोलकर पुकार उठता है कि—

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव तारा बलं चन्द्र बलं तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्नाम यदा स्मरामि ॥

बस वही शुभ लग्न है, वही परम शुभ दिन है, उसी रोज चन्द्र अनुकूल है उसी रोज तारा अनुकूल है। उसी रोज विद्याबल है। उसी रोज दैवबल है। जिस समय मैं प्राणजीवन प्रभुके नामका तथा रूपका स्मरण करता हूं। प्रभु प्रिय सन्त सदा अपनी रसनासें कहते हैं—

हे जिह्वे मधुर प्रिये सुमधुरं श्रीरामनामात्कम् ,
पीयूषं पिब प्रेमभक्तिमनसा हित्वा विवादानलम्।
जन्म व्याधिकषाय कामशमनं रम्यातिरम्यं वरं,
श्रीगौरीशप्रियं सदैव सुभगं सर्वेश्वरं सौख्यदम् ॥

नानातर्क वितर्क मोह गहने क्लिश्यन्ति ये मानवाः,
तेषां श्रीरघुवीर नाम विमलं सर्वात्मना सौख्यदम्।

प्रेमानन्दपवित्ररङ्गरमणं सर्वाधिपं सुन्दरम्,
दृष्टं बोधमयं विचित्ररचनं सर्वोत्तमं शाश्वतम् ॥

हे जिह्वे ! हे मधुर प्रिये ! परम मधुर श्रीराम इस नामरूप अमृत पी, प्रेमभक्तिसे परिपूर्ण प्रभु रसका पान कर। और विवादरूप वडवानलका त्यागकर जन्म, व्याधि, पाप, कामादिक विकारोंका प्रशमन करनेवाला परम रमणीय, श्री गौरीशजीको परम प्यारा, सदा ही कल्याण करनेवाला, परम सुभग, सर्वेश्वरके सुखप्रद नामका निरन्तर स्मरण कर। अनेक तर्क वितर्करूप मोहके घने जङ्गलमें भूले हुए जो प्राणी हैं उनको सन्मार्ग बतलानेवाला, सर्वप्रकारेण सुखप्रद, प्रेम आनन्द और पवित्रता प्रवर्द्धक सर्वात्मना परमसुन्दर और परमशाश्वत प्रभु नामका स्मरण कर।

सर्वेश्वर प्रभुका नाम समस्त रोगोंका नाशक है. दिव्य गुणोंका प्रकाशक है। स्मरण करनेवाले भक्तके दुःखोंका नाशक है। परमकृपाका सागर है, सर्व, देव, नर, यक्ष, गन्धर्व, ऋषि, नाग, और मुनीश्वरोंद्वारा पूजित है। विक्षेप, पाप, तथा दुष्टबुद्धिका नाशक है, संसार सिन्धुसे पार करनेवाला है, और पवनपुत्र श्री हनुमान्जी महाराजके रोमरोममें व्यापक है शिवजीका हृदयधन है तथा प्राण है।

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां,
सकलनिगमवल्ली यत्फलं चित्स्वरूपम्।

सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा,
स भवति भवपारं रामनामानुभावात् ॥

अहाहा प्रभुका नाम कैसा मीठा है ? समस्त जगत्की मधुरताको मधुरता प्रदायक श्रीरामनामही है । समस्त मङ्गलोंका मङ्गल करनेवाला श्रीरामनाम है । वेदरूपी कल्पलताका चित्स्वरूप परम मीठा फल श्रीरामनाम है । और श्रद्धासे या परिहाससे या अवगणना करते हुए भी जो कोई इस प्रभुनामका स्मरण करता है उसको भी भवसागरसे पार कर देनेवाला है । एक कविने क्या ही सुन्दर कहा है—

चेतोऽले: कमलद्वयं श्रुतिपुटीपीयूषपूरद्वयम् ,
वागीशानयनद्वयं घनतमश्चण्डांशुचन्द्रद्वयम् ।
छंदस्सिन्धुमणिद्वयं मुनिमनःकासारहंसद्वयम् ,
मोक्षस्त्री श्रवणोत्पलद्वयमिदं रामेति वर्णद्वयम् ॥

मनरूपी भँवरेको क्रीडा करनेके लिये रा और म ये दो अक्षर सुन्दर विकसित कमल हैं, कानरूप जो दो दोनें हैं उसमे भरनेके लिये रा और म ये दो वर्ण अमृत हैं, शारदाके दो नेत्र राम ये दो अक्षर हैं, महा निबिडतमके विनाशार्थ राम ये वर्ण सूर्य और चन्द्र हैं, वेदरूपी समुद्रके महान् श्रेष्ठ रत्न राम ये दो अक्षर हैं, मुनिजनोंके मन रूपी मान सरोवरमें रमण करनेवाले राम यह वर्ण हंस तद्वत् हैं, और मुक्तिरूप नारीके राम ये दो वर्ण कर्णफूल हैं ।

स्मरणके भी अनेक भेद है । प्रभुका ध्यान एकान्तमे बैठकर करना, नामका स्मरण करना, मन्त्रजप करना, हरदम प्रभु सुमिरण

करना, यह सब सुमिरण भक्तिके अन्तर्गत है। भक्तगणोंकी और मान्यतम महर्षियोंकी यह प्राचीन प्रथा है कि अपने–अपने इष्टदेवके मन्त्रका नियमितरूपेण जप करना. ।

मननात्त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्तितः ।
जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्न संशयः ॥

मनन करनेंसे जो रक्षा करे उसका नाम है मन्त्र। मन्त्रजप करनेसेही सिद्धि देता है इसमें किसी प्रकारकी शङ्का नही है ॥

जप करनेकी विधि

साधकको उचित है कि सदा ब्राह्म मुहूर्तमें उठे, शौचादिक क्रियाएं करके, नदी, तालाव, या कूप पर स्नान करे। पूजाके स्थलको पवित्र करे, स्थलकी पवित्रता भी मन पर बडा असर करती है, पूर्व युगोंके महर्षियोंके आश्रम पर जाते ही महाक्रूर प्राणी भी परम शान्त होजाते थे, शेर और गाय, एक साथ रहतेथे उसका कारण केवल यही था कि उनके आश्रमके प्रत्येक परमाणु शुद्ध सात्विक भावोंसे पूर्ण रहतेथे, और उसीके प्रभावसे हिंसक जीवोंमेंसे भी हिंसक भावोंका सर्वथा नाश होजाता था. अतः यदि हम अपने पूजाके स्थलको भी शुद्ध विचार शुद्ध प्रेम और बाह्य शुद्धताद्वारा शुद्ध न कर लेगें तो अवश्य उस स्थल पर हमारा मन भी अशुद्ध हो जायगा. बाद गीताके मतानुसार "चैलाजिन कुशोत्तर" शुभ आसन बिछावे, पुनः सुन्दर द्वादश उर्ध्वपुण्ड्र धारण करे और विधिवत् सन्ध्या वन्दन करे, गायत्री

जप करे, बाद मन्त्र सङ्कल्प, अङ्गन्यास, करन्यासादिक न्यास करे फिर स्वस्थ चित्त होकर मन्त्रजप करे। जपमाला १०८ मणियोंकी श्रेष्ठ मानी जाती है ५४ मणियोंकी मध्यम और २७ मणियोंकी कनिष्ठ मानी जाती है—यथा—

अष्टोत्तर शतैः पूर्वा पञ्चाशद्भिस्तु मध्यमा।
कनीयसी सप्त विंशत्या परिमाणं विधीयते॥

अतएव अष्टोत्तरशत मणिकावालीही माला रखनी चाहिये—और—

जपान्यकाले मालां तु पूजयित्वा सुगोपयेत्।
गुरुं प्रकाशयेद्विद्वान् मन्त्रं नैव प्रकाशयेत्।

जप पूर्ण होजानेके बाद मालाकी पूजा करके उसे गोमुखीमें गुप्त करके रखदेनी चाहिये, सब मालाओंमें श्री तुलसीजीकी माला सर्वश्रेष्ठ है—यथा—

तुलसी काष्ठ सम्भूते मणिभिः जपमालिका।
सर्व कर्माणि सर्वेषामीप्सितार्थ फलप्रदा॥
तुलसीसम्भवाया तु मोक्षं वितनुतेऽचिरात्॥

"तुलसीकाष्टसे बनी हुई माला, समस्त कर्मोंमें और सब मनुष्योंको इच्छित फल प्रदान करती है, तुलसीकी माला शीघ्र ही मोक्ष देती है" अतः तुलसी मालासे ही सबको मन्त्र जप करना चाहिये। तथा—

अनामा मध्यमाक्रम्य जपं कुर्य्यात्तु मानसम्।
मेरुलंघिते देवि न मन्त्रफलभाग्भवेत्॥

अनामिका और मध्यमाके बीचमें रखकर माला फेरनी चाहिये और मेरूका उल्लंघन करनेसे मन्त्र जपका फल नहीं मिलता है। अतः माला जब पूरी होजाय तब उसे घुमा देना चाहिये सीधे माला फेरते न जाना चाहिये जब सुमेरु आवे तब घुमा लेना चाहिये—

दूसरा जप हाथकी अङ्गुलियोंके चिन्होंसे भी होता है—यथा—

आरभ्यनामिकामध्यात् प्रादक्षिण्येन वै क्रमात्।
तर्जनीमूल पर्य्यन्तं क्रमादशसु पर्वसु॥

"अनामिकाके मध्य बेडेसे लेकर प्रदक्षिणाकी तरह तर्जनीके मूलके बेडे तक दश वार मन्त्र जप होता है" मन्त्रजप अत्यन्त जल्दी जल्दी या धीरे धीरे न करना चाहिये कि एक घडीभर तक मन्त्र बोले ही नहीं ऐसे शून्य बैठे रहे—या झट—झट बोलते ही जाँय?—यथा—

शनैः शनैः सुप्रविष्टं न द्रुतं न विलम्बितम्।
न न्यूनाधिकं वापि जपं कुर्य्याद्दिने दिने॥
सम्पूज्याथजपं कुर्य्याद्यावद्वै प्रहरद्वयम्।
तदूर्ध्वं पूर्ववत् स्नात्वा विशेषेण विधानवित्॥
यावद्दिनावसानं तु भूयः स्नायात्ततो द्विजः।
उपास्य पूर्ववत्संध्यां देवं सम्पूजयते पुनः॥

(नारद पञ्चरात्र)

मन्त्र जप अत्यन्त धीरे या शीघ्र न करना चाहिये परन्तु पूर्णतया मन्त्रका शुद्ध उच्चारण करके करना चाहिये, कभी तो एक माला

और कभी कभी एक एक लाख मन्त्रजप न करना चाहिये परन्तु रोज नियमपूर्वक अमुक संख्याका जप करना चाहिये। प्रातःकाल प्रभुपूजन करके विधिवत् मन्त्रजप करे और मध्याह्न समयमें पुनः स्नान करे, भोजन करे और थोडी देर स्वस्थ होकर तृतीय प्रहरमें पुनः स्नानकर मन्त्रजप पूजन आदिक प्रकारेण प्रभु स्मरण करे। मन्त्रजप तीन प्रकारसे होता है—यथा—

यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टशब्दवदक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयेद् व्यक्तं स जपो वाचकः स्मृतः॥
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ प्रचालयेत्।
किञ्चिच्छब्दं स्वयं विन्द्यादुपांशु स जपः स्मृतः॥
धिया यदक्षर श्रेण्यावर्णाद्वर्णपदात्पदम्।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यासः स उक्तो मानसो जपः॥

ऊंचे स्वरसे और स्पष्ट शब्दोंद्वारा मन्त्रजप किया जाता है और व्यक्त स्वरसे उच्चारण किया जाता है वह वाचक जप है। जो न धीरे और न ऊंचे स्वरसे खुद अपनेही सुन सकें उस तरहसे धीरे धीरे जप किया जाय उसे उपांशु जप कहा जाता है। और जो केवल मन्त्रके शब्द अक्षर और अर्थोंका चिन्त्वन करते हुए मनही मन किया जाता है वह मानस ज़प है। इन तीनों जपमें प्रत्येक जप उत्तरोत्तर अधिक फलदायक है, श्रीमनुजी कहते हैं—

विधियज्ञाज्जप यज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशु स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः॥

विधि यज्ञसे जप यज्ञ दश गुण श्रेष्ठ है उपांशु सौगुण और मानस हजार गुणश्रेष्ठ है। इसको कहकर कितने भाई प्रभुकीर्तनमें भारी बाधा डालते हैं परन्तु यह विधि मन्त्र जपके लिये है भगवन्नाम कीर्तनके लिये नहीं है। भगवन्नामका भी जप तो मानस या उपांशु उत्तम है परन्तु भगवन्नाम कीर्तन जितने ऊंचे स्वरसे हो उतना ही श्रेष्ठ है।

उपांशु और वाचक जप शुद्ध शरीर हो तबही करना चाहिये अस्वस्थ चित्त, या अशुद्ध शरीर हो तब न करना चाहिये।

अपवित्रकरो नग्नो शिरसि प्रावृतोऽपि वा।
प्रलपन्वा जपेद्यावत्तावन्निष्फलमुच्यते॥
वदन् गच्छन् स्वपन्नान्यत्किमपि संस्मरन्।
न क्षुज्जृम्भणाच्चैव विकलीकृत मानसः॥

(नारदपञ्चरात्र)

अपवित्र हाथसे, शरीर नग्न रहनेसे, मस्तकमें कपडा बन्धा रहनेसे, वातचीत करनेसे बोलते हुए, चलते हुए, सोते जाते हैं और जप करनेसे, दूसरी वासनाओंके रहते और नाना प्रकारका चिन्तवन करते हुए, छींकते हुए, जमुंहाई लेते हुए चित्त व्यग्र रहते हुए जो जप किया जाता है वह निष्फल जाता हे। पुनः—त्रैलोक्य मोहनतन्त्रे—

आचम्य प्रयतो भूत्वा जपेदशुचिदर्शने।
मार्जारं कुक्कुटं क्रौंचं श्वानं शूद्रं खरं कपिम्॥

दृष्ट्वाचम्यचरेत्कर्म स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते।
जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रन्थयित्वा शतंजपेत् ॥
प्रमादात्पतितात् हस्ताच्छतमष्टोत्तरं जपेत्।

आचमन करके शुद्ध चित्तसे मन्त्रजप करे, बिलाई, कुकडा, क्रौंच, स्वान, शूद्र, गधा, और बन्दर इनको देखे तो आचमन करले तब जप करे, और छूले तो स्नान करके तब मन्त्रजप करे, जब सूत्र पुराना होजाय तब नवीन सूत्रमें मला गाँथकर (परोकर) एक सौ जप करे तब उसे जप संख्याके काममें ले, प्रमादसे जप करते समय माला हाथसे गिर जावे तो एक माला फेरले, अन्यथा जप निष्फल जाता है।

इस प्रकार मन्त्रजपके अनेक विधान हैं परन्तु वास्तवमें जिस तरह बने जप कभी व्यर्थ नहीं जाता है अन्य मन्त्रोंके लिये इस पूर्ण विधिकी आवश्यकता है परन्तु जगत्पिता परमेश्वरके नाम और मन्त्रके जपके लिये इन विधियोंकी कोई खास जरूरत नही है, वहतो प्रेमका भूखा है। उसका तो किसीभी तरह स्मरण करो सदा सब प्रकारसे कल्याणकारीही है फिर यदि उसी दीनदयालु प्रभुका स्मरण विधिपूर्वक करें तो उसकी महिमाका तो कहनाही क्या?।

मन्त्रजपका तो विधान बताया परन्तु जप करनेलायक सर्व श्रेष्ठ मन्त्र कौनसा है उसके विषयमें वेद स्मृति और पुराणोंके मत भी देखिये श्रीयुधिष्ठिरजी प्रश्न करते हैं—

किं तत्त्वं किं परं जाप्यं किं ध्यानं मुक्तिसाधनम्।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥

प्रश्न—हे महाराज ! मनुष्यको जप करने लायक क्या है ? ध्यान करने लायक क्या है ? हे मुनिसत्तम ! मैं उसे सुनना चाहता हूं कृपा करके वर्णन करें। इसके उत्तरमें भगवान् व्यासदेव कहते हैं—

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञकम्।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमितिवेदविदो विदुः॥

(सनत्कुमार संहिता)

उत्तर—हे युधिष्ठिर ! श्रीरामतारक मन्त्रही जपने योग्य है ब्रह्म हत्यादि पापोंका नाशक है ऐसा वेद विज्ञ लोक कहते हैं। श्रुति कहती है—

" जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासौ अमृतीभूत्वा मोक्षीभवति। अथैनं भारद्वाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं किं तारकं? किंतारकं ? किंतरतीति। स होवाच याज्ञवल्क्यः। तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकं पुनर्माय नमः। तारकत्वात्तारको भवति। तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि तदेवो-पास्यमिति ज्ञेयम्। गर्भ जन्मजरामरणसंसारमहद्भयात् संतार-यतीति तस्मादुच्यते तारकमिति। य एतत्तारकं ब्रह्मणो नित्य-मधीते स पाप्मानं तरति। स ब्रह्महत्यां तरति। स भ्रूणहत्यां तरति। स वीरहत्यां तरति। स सर्वहत्यां तरति। स संसारं तरति। स सर्वं तरति। स विमुक्तात्माश्रितो भवति। समहान् भवति। सोऽमृतत्वं गच्छतीति।

"मरण समयमें भगवान् रूद्र श्री काशीपुरीमें हरेक जीवोंके कानमें तारक ब्रह्म मन्त्र सुनाते हैं जिसको सुनकर जीव अमर होजाते हैं और मोक्ष प्राप्त करलेते हैं।

श्री भारद्वाज ऋषि याज्ञवल्क्यजीसें पूछते हैं—तारक मन्त्र कौन है? तारक किसको कहते हैं? और कौन—कौन तरता है? यह सुनकर याज्ञवल्क्य बोले।

दीर्घ अग्निवीज रा वह विन्दुपूर्वक रां पुनः आयसह और पुनः नमः यह तारकब्रह्म मन्त्र है। इसको तुम तारक मानो, और इसकी उपासना करो, गर्भ, जन्म, जरा, मरण, और संसारके महान् भयसे तारता है अतः इसका नाम तारक पडा, जो इस तारक ब्रह्म श्री राम मन्त्रका निन्य जप करता है वह समस्त पापोंसे तर जाता है, ब्रह्महत्या, बालहत्या, वीरहत्या, और सर्वहत्या, तथा संसारसागरसे तर जाता है। वह विमुक्तात्मा होजाता है, महात्मा हो जाता है, और अमर पदवीको प्राप्त करता है। सामवेदकी पिप्लायन शाखामें भी लिखा है—

"य एवं मन्त्रराजं श्रीरामचन्द्रस्य नित्यमधीते सोऽग्निना पूतो भवति। स वायुना स आदित्येन स सोमेन स ब्रह्मणा स विष्णुना स रुद्रेण पूतो भवति। स सर्वैं र्देवै र्ज्ञातो भवति तेनेतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्त्राणि जप्तानि भवन्ति। प्रणवं नामयुतं कोटि जप्तं भवति। दशपूर्वान् दशापरान् पुनाति। स हि क्रियावान् भवति। समहान् भवतीति।"

जो इस प्रकारसे श्रीराममन्त्रराजका नित्य जप करता है वह अग्निकरके पुनीत होता है। वह वायुकरके, आदित्यसे, चन्द्रसे, ब्रह्मासे, विष्णुसे, रुद्रसे, सर्व देवताओं करके पवित्र होता है। वह सर्व वेदोंका ज्ञाता है। वह वेद पुराण इतिहासादिक और रूद्र मन्त्रके करोड जपसे भी अधिक फल प्राप्त करता है। प्रणव, और प्रभुके अन्य करोडों नामके जपका फल प्राप्त करता है। दश पेढ़ी पूर्वकी और दश पिछली पेढ़ियोंको तारता है। वह महान् होजाता है और कृतार्थ होजाता है"

सुतीक्ष्ण ! मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते।
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः॥
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः।
मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः॥

(अगस्त्य संहिता)

हे सुतीक्ष्ण ! समस्त गाणपत्य, शैव, शाक्त और सौर मन्त्रोंसे वैष्णव मन्त्र श्रेष्ठ है और समस्त वैष्णव मन्त्रोंमें भी श्रीराम मन्त्रराज अधिक फलदाता है और उत्तमसे उत्तम है। वाल्मीकि संहितामें भी लिखा है—

षडक्षरो मन्त्रः सर्वोत्कृष्टः। आशु फलदः। सर्वमेव वाञ्छितमभि पूरयति। मोक्षार्थी मोक्षं लभते।

इत्यादि अनेकानेक प्रमाणोंसे जप करने योग्य और सर्वश्रेष्ठ मन्त्र श्रीराम तारक है ऐसा निर्विवाद सिद्ध होता है।

स्मरण जपके साथ भी होता है और विना जपके भी। जप स्मरण भक्तिके अन्तर्गत है। अत एव यहां थोडासा जपके विषयमें भी लिखा गया है, प्रत्येक भाई और बहनोंको हरदम और हरघडी प्रभु नामका जाप करतेही रहना चाहिये, नाम जप कोई भी कार्यमें व्यवधान नही डालता है। स्त्री—पुरुष, ब्राह्मण—चाण्डाल, गृहस्थ—वैरागी, मूर्ख—विद्वान्, बाल—वृद्ध सब कोई प्रभु नामका जप कर सकते हैं। प्रभु नाम जपमें कुछ भी व्यवधान नहीं है इसको सबकाल, सब अवस्थामें सब जातिके लोग जप सकते हैं। अस्तु—

जपके समय प्रभु स्मरण होता भी है और नहीं भी। अभ्यास वश जीभ उतने ही शब्द बोला करती है। अङ्गुलियां भी ठीक मन्त्र जपके साथही साथ एक—एक मणकेको बदलती जाती है परन्तु मन तो कलकत्तामें जाकर घुडदौड देखा करता है ऐसा भी अनेकोंवार होता है, वह जप स्मरण विनाका माना जाता है, और स्मरण सहित जप उसका नाम है जो जप मन्त्रके शब्दोंका अर्थ विचारते हुए, हृदयमें प्रभुकी दिव्य मधुरताका साक्षात्कार करते हुए, और एकाग्र चित्तसे किया जावे। अवश्य, प्रभु नाम और प्रभुका मन्त्र जपा जाता है वह बिल्कुल निष्फल नहीं जाता, परन्तु जैसा चाहिये वैसा फल तो नहीं मिलता है अतएव साधकको उचित है कि प्रभुके ध्यान सहित मन्त्रजप करे। अब प्रभुके दिव्य ध्यानका थोडासा वर्णन करता हूं आशा है कि पाठक गण उस दिव्य छबिका ध्यान करके अपनेको कृतार्थ करेंगे।

जो भक्त जिस देवका उपासक हो, जिस देवका पवित्र नाम सदा जपता हो, वह स्मरण भी उसी देवका करेगा, और ध्यान भी उसी

देवका धरेगा, मैं श्री रामानन्दीय श्री सम्प्रदायकी परम्परान्तर्गत हूं। मेरा इष्टमन्त्र श्री राममन्त्र है और मेरे इष्टदेव, परात्पर, पूर्णब्रह्म, सर्वोपास्य, श्रीरामचन्द्र प्रभु हैं श्री सम्प्रदायकी प्रवर्तिका श्रीदेवी हैं। **"श्री शब्देन भगवती श्री सीता उच्यते"** इस आप्त वाक्यानुसार श्री सीताजी हैं। मन्त्र परम्परा भी श्रीजीसे ही है। जब हमारी मन्त्रदात्री सीताजी हैं तो हमें प्रियतमके ध्यान बतलानेवाली भी अखिल जगदाधिष्ठात्री, उमा, रमा, और ब्रह्माणीकी कारणभूता सर्वेश्वरी श्री सीताजी ही होनी चाहिये। क्योंकि मन्त्र, मन्त्रार्थ और मन्त्रप्रतिपाद्य देवका ध्यान श्रीगुरुदेवके द्वारा ही प्राप्त होता है। अतएव यहां पर मैं मन्त्रप्रदात्री, करुणासागरी, वात्सल्यरसपूर्णा श्री मिथिलेशकिशोरीजूने निज पिता श्री जनक महाराजसे जो ध्यान वर्णन करके सुनाया है वही ध्यान लिखता हूं। यथा महासुन्दरीतन्त्रे—

इदानीं शृणु रामस्य ध्यानं परमशुत्तमम्।
पठनाच्छ्रवणाद्यस्य नरः साकेतं प्राप्यते॥ १॥

हे पिताजी! इस समय मैं परम मनोहर अत्यन्त आनन्दप्रद मेरे प्राणनाथ प्रभु श्रीरामका परम उत्तम ध्यान आपको सुनाती हूँ जिसका पाठ करनेसे और श्रवण करनेसे भी मनुष्य परम दिव्य परात्पर-श्री साकेत धामकी प्राप्ति कर लेता है तो ध्यान धरनेवाले सज्जनका तो कहना ही क्या?

अयोध्यान्तः पुरे रम्ये सरयूतीरमाश्रिते।
अशोकवनिकामध्ये सरद्रुमलताश्रये॥ २॥

चिन्तामणिमहापीठे लसत्काञ्चनभूतले।
कल्पवृक्षतले रम्ये रत्नगृहनिवेशिते ॥ ३ ॥

सुवर्णवेदिकामध्ये रत्नसिंहासने शुभे।
तन्मध्येच महापद्मं रत्नजालैः सुवेष्टितम् ॥ ४ ॥

तन्मध्ये कर्णिका दिव्या वन्हिबीजविभूषिता।
तन्मध्ये चिन्तयेद्देवमिन्द्रनीलमणिप्रभम् ॥ ५ ॥

श्री अयोध्यापुरीके अन्तःपुरमें, परम रमणीय श्री सरजूतट पर, अशोक वाटिकाके मध्य, कल्पलताओंसे वेष्टित कल्पवृक्षके नीचे, दिव्य और चिन्मय सुवर्णमय भूमिके मध्यमें, परमशुद्ध, मायारहित, चिन्मय, रत्न कौर चिन्तामणिसे रचे हुए शुभ सिंहासन पर, बन्हिबीजयुक्त दिव्य कर्णिका पर प्रभु श्रीराम इन्द्रनीलमणि समान दिव्य प्रभायुक्त विराजमान हैं।

पीताम्बरमहोल्लासं तेजःपुञ्ज घनावृतम्।
द्विभुजं मधुरं स्निग्धं कृपापाङ्गविमोक्षणम् ॥ ६ ॥

वीरासने समासीनं श्रीरामं परमाद्भुतम्।
सव्यजानुनिहस्ताब्जं सांख्यमुद्राविराजितम् ॥ ७ ॥

व्याख्याननिरतो सम्यक् ज्ञानमुद्रोपशोभितम्।
मुकुटोज्वलदिव्याङ्गलसत्कुण्डलमण्डितम् ॥ ८ ॥

नासाग्रे सुमुक्ताढयं लसद्वदनपङ्कजम्।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मूक्ताहारसुकण्ठकम् ॥ ९ ॥

रत्नकङ्कणकेयूरमुद्रिकाभिरलङ्कृतम्।
यज्ञसूत्राभिलषितं कटिसूत्रानुरञ्जितम्॥ १०॥
रणन्मञ्जीरपद्मांघ्रि ब्रह्मेशविष्णुपूजितम्।
कामपूर्णं कामचरं कामास्पदं मनोहरम्॥ ११॥
कन्दर्पकोटिलावण्यं रमणीयं करुणामयं।
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः॥ १२॥
पक्षीन्द्रैर्गरुडाद्यैश्च पन्नगैस्तक्षकादिभिः।
मुनीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च योगीन्द्रैः सनकादिभिः॥ १३॥
विद्याधरसुराधीशैरिन्द्राद्यैरप्सरोगणैः।
विश्वावसुस्तुम्बुराद्यैर्वशिष्ठाद्यैर्द्विजोत्तमैः॥ १४॥
निगमैश्चोपवेदैश्च सर्वविद्यासमन्वितैः।
साकेतनिलये दासैस्तद्रूपबलविक्रमैः॥ १५॥
निजदेहसमुद्भूतैः सुग्रीवादिभिः पार्षदैः।
सेव्यमानं परंदेवं सर्वशक्तिसमन्वितम्॥ १६॥
दिव्यायुधसुसम्पन्नं दिव्याभरणभूषितम्।
स्वप्रकाशं चिदानन्दं चिन्मयानन्दविग्रहम्॥ १७॥
अणिमादिकपद्मादि दिग्गजादि निवेषितम्।
ज्ञानवैराग्यधर्मादि विमलादि सुबृंहितम्॥ १८॥
वाम पार्श्वे धनुर्दिव्यं दक्षिणे तु शरस्तथा।
वामकोणे समासीनां मां रक्षोत्पल धारिणीं॥ १९॥

दक्षिण कोणे तथादेवं लक्ष्मणं धृत छत्रकम् ।
तथा भरत शत्रुघ्नौ ताल वृन्त करावुभौ ॥ २० ॥

अग्रे च हनुमान्वीरो वाचयति स्व पुस्तकम् ।
तत्त्व निरूपण व्याख्यान कर्ता वै रावणानुजः ॥ २१ ॥

वाल्मीकिं च मुनिश्रेष्ठं शौनकं च मुनीश्वरम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं त्रिकालं साधकोत्तमः ॥ २२ ॥

इतिश्री महासुन्दरीतन्त्रे श्रीजनकजा कथित
श्रीरामध्यान प्रकरणम् । *

अर्थ—पीताम्बरधारी, महान् उल्लास स्वरूप, तेजपुञ्जसे वेष्टित, द्विभुज, परममधुर, अपने भक्तोंपर करुणाभरी दृष्टि डालनेवाले, वीरासनासीन, अद्भुत पराक्रमशाली, बांए हाथको बांई जंघांपर रख करके ज्ञानमुद्रायुक्त विराजे हुए, जीवोंके उद्धारार्थ सदुपदेश देते हुए प्रभुका ध्यान धरै । परमोज्वल, किरीट धारण किये, कानोंमें दिव्यरत्नोंके कुण्डल पहिरे, नासिकामें मुक्ताफल पहिरे, सुन्दर दिव्यमुखकमलको विकासित किये, श्रीवत्सचिह्नयुक्त, कौस्तुभमणि और मुक्ताहारको हृदयमें धारण किये, कण्ठमें रत्नोंका कण्ठा पहिरे हुए, रत्न, कङ्कण, केयूर, मुद्रिकादिक आभूषणोंसे विभूषित, प्रभुका ध्यान धरै । ब्रह्मा, शङ्कर, और विष्णु भगवान्द्वारा पूजित समस्त आप्तकाम, स्वतन्त्र, भक्तोंकी कामनाओंके पूर्णकर्ता, मनोहर, कोटिकन्दर्पलावण्यधाम

* यह श्रीरामध्यान प्रकरण श्रीअयोध्यावासी महात्मा श्रीहनुमान् शरणजी "नर्मसखा" द्वारा एक हस्त लिखित प्रतिसे प्राप्त हुआ है

करुणामय, देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, और सिद्धगणोंसे सेवित, गरुडादि पक्षी, तक्षकादि नाग, नारदादि मुनि, सनकादि योगी विद्याधर, देवराज इन्द्रादि, अप्सरागण, विश्वावसु तुम्बुरु आदिक गन्धर्व, वशिष्ठादि द्विजोत्तम, वेद, उपवेद, और सर्व विद्याओंसे समन्वित, नित्य साकेतधामनिवासी सेवकोंसे सेवित, और निजदेहसे उत्पन्न सुग्रीवादिक सखाओंद्वारा पूजित प्रभु श्री रामका ध्यान धरना चाहिये।

परमदेव, सर्वशक्तिसम्पन्न, दिव्यायुधयुक्त, दिव्य भूषणों करके विभूषित, स्वतःप्रकाशित चिदानन्दमय, सच्चिदानन्दविग्रह, अणिमादिक सिद्धि और पद्मादिक निधियोंसे युक्त, दिग्गजोंसे युक्त, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और विमल गुणयुक्त, वामहस्तमें धनुष और दहिने हाथमें बाण धारण किये, वामभागमें आसीन भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये कमलको धारण किये सुझको और दक्षिण भागमें श्री लक्ष्मणजी-को छत्रको धारण किये, दोनों तरफ भरतजी और शत्रुघ्नजीको व्यजन लिये हुए, पवनात्मज श्री हनुमानकी अग्र भागमें निज रची हुई स्तुति सुनाते हैं इस प्रकार प्रभुका ध्यान धरै।

वाल्मीकजी शौनक ऋषि आदिक महर्षि गणोंसे सेवित परात्पर पूर्ण ब्रह्म श्री सीतारामजीका इस प्रकार ध्यान करते हुए उत्तम साधक प्रभुके षड्क्षर मन्त्रराजका जप करै।

इस प्रकार श्री जानकीजीने श्रीजनकजीको ध्यान बतलाया है, समस्त रामोपासकोंको यही ध्यान सर्वदा धरना परम उचित है।

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजीने भी प्रिय शिष्य सुरसुरान्दजीसे ऐसाही ध्यान बतलाया है—यथा—

अथोच्यते महाप्राज्ञ ध्यानं ध्येयस्य चिन्तनम्।
बुधैरात्मरतैर्नित्यं जितप्राणै र्जितेन्द्रियैः॥

प्रभु चरणानुरागी, प्राणायाम परायण, और जितेन्द्रिय विद्वान् प्रभुके तैल धारावदविच्छिन्न स्मरणको ध्यान कहते हैं।

विकचपद्मदलायतवीक्षणं, विधिभवादिमनोहरसुस्मितम्।
जनकजादृगपाङ्गसमीक्षितम्, प्रणतसत्समनुग्रह कारिणम्॥
मुनिमनः सुमधुव्रतचुम्बित स्फुटलसन्मकरन्द पदाम्बुजम्।
बलवदद्भुतदिव्यधनुःशरा महितजानु विलम्बि महाभुजम्॥
परार्ध्यहाराङ्गदचारुनूपुरं सुपद्मकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम्।
लसद्घनश्यामतनुं गुणाकरं कृपार्णवं सद्धृदयाम्बुजासनम्॥
प्रसन्नलावण्यसुभृन्मुखाम्बुजं जगच्छरण्यं पुरुषोत्तमं परम्।
सहानुजं दाशरथिं महोत्सवं स्मरामि रामं सह सीतया सदा॥

द्विभुजस्यैव रामस्य सर्वशक्तेः प्रियोत्तम!
ध्यानमेवं विधातव्यं सदा राम परायणैः॥

विकसित कमलसमान नेत्रवाले, ब्रह्मा विष्णु और शिवादिकों के भी मनको हरण करनेवाले, हास्ययुक्त, श्री जानकीजीके कृपा कटाक्षसे देखे गये प्रणत सत्पुरुषों पर सदा अनुग्रह करनेवाले, प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका सदा स्मरण करता हूं। मुनिजनोंके मनरूपी सुन्दर भ्रमरसे आस्वादित मकरन्दसे सुशोभित कमलसमानचरणवाले,

लोकोत्तर बलशाली, अद्भुत दिव्य धनुषवाणधारी, अत्यन्त पूजनीय, और जानु पर्यन्त प्रलम्बित विशाल भुजवाले, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका मैं सदा स्मरण करता हूं। अमूल्य हार अङ्गद और सुन्दर नूपुरोंवाले सुन्दर कमलके–केशरके समान पीताम्बरधारी, नूतनमेघके समान शोभायमान श्यामसुन्दर शरीरवाले, अनन्तदिव्यमङ्गल गुणोंवाले, कृपासागर और भक्तोंके हृदयकमलमें वास करनेवाले प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका श्रीसीता सहित ध्यान करता हूं। श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी सहित प्रसन्न विकासित तथा लावण्यपूर्ण कमलवत् मुखवाले, सबको शरण देनेवाले, महोत्सवस्वरूप–चक्रवर्ति–श्री दशरथ राजकुमार श्री-रामजीका मैं स्मरण करता हूं। हे प्रियोत्तम ! रामभक्तोंको सर्वदा सर्व शक्तिमान द्विभुज धनुर्धारी भगवान् श्रीरामजीका उपर्युक्त प्रकारसे स्मरण करना चाहिये।

यह जीव गर्भमें प्रत्येक श्वास–श्वास पर प्रभु नाम स्मरण करनेका करार करके आया है अतएव प्रत्येक मनुष्यको रोज २५ हजार प्रभुनामोंका स्मरण करना चाहिये। २५ हजार नाम सुनकर कितनें भाई चौंक पडेगें परन्तु भाईयो ! यदि आप लोग ख्याल करेगें तो यह तो बहुत सहज है ! रोज सत्सङ्गतमें जाकर पांच भाइयोंके साथ मिलकर यदि दो घण्टा स्मरण करेगें तो श्रवण और कीर्तन दोनों मिलकर तुम्हारी नाम जप संख्या शीघ्रही पूरी हो जायगी। और चलते खाते पीते काम करते प्रभुनाम स्मरणका अभ्यास करो, थोडेही दिनमें टेव पड जायगी तो फिर तुम्हारा नाम जप अधिक संख्यामें होने लगेगा.

समर्थ गुरु रामदासजी लिखते हैं कि–चलते–फिरते, खाते, पीते, सोते, बैठते, वैभवमें, सामर्थ्यमें, हर अवस्थामें नाम स्मरण करो। ....मनुष्य कुछ न करे केवल राम राम रटा करे तो इतनेंसेही भगवान् परम रक्षक परमेश्वर प्रसन्न होकर उसको सदा सम्हालता है। नाम स्मरणसे जड और मूढ़ तर जाते हैं अतः परमेश्वरके नामका अखण्ड रीतिसे स्मरण करना चाहिये।

(दासबोध)

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८, १४,)

जो पुरुष अनन्य चित्त होकर सदा–सर्वदा मेरा स्मरण करता है उसको मुझे स्मरण करनेवाले योगीको मैं सुलभ हूं।

जगत्पूज्य महात्मा गान्धीजी श्रीरामनामके विषयमें लिखते हैं "रामनामका चमत्कार सबको प्रतीत नही होता है। क्योंकि वह हृदयसे निकलना चाहिये। कण्ठसे तो तोता भी निकालता है। परन्तु जो मनुष्य भावपूर्वक कण्ठसे रामनाम निकालता रहेगा उसके लिये आशा रखी जा सकती है कि वह सुवर्ण मन्त्र कण्ठके नीचे जाकर हृदयमें प्रवेश करेगा.×

× " यह महात्माजीने " कल्याण "को यरोडामन्दिरसे ता. ४–११–३० को लेख लिखाथा. जो " कल्याण " मासिक पत्रमें वर्ष ५ संख्या ६ पौष मासमें पृष्ठ ८४७ में छपाथा "

सुमिरणकी रीति भक्तराज कबीरजी समझाते हैं—

सुमिरणकी सुधि यों करो, जैसे कामी वाम।
एक पलक ना विसरै, निशिदिन आठोयाम॥
सुमिरणकी सुधि यों करै, ज्यौं सुरभी सुतमाँहि।
कह कबीर चारो चरै, विसरत कबहूं नाहि॥
सुमिरण सों मन लाईये, जैसे पानी मीन।
माण तजै पल वीछुडे यह कबीर कहदीन॥

जब ऐसा स्मरण होगा, तब प्रभु जरासा भी दूर न रहेगा, प्रभु हर समय जीवोंको मिलनेके लिये तैयार है परन्तु जीव ही प्रभुको भुलाये बैठे हैं अतएव—

बहुतगई थोडी रही, नारायण अब चेत।
तब पछतावा क्या करै, जब चिडिया चुग गई खेत॥

इस महात्माके दिव्य वचनको हृदयमें धारण करके लग जाओ प्रभु स्मरणमें, क्योंकि—

राम सुमिरण सब विधिहीको राजरे।
रामको विसारिवौ निषेध शिरताजरे॥

। इति स्मरणभक्ति।

पादसेवनभक्ति

त्वय्यम्बुजाक्षाखिल सत्वधाम्नि समाधिनावेशितचैतसेके ।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥

(श्रीमद्भागवत)

हे प्रभु ! आपके पवित्र चरणारविन्दमें एक चित होकर जो अनन्य प्रेम करते हैं वे आपके चरणरूपी महा दृढ़ नावको प्राप्त करके इस घोरतम संसार सागरको गोखुरके समान तर जाते हैं ।

देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च ।
भजन्मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्याद्यथा वयम् ॥

(भागवत)

देव, राक्षस, मनुष्य, यक्ष और गन्धर्वोंमें सच्चा भाग्यशाली वही है जो भगवान् श्रीमुकुन्दकी चरण सेवा करता है । जो प्रभु सेवा रहित हैं प्रभु चरण सेवामें जिसका भाव नही है वह परम अभागा है । भले, चार दिनके वास्ते पूर्व पुण्यके प्रभावसे घरमे सुख और सम्पत्ति दिखाई दे परन्तु वह थोडे दिनोंके वास्ते । अन्तमें जो पापका घडा फूटे विना रहता ही नही, अधर्मीके घरतो लक्ष्मी ठहरही नहीं सकती है । यथा—

मत्प्राप्तये पद्मभवादयः प्रभो तप्यन्त उग्रंतप ऐन्द्रियेधियः।
ऋते भवत्पादपरायणान्नमां विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥

(श्रीमद्भागवत ५, १८, २२)

हे अजित ! मेरी प्राप्ति करनेके लिये ब्रह्मादिक इन्द्रियविषय भोगानुरागी देवगण अत्यन्त उग्र तप करते हैं परन्तु मैं आपकी अभिन्न हृदया हूं अतः जिसका आपके चरणोंमें प्रेम नहीं है उसके पास नही जाती हूं।

प्रभुके दर्शनार्थ मन्दिरोंमें जाना, दर्शन करना, प्रणाम करना, परिक्रमा करनी, चरणोदक लेना, प्रभुको तुलसी फूल समर्पण करना, नाम कीर्तन करना, घडी घण्टा बजाना, हरिमन्दिरमें झाडू लगाना, प्रभुको थाल धरानेके लिये नाना प्रकारसे प्रेमपूर्वक रसोई बनाना. पूजाके मुख्य मुख्य षोडशोपचारको छोडकर अन्य सब प्रभु सेवाके उपचारोंको पाद-सेवन भक्ति समझना चाहिये। भगवत्पदारविन्दानुरागी भक्तगणतो अपने जीवनकी प्रत्येक घडियाँ प्रभुचरणकी सेवामें ही लगाते हैं। यथा—

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिर मार्जनादिषु श्रुती चकाराच्युतसत्कथोदये ॥
मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रं स्पर्शेङ्ग सङ्गमम्।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसना तदर्पिते ॥
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरोहृषीकेशपदाभिवन्दने।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकगुणाश्रयारतिः।

(श्रीमद्भागवत)

भक्तजन अपने महामायावी मनको प्रभु चरणोंमें, वाणीको प्रभुसङ्कीर्तनमें, हाथोंको प्रभुमन्दिरमार्जनादिक सेवामें, कानोंको प्रभु कथा सुननेमें, आंखोंको प्रभु दर्शनमें, शरीरको प्रभुके प्यारे भक्तोंकी अङ्ग सेवामें, नासिकाको प्रभु समर्पित तुलसी पुष्प सूंघनेंमे, जिह्वाको प्रभु प्रसाद सेवन करनेंमे, पगोंको प्रभुके दिव्य धाम स्वरूप तीर्थाटनमें, मस्तकको श्री भगवच्चरणकमलमे अभिवन्दन करनेंमे, इस प्रकार समस्त इन्द्रियां प्रभु सेवामें लगा देते हैं। और हृदयमें कोई भी लालसा नहीं रखते है। लालसा रहती है तो केवल प्रभुके चरण दासताकी। और प्रभुचरणमें अविचल प्रेम हो उस प्रकारका सतत उपाय करते हैं।

भले, आधुनिक सभ्यताके साधक इस प्रभुसेवाको कुछ न समझें परन्तु शास्त्रीय दृष्टिसे देखा जाय तो प्रभु सेवा कभी निष्फल नही जाती, यथा—पाद्मे सृष्टिखण्डे

यावत्पादान् द्विज श्रेष्ठ गच्छेयुर्हरिमन्दिरे।
तावद्वर्ष सहस्राणि मोदते हरिसन्निधौ ॥

हरि मन्दिरमालक्ष्य यावद्गच्छेच्छनैः शनैः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥

हे द्विज श्रेष्ठ ! प्रभु मन्दिरमें दर्शन करने जाते समय मनुष्य जितना कदम भरता है उतने हजार वर्षतक भगवान्के पास वास करता है। श्रीहरि मन्दिर देखकर प्रेम और पूर्ण श्रद्धाके साथ धीरे धीरे चलता हुआ, जितने पैर चलता है उतने अश्वमेध यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है।

नानुव्रजति यो मोहाद्दुर्गे हरि महोत्सवे।
ज्ञानाग्निदग्ध क्लेशोऽपि पचते नरकेऽशुचौ ॥

(वाराहपुराण)

हे दुर्गे ! मोहके वश होकर जो मनुष्य प्रभुके महोत्सवमें दर्शन करने नहीं जाता है वह ज्ञानद्वारा अपने मरण जन्मरूप क्लेशको जला कर ही क्यों न बैठाहो परन्तु अवश्य महा अपवित्र नरकमें जा गिरता है। स्कान्दे

मृदङ्गवादनयुतं पणवेन समायुतम्।
अर्चनं वासुदेवस्य प्रत्यक्षं मोक्षदं नृणाम् ॥

घडी, घण्टा, मृदङ्ग, पणव और अनेक वाद्य यन्त्रोंद्वारा श्री प्रभु पूजन प्रत्यक्ष मोक्ष प्रद है। स्कान्दे

कांस्यञ्च करतालञ्च वेणुं वादयते तु यः।
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा विष्णुना सह मोदते॥

कांसाजोड, करताल और वेणु आदिक वाद्योंको सुनाकर जो प्रभुकी सेवा करता है वह अन्तमें विष्णुलोकमें जाकर भगवानके साथ आनन्द करता है—।

यस्तु सम्मार्जनं कूर्य्याद्ब्रह्महापि हरेर्गृहे।
सोऽपि याति परं धाम किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥

यस्तु सम्मार्जनं कृत्वा कृष्णवेश्मनि लेपयेत्।
स पाप कलहं त्यक्त्वा याति विष्णोः परं पदम् ॥

यावत्यः पांशुकणिका द्रवीभूता जनेश्वर।
तावज्जन्मार्जितैः पापैः सद्यः एव प्रमुच्यते॥

हे जनेश्वर! जो ब्रह्महत्यारा भी प्रभु मन्दिरमें झाड़ू लगाता है तो वह भी प्रभु धामको प्राप्त होजाता है। जो झाड़ू लगाकर श्री भगवानके मन्दिरमें लींपता है वह भी इस पापी देहको त्यागके प्रभु धाममें वास करता है। प्रभु मन्दिरमें लींपते समय जितने रजकण भींजते हैं उतनें जन्मकृत मनुष्यके पाप तत्काल नाश होजाते हैं। बृहन्नारदीये—

मृदा धातुविकारैर्वा यो देवायतने नृप।
करोति चित्र रूपाणि विष्णुलोके महीयते॥

मृत्तिका, रङ्ग, या धातुविकारद्वारा प्रभु मन्दिरमें जो प्रभुकी प्यारी लीलाओंका, अवतारोंका और प्रभुप्रिय भक्तोंका, पूर्वाचार्य्योंका चित्र बनाता है वह प्रभु लोकमें जाकर आनन्द भोगता है। पाद्मे—

रोपणात्पालनाच्चैव दर्शनात्स्पर्शनादपि।
तुलसी दहते पापं वाङ्मनः कायकर्मजम्॥

तुलसी रोपनेंसे, पालन करनेंसे, और स्पर्श करनेंसे मन, वाणी, और देहकृत समस्त पापोंका विनाश कर देती है।

इस प्रकार शास्त्रोंमें प्रभु कैङ्कर्यकी अपूर्व महिमाका वर्णन है अतएव अब हमें भी प्रापञ्चिक जालोंको तोड फोड कर तर्क—वितर्कोंको वहाकर लगजाना चाहिये प्रभुपाद सेवनमें—

**कृतान्तस्यदूती यदा कर्णमूले समागत्य वक्ति त्रिलोकाः शृणुध्वम्।
परस्त्री परद्रव्यलोभं त्यजध्वं भजध्वं रमानाथ पादारविन्दम्॥**

यमराजाकी दूती हरहमेश सबके कानमें जाकर कहती है कि हे त्रिलोकवासी ! तुम लोग दूसरोंका धन, दूसरोंकी नारी और लोभादिकोंको त्याग कर प्रभु करुणामयके चरण कमलकी सेवामें लग जाओ अन्यथा मैं तैयार हूं समय पर झट आकर तुम्हें घोर नरकमें पटक दूँगी।

मानव देह वारम्वार प्राप्त नही होता है, वेद, पुराण शास्त्र और सन्तोंकी ऐसी मान्यता है, इस लिये समस्त दुर्बुद्धियोंको त्यागकर प्रभु चरण सेवा करो——

इति पादसेवनभक्ति

अर्चनभक्ति

कर पूजन श्रीपरमेश्वरका, जो जाना हो भवपार तुझे।
कर आराधन सीतावरका, जो जाना हो भवपार तुझे॥

है सकल सुकृतका लाभयही, हो प्रेम प्रभुके पूजनमें।
अर्चन कर प्रेम सहित प्रभुका, जो जाना हो भवपार तुझे॥

भगवान भावके ग्राही हैं, वह दीनदयालु क्याही हैं।
कर उनकी सेवा "प्रेमनिधी" जो जाना हो भवपार तुझे॥

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय,
दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्य्याम्॥
अत्युत्तमां गति मसौ लभते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमिच्छेत्॥
(श्रीमद्भा० ८, २२-२३)

ब्रह्माजी कहते हैं—चरणोंमें प्रेम पूर्वक एक अञ्जलि जल और दुर्वादल अर्पण करके पूजा करनेवाले पर भी आप प्रसन्न होजाते हैं। तो हे नाथ! तीनों लोकका राज्य जरासी भी उदासीनता सिवाय परम प्रेम सह समर्पण करके पूजन करनेवाला क्या दुःखका भागी हो सकता है? प्रभु स्वयं कहते हैं—

एवं क्रियायोगपथैः पुमान् वैदिकतान्त्रिकैः ।
अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सितम् ॥
(भा० ११, २७, ४९)

वैदिक, तान्त्रिक किसी भी क्रियासे मेरा प्रेम पूर्वक पूजन करनेंसे मनुष्य समस्त अभीष्टोंको प्राप्त करता है ।

यथाहि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलेवसेचनम् ।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्चहि ॥
(श्रीमद्भा० ८, ५, १९)

जैसे मूलमें पाणी सींचनेंसे झाडकी प्रत्येक डाली और पत्तोंतक पहुंच जाता है उसी तरह भगवान्का पूजन करनेंसे समस्त विश्वकी पूजा होजाती है । जडमें पाणी डाले विना पत्तोंपर पानी डालनेसे कुछ लाभ नही है वैसे प्रभु पूजन विना अन्यसमस्त विश्वकी सेवा कुछ भी फल नही देती—

" हरिपादार्चनरताः प्रयान्ति परमं पदम् । "
मूर्खो वदति विष्णाय विज्ञो वदति विष्णवे ।
द्वयोरपि समं पुण्यं भावग्राही जनार्दनः ॥
विधिज्ञो विधिना विष्णुमभ्यर्च्य यत्फलं लभेत् ।
अविधिज्ञोऽपि विप्रेन्द्र भक्त्याश्चैतत्फलं लभेत् ॥

" एक मूर्ख अर्थात् अक्षर तथा शास्त्रज्ञान शून्य बिचारा "विष्णाय नमः" ऐसे बोलकर प्रेमपूर्वक प्रभु पूजन करता है और दूसरा पण्डित "विष्णवे नमः" कहकर प्रभु पूजन करता है परन्तु भावग्राही भगवान्

भक्तके हृदयका भाव देखकर दानोंको समान फल देते हैं। एक विधिज्ञ पुरुष प्रभुका सविधि पूजन करता है और दूसरा विधि न जाननेवाला भक्त अविधिसे; परन्तु प्रेमपूर्वक प्रभु पूजन करता है, भक्तप्रिय भगवान् दोनों (मूर्ख और विद्वान्, विधिज्ञ और अविधिज्ञ) भक्तोंको समान फल देते हैं सत्शास्त्रोंका सिद्धान्त है कि—

संसारेऽस्मिन् महाघोरे मोहनिद्रासमाकुले।
हरेः पूजां प्रकुर्वन्ति कृतार्थास्ते न संशयः॥
यावन्नायाति मरणं यावन्नायाति वै जरा।
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावदेवार्चयेद्धरिम्॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते।
असारेऽस्मिन् संसारे सारं वै हरिपूजनम्॥

"मोह निद्रासे व्याकुल इस संसारमें जो भगवत्पूजन कर लेते हैं वह सब कृतार्थ हैं। जबतक मरण नहीं आया है, जब तक वृद्धावस्था नहीं हुई है और जबतक इन्द्रियें शिथिल नही हुई हैं तब तक प्रभु पूजन करलो, पीछे क्या करोगे? यह दोनों हाथ उठाकर परम सत्य बात कहता हूँ कि इस संसारमें केवल हरि पूजन मात्र ही सार है।"

हमारे धर्म शास्त्र तो सदा ही प्रभु पूजन करनेका आदेश देते हैं। भले, आज हम पाश्चात्य सभ्यतामें पड कर इसके मूल रहस्यको न समझकर मूर्तिपूजाकी अवहेलना करें। परन्तु तात्विक दृष्टिसे विचार करेंगे तो यह स्पष्टतया विदित हो जायगा कि मूर्तिपूजा परम श्रेय-

स्कर है। हमारे वेद कहते हैं कि—

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत्पुरं न धृष्ण्वर्चत॥

(ऋ० अष्ट० ६ अ० ५, सू० ५८ मं० ८)

"हे मनुष्यो! ईश्वरका पूजन करो, प्रियमेधा सम्बन्धी तुम ईश्वरका पूजन करो, हे पुत्रो! तुम ईश्वरको पूजो, जैसे धर्षणशील पुरुषको पूजते हो उसी प्रकार ईश्वरका पूजन करो"

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम्।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च॥

(मनु० अ० ३ श्लो० १७६)

नित्य स्नान करके पवित्र होकर देव, ऋषि, और पितृ तर्पण करे पश्चात् देव पूजन करे तत्पश्चात् समिदाधान करे। इसी उपदेशको ग्रहण करके मनु महाराजके पौत्र भक्तराज ध्रुवने ईश्वर पूजनकी साधना की थी—यथा—

त्रिरात्रे त्रिरात्रान्ते कपित्थवदराशनः।
आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम्॥
द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने।
तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम्॥

(श्रीमद्भा० स्कं० ४ अ० ८)

भक्तवर ध्रुव तीन—तीन दिन पर कैथा और बैरके फल खाकर प्रभु पूजन करने लगे, इस प्रकार एक मास होजाने पर छ—छ दिन पर केवल झाडसे गिरे हुए सूखे पत्तोंको खाकर प्रभु पूजन करते हुए दूसरा मास व्यतीत किया—पुनः विदुरजीनें भी—

अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः।
प्रत्यङ्ग मुख्याङ्कित मन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥

(श्रीमद्भा० स्कं० ३ अ० १)

"पश्चात् भक्त विदुरने ऋषि और देवताओंके बनाये हुए भगवन्मन्दिरोंको जिन मन्दिरों पर प्रभुके दिव्य आयुधोंके चिह्न अङ्कित हैं ऐसे अनेकों भगवन्मन्दिरोंके दर्शन किये, जिन मन्दिरोंके शिखरस्थ भगवदायुधोंको देखकर भगवान् याद हो जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक धर्मशास्त्र प्रभु पूजनकी महिमा वर्णन करते हैं। भगवान् शङ्कर श्री पार्वतीजीसे श्री रामार्चनकी महिमा वर्णन करते हैं कि—

कामनासिद्धिदां सौम्यां सर्वविघ्नविनाशिनीम् ।
रामार्चां शोभने कृत्वा न कश्चिद्दुभाङ्नरः ॥
रामार्चायाः परो यज्ञो रामार्चायाः परं तपः।
रामार्चायाः परं दानं रामार्चायाः परो जपः ॥
रामार्चायाः परं पुण्यं नास्ति लोकेषु त्रिष्वपि।
रामार्चनं परं सेव्यं बद्धोद्धारकरं परम् ॥

श्रीराम पूजा समस्त सिद्धियोंकी दात्री है, समस्त विघ्न विदारणी है, हे शोभने! श्रीराम पूजा करनेवाला कभी दुःखका भागी नही बनता

है। श्रीराम पूजासे पर कोई यज्ञ नहीं है श्रीराम पूजासे बढ़कर कोई तप नहीं है, श्रीराम पूजासे बढ़ कर कोई दान नहीं है, श्रीराम पूजासे बढ़कर कोई जप नहीं है, तीनों लोकोंमें प्रभु श्रीरामकी पूजासे अधिक फलदायक कोई भी सत्कर्म नहीं है श्रीरामार्चा सबको करनी चाहिये, श्रीराम पूजाही इस घोर संसारके बन्धनसे मुक्त करनेवाली है।

किं होमैः सद्व्रतैस्तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः।
किमन्यैरर्चनैरुग्रैः साधनैश्च प्रयासदैः॥
रामार्चनेन भोदेवि किञ्चिदिष्टं न दुर्लभम्।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्॥
अन्यानि यानि लोकेऽस्मिन् साधनानि बहूनिच।
कदाचिन्नैव सिद्ध्यन्ति देवि रामार्चनं विना॥

(शिवसंहिता भव्योत्तर खण्ड)

अनेक प्रकारके होम, व्रत, तीर्थ, यज्ञ, और उग्र प्रयास देनेवाले अन्य साधनोंसे क्या? हे देवि! श्रीराम पूजनसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जो जो कामना करो वह सब कामनाओंकी पूर्ति श्रीरामार्चासे निश्चय होजाती है। अन्य व्रतादिक उपचार श्रीरामार्चाके विना निष्फल हैं अतः नित्य प्रेम पूर्वक प्रभु पूजा करनी चाहिये श्रीभगवान्‌की पूजा विना मनुष्य कोईभी सिद्धि कदापि प्राप्त नहीं कर सकता है—

आवाहनासनाभ्यां च पाद्यार्घ्याचमनैस्तथा।
स्नानवस्त्रोपवीतैश्च गन्धपुष्पसुधूपकैः॥

दीपनैवेद्यताम्बूलप्रदक्षिणविसर्जनैः ।
षोडशार्चाप्रकारैस्तुस्तमेतैरर्चेत्सदा सुधीः ॥
(वैष्णवमताब्जभास्कर)

विद्वान् पुरुष, आवाहन, आसन पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिण, विसर्जनादि षोडशोपचारसे नित्य प्रभु पूजन करे।

मनुष्य प्रभुकी जितनी श्रद्धा और विश्वासके साथ पूजा करेगा उतनी ही उसको सिद्धि प्राप्त होगी, विना प्रेमके, विना श्रद्धाके प्रभु पूजन यथार्थ फल नहीं देता है परन्तु वह निष्फल भी नहीं होता. **"याद रहे प्रभु पूजन सर्वदा सर्व प्रकारेण अमोघ है।"** हां श्रद्धा और विश्वाससे किया हुआ शीघ्र फल देता है और अश्रद्धासे किया हुआ विलम्बसे।

।इति अर्चनभक्ति।

वन्दनभक्ति

खं वायुमग्निं सलिलं महींच ज्योतींषिसत्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्चभूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भा० ११, २, ४१)

आकाश, वायु, पृथिवी, अग्नि, जल, नक्षत्र, दिशा, वृक्षादिक, नदी, समुद्र, इन सबको प्रभु स्वरूप मानकर जो सदा प्रणाम करता है वह अनन्य भक्त है। प्रभुका प्यारा भक्त तो हमेशाँ प्रभुके सामने जाकर प्रार्थना करता है कि—

जगत्पते श्रीशजगन्निवास प्रभो जगत्कारण रामचन्द्र।
नमो नमः कारुणिकाय तुभ्यं पदाब्जयुग्मे तव भक्तिरस्तु॥

(वैष्णवमताब्जभास्कर)

हे जगत्के नाथ ! हे प्रभो ! हे रामचन्द्र ! हे जगन्निवास ! हे श्री सीतानाथ ! परम कारुणिक आपके चरणकमलोंमे मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं। कृपा करके मुझे अपने युगल चरण कमलमें अविचल प्रेम प्रदान करो।

पतितस्खलितो वार्तः क्षुत्वा वाप्यवशोगृणन्।
हरयेनम इत्युच्चैः मुच्यते घोर किल्विषात्॥

(श्रीमद्भागवत ११, १२-४७)

गिरते—पडते, आर्त होनेपर, छींकते, अथवा अवश होकर भी श्रीहरयेनमः इस प्रकार जो प्रभु वन्दनात्मक शब्द बोलता है वह भी घोर पापोंसे मुक्त होजाता है।

"हृद्वाक् वपुभि र्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्ति पदे सदाय भाक्"

मन, वाणी, वचनसे जो सदा प्रभुको नमस्कार करता है वह सदा मुक्तिका भागीदार होजाता है।

नमस्कुर्वन्ति मनुजाः शालग्रामशिलाग्रतः।
पापानि प्रशमं यान्ति तमः सूर्योदये यथा॥

श्री शालग्रामादिक भगवन्मूर्तियोंकी जो मनुष्य सप्रेम वन्दना करता है उसके समस्त पाप नष्ट होजाते हैं जैसे सूर्यके प्रकाशसे घोर अन्धकार। प्रभुकी वन्दना, साष्टाङ्ग प्रणामद्वारा होती है। यथा—

उरः शिरो दृष्टि मनो वचः पदद्वय प्रराजत्कर युग्म जानुना।
श्रद्धायुतस्तं प्रणमेन्महीतले दीर्घं कृती सत्कृतधीश्च दण्डवत्॥

(**वैष्णवमताब्जभास्कर**)

श्रद्धालु भक्त, और बुद्धिमान् पुरुष, वक्षःस्थल, शिर, दृष्टि, मन, वचन, दोनों पग, दोनों हाथ, और जानु, इन आठ अङ्गोंसे पृथिवी पर दण्डके समान पड कर प्रभुकी वन्दना करता है—

प्रसार्य बाहू चरणौ च साञ्जलिः स्तवैः स्तुवन्यश्च नमेद्रघूत्तमम्।
शतैः क्रतूनां तु सुदुर्लभां गतिं स चाप्नुयाद्राम परायणो जनः॥

जो हाथ, पग, फैलाकर, हाथ जोडकर स्तुति करता हुआ भगवान् रघुकुलोत्तम श्रीरामका भक्त, श्री रामचन्द्रजीके चरणोंमे सप्रेम प्रणाम करता है उस भाग्य भाजन भक्तको सैंकडो यज्ञ करनेके फलसे भी अत्यधिक पुण्य प्राप्त होता है।

एक सन्तने कहा है—

एकौ सीताराम पद करत सप्रेम प्रणाम।
अश्वमेघ शतते अधिक वरणेऊ पुण्य ललाम॥
वरणेउ पुण्य ललाम पाप सब सद्य नशाहीं।
करै यज्ञ फल भोग बहुरि जनमै जगमांही॥
बलदुदास प्रभु पद प्रणाम अघ हरत अनेकौं।
बसत रामके धाम जन्म जग होत न एकौं॥

वन्दना करनेसे नम्रता प्राप्त होती है। जिसके हृदयमें अभिमान होगा वह कदापि नमस्कार नहीं कर सकेगा, नमस्कार करनेंसे दोष माफ होजाते हैं, यदि हम किसीका अपराध करे और फिर पश्चाताप होनें पर उसके पग पडकर प्रार्थना करें तो सहृदय सज्जन प्रचण्ड अपराधोंकी भी अवश्य माफी दे देता है—

मनुष्य हरघडी परम पिता प्रभुका अपराधी है अत: यदि हम रोज प्रभुके चरणकमलोंकी वन्दना करेंगे तो दीन दयालु पिता अवश्य हमारे दोषोंको माफ कर देगा, सन्त, भक्त, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध और अतिथि इनकी चरण वन्दना करना प्रत्येक मानव जातिका सत्कार्य है। नमस्कार करनेसे पाप कटता है, दु:खका भार कम होजाता है।

गुरु, पूज्य और आराध्यदेवकी अपरिमित कृपा प्राप्त होती है समर्थ गुरु रामदासजी लिखते हैं कि—

" नमस्कारसे पतित लोग पावन होजाते हैं, सर्व सन्तोंकी कृपा प्राप्त होती है, शरण मिलती है, जन्ममरण दूर होते हैं, नमस्कार करनेंमे कुछ खर्च नही पडता है, कोई भारी कष्ट नहीं उठाना पडता, और न किसी सामग्रीकीही आवश्यता रहती है, इतने परभी संसारसे छूटनेके लिये इसके समान और कोई उपाय नही है । साधक जब भक्तिभावपूर्वक नमस्कार करता है तब सन्तको उसकी चिन्ता होजाती है और उसको मुक्तिका सहज उपाय बता देते हैं । अत एव हरि, गुरु, सन्त, गौ, और ब्राह्मणादिक पूज्योंको वन्दन करनाही श्रेष्ठ भक्ति है, वन्दना करनेसें सत्पुरुष उसकी दीनता देखकर बडे प्रसन्न होते हैं । और यही छठवीं भक्ति है । "

(दासबोध)

। इति वन्दनभक्ति ।

दास्यभक्ति

दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परं हितम् ।
दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरये व्रजेत् ॥

प्रभुकी दास्यता ही परम धर्म है, दास्यताही परम हितकारक है । दास्यताही मुक्तिकी दाता है । विना प्रभुकी दास्यताके जीव अवश्य नरकगामी होता है "

अहं हरे तव पादैकमूल दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणानां गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ॥

हे हरे ! मैं आपके चरणकमलाश्रित दासोंके दासोंका भी दास बना रहूं, मेरा मन हमेशाँ आपके मुनिमनमोहन रूपका स्मरण करे और मन, कर्म, वचनसे आपकी सेवा करूं ।

वासुदेवस्य ये भक्ताः शान्तास्तद्गत मानसाः ।
तेषां दासस्य दासोऽहं भवेयं जन्मजन्मनि ॥

" भगवान् वासुदेवके भक्तजन, जो परम शान्त और प्रभु प्रेम परायण हैं मैं उनके दासोंका दास जन्मों जन्म बना रहूं ।

कोई भी उपासक विना दास्य भावके अपनी उपासनाकी सिद्धिको प्राप्त नही कर सकते । प्रेममें एक ऐसी अद्भुत शक्ति है कि वह

विना दास बनाये छोडती ही नही है। प्रेमीको प्रेमपात्रका दास वरवश बनना ही पडता है भले, उसकी भावना शृङ्गार, सख्य, या वात्सल्य मय हो परन्तु प्रभु सेवा करना, उसके सेवक बनना यह तो प्रत्येक प्रेमीका स्वाभाविक धर्म है। भक्तजन प्रभुकी अनेक प्रकारसे उपासना करते हैं परन्तु उनसमस्त भावोंमें दास्यभावही सर्वश्रेष्ठ और परम प्रधान है। या ऐसा कहना भी अत्युक्ति न होगी कि दास्यभाव ही सख्य, वात्सल्य, शृङ्गार और शान्त इन भावोंका प्राण है। श्री चैतन्य चरितावलीके प्रसिद्ध लेखक ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी लिखते हैं कि—" दास्य भावके विना न तो सख्य ही हो सकता है न वात्सल्य शान्त तथा मधुर ही! कोई भी भाव क्यों न हो दास्य भाव उन सबमें अव्यक्त रूपसे जरूर छिपा ही रहेगा। दास्यके विना प्रेम होही नहीं सकता। जो स्वयं दास बनना नहीं जानता वह स्वामी कभी बन ही न सकेगा, जिसने स्वयं किसीकी उपासना तथा वन्दना नहीं की है वह उपास्य तथा वन्दनीय हो ही नहीं सकता। तभी तो अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीहरि स्वयं अपने श्री मुखसे कहते हैं " क्रीतोऽहं ते न चार्जुन" हे अर्जुन! भक्तोंने मुझे खरीद लिया है मैं उनका क्रीत दास हूँ।... प्रभु स्वयं चराचर प्राणियोंके स्वामी हैं इस लिये स्वामीपनेके भावको प्रदर्शित करनेके निमित्त वे भक्त तथा ब्राह्मणोंका स्वयं दास होना स्वीकार करते हैं और उनकी पद रजको मस्तक पर चढ़ानेके निमित्त सदा उनके पीछे पीछे घूमा करते हैं "

(चैतन्यचरितावली—खण्ड २)

हमारे धर्म शास्त्र तो कहते हैं कि—यथा—विष्णुपुराणे-—

अर्चयित्वातु गोविन्दं तदीयान्नार्चयेत्तु यः ।
न स भागवतो ज्ञेयो केवलं दाम्भिकः स्मृतः ॥

"जो भगवान्‌की सेवा करता है परन्तु प्रभुके प्यारे तदीय दासोंकी सेवा नही करता वह सच्चा भक्त नही है परन्तु पाखण्डि, धूर्त, दाम्भिक जीव है"

प्रभु घट—घट अणु—परमाणु सर्वत्र समान व्यापक है परन्तु पात्र भेदके कारण विभिन्नता प्रतीत होता है ।

जैसे निशाकरकी किरणैं सर्वत्र समान पडती हैं परन्तु स्थल भेदसें उसमे बहुत परिवर्तन होजाता है, चन्द्र किरण एक पाषाण पर पडती है तो उस पाषाण पर कुछ भी असर नही डाल सकती है और वही चन्द्र किरण एक चन्द्रकान्तमणि पर पडती है तो उसे पिघलाकर पानी कर देती है उसी तरह भगवत्कृपा किरण भी प्रत्येक स्थल पर समान ही पडती है परन्तु पापमय पाषाण हृदयोंपर कुछ भी प्रभाव पडते नहीं मालुम होता और प्रभु प्रिय भक्तों पर अकिञ्चन सेवकों पर अनन्य दासोंपर वही भगवत्कृपा किरण अपना अद्‌भुत चमत्कार बत- लाती है भक्तके हृदयको पिघलाकर पानी बनाकर वहा देती है सर्वेश्वर प्रभुके पाद पङ्कजोंकी ओर । इसी लिये भक्त सर्व श्रेष्ठ माने गये हैं । भक्त भगवच्चरण सेवाद्वारा अपने समस्त तापोंको दूर कर देता है उसके हृदयमें सर्वदा प्रभुपदनखचन्द्रकी शीतल और सुखकर किरणें प्रकाश किया करती है । यथा—

भगवत उरु विक्रमाङ्घ्रि शाखा नखमणि चन्द्रिकया निरस्ते तापे।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्रइवोदितेऽर्क तापः ॥

(श्रीमद्भा० ११, २, ५४)

भगवान्‌की चरण सेवासे परम सुख प्राप्त होनेके कारण, श्रीहरि चरणकमलके दिव्य मणियोंके समान चमकीले नखोंकी सुखद और शीतल किरणोंकी प्रभासे जिसका हार्दिक सन्ताप समूल नष्ट होगया है ऐसे प्रभु चरण सेवकके हृदयमें सांसारिक सुखोंका नाश और दुखोंकी प्राप्ति आदिक ताप कैसे तप सकते हैं। जैसे रात्रिमें चन्द्रोदयके पश्चात् सूर्यका ताप समूल नाश होजाता है वैसे भगवत्कृपा पात्र भावुक भक्तके समस्त सन्तापोंका आत्यन्तिक अभाव होजाता है।

प्रभुचरणोंका दास तो तीनों लोकोंका राज्य प्रभुके चरणोंमें समर्पण करनेमें जरासा भी हिचकता नही है प्रभुका सच्चा दास तो अपना तन, मन, धन, प्राण, सर्वस्व समर्पण करनेमें ही अपना परम सौभाग्य समझता है—यथा—

"स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचताऽऽत्मानश्चाशिषो नो एव तद्दास्य मति गम्भीर वयसः कालस्य मन्वन्तर परिवृत्तं किय ल्लोकत्रयम्।

(श्रीमद्भा० ५, २४)

राजा बलि कहते हैं—स्वयं उपेन्द्र (भगवान)ने मुझसे भिक्षा माँगी तो फिर मैं अपना सर्वस्व क्यों न समर्पण करदूँ? क्योंकि इनकी परम आनन्दमयी गम्भीर प्रभुकी दास्यताके सामने एक मन्वन्तर तक रहनेवाला नश्वर त्रिलोकका राज्य कौन चीज है? और—

"यस्यानुदास्यमेवास्मत् पितामहः किल वव्रे न तु स्व पित्र्यं यदुताकुतोऽभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतो-परते खलु स्वपितरि"

(श्रीमद्भा० ५, २४–२५)

जिनकी दास्यता मेरे पितामह भक्तवर प्रह्लादजीने माँगीथी, उनके पिता हिरण्यककिपुके मरने पर प्रभुका दिया हुआ अकुतोभय राज्यको न लेकर यही वरदान माँगा कि—

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥
आयुः श्रियं विभवमेन्द्रियमाविरञ्च्यात्,
नेच्छामि ते विलुलितानुरु विक्रमेण ॥

हे नाथ ! मैं आयु , श्री, विभव, और इन्द्रिय सुखदाता ब्रह्मलोक तकका ऐश्वर्य्य कुछ भी नही चाहता, जो आपके परम पराक्रम करके हतप्रभ है परन्तु हे प्रभो ! अविवेकी पुरुषोंकी विषयोंमें जैसी अनपायिनी भक्ति होती है उसी प्रकार आपके चरणोंमे अविचल आसक्ति हो बस यही माँगता हूं । सच है प्रभुके प्यारे प्रेमी तो हमेशाँ प्रभुकी दास्यता ही माँगते हैं उन्है तो और कोई भी चीजकी कामना रहती ही नही है । वह तो प्रभुके पतित पावन चरणोंमे सदा यही प्रार्थना करते हैं—

न धरणी धरणीधर वाञ्छिता न रमणी रमणीय गुणाकर !
तव पदाब्जपरागकणः सदा शिरसि मेस्तु मनस्त्वि ति वाञ्छति ॥

नहि सुता न सुतानपि कामये दिविषदां सदनेऽपि न मे मतिः।
स्पृशतु भालमिदं मम केवलं पदपयोज रजः क्षणमेव ते ॥
(भक्तकल्पद्रुमः २६-२७)

हे धरणीधर=समस्त पृथ्वीको अनायास ही धारण करनेवाले प्रभो ! मुझे धरणी नही चाहिये । हे रमणीय गुणोंके आकर प्रभो ! मुझे रमणी=कोई सुन्दर वस्तु भी नहीं चाहिये । मेरा मन तो यही चाहता है कि आपके चरणकमलके परागका एक भी कण मेरे शिर पर सर्वदा विराजमान रहे । हे प्रभो ! मैं पुत्र और पुत्री भी नहीं चाहता हूं । देवताओंके स्वर्गकी भी मुझे इच्छा नही है, मेरी तो इतनी ही इच्छा है कि यह मेरा मस्तक आपके चरण कमलकी धूरिके कणको एक क्षणभर भी स्पर्श कर लिया करे।

यह जीव तो सदा प्रभुका सेवक है ही, जबतक यह जीव अपना स्वरूप भूला हुआ है तबतक उसे सांसारिक आपत्तियाँ और विपत्तियां सताया करती है परन्तु जब यह समझ लेगा कि ओह ! मैं भूला पडा हूं इस संसारमें मेरा कोई भी नही मैं तो सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर प्रभुका दास हूँ । तभी इसका कल्याण है महात्मा लोक तो वारम्वार कहते हैं—

स्वत्वमात्मनि सञ्जातं स्वामित्वं ब्रह्मणि स्थितम् ।
आत्मदास्यं हरेः स्वाम्यं स्वभावं च सदा स्मर ॥

हे जीव ! तू परब्रह्म परात्परतर प्रभुश्रीरामका दास है और भगवान तेरे स्वामी हैं ऐसा सर्वदा स्मरण रख । प्रभुदीनदयालु जब

जीवको अत्यन्त कष्ट भोगते हुए देखते हैं और दया करके इसके उद्धारकी कामना करते है तब इस जीवको ऐसा विशुद्ध स्वामी-सेवक भाव उत्पन्न होता है—जीवके हृदयमें जबतक ये दास्य भाव प्रकट नहीं हुआ है तब तक उसका कदापि कल्याण होनेंवाला नहीं है यथा—

नहि रामात्परं किञ्चित्त्राण कर्तार मीक्षते ।
तदा जीवो भवस्यान्तं कुशलः परिपश्यति ॥
रामो यदा कृपादृष्टिं पातयेत्खलु जन्तुषु ।
तदैव तेषां कल्याणमुभयं प्रतिपद्यते ॥

जीव अपने हृदयमें ऐसा समझ लेता है कि मेरा रक्षक भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको छोडकर तीनों लोकोंमें और कोई नहीं है और रक्षाके लिये प्रभु प्रार्थना करता है तब उसका कल्याण होता है अन्यथा नही । क्योंकि **"रक्षापेक्षामुपेक्षते"** प्रभु यह चाहते हैं कि जीव मुझसे रक्षा करनेके लिये प्रार्थना करे, जीव जब प्रभुका सेवक होकर रक्षाके लिये प्रभु प्रार्थना करता है तब प्रभु उसके ऊपर अपार दया करते हैं और प्रभु कृपा प्राप्त होते ही जीवका शीघ्र उद्धार हो जाता है अतः सर्वदा प्रभु सेवक बनकर प्रभुकी दास्यता स्वीकार करना चाहिये । प्रभुका स्वभाव है—

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥

अपना दास स्मरण कीर्तनरूप थोडासा भी उपकार करता है तो प्रभु उसके ऊपर परम प्रसन्न होजाते हैं और प्रभु इतने भारी

दयालु चेता हैं कि किसी सेवकने प्रभुके हजारों अपराध किये हों परन्तु दीनस्वरसे हार्दिक श्रद्धासे इतना कहदे कि हे रघुनाथ ! मैं आपका हूं आप मेरी रक्षा करो, तो प्रभु उसके समस्त अपराध माफ कर देते हैं। फिर उसके अपराधोंका स्मरण भी नही करते।

श्रुति कहती है कि—

"स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता।
य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय॥

(श्वे० ६, १७)

वह भगवान् सर्वमय हैं, अमृत हैं, ईशन करनेका स्वभाववाले हैं, सर्वगत हैं, इस ब्रह्माण्डके रक्षक हैं, इस जगत्के नित्यनियामक हैं जगत्का नियमन करनेवाला सिवा ईश्वरके और कोई भी नहीं है।

अहं सर्वस्य प्रभवो यतः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विता॥

गीता, १०-८

मैं सबका उत्पादक हूं मुझसे ही सब प्रवृत्त होता है ऐसा मानकर विज्ञ जन मेरी उपासना करते हैं सेवा करते हैं।

इत्यादि प्रमाणोंसे ईश्वरका स्वामित्व और जीवका दासत्व सिद्ध होता है वेदतो कहते हैं कि—

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्म सुहृद प्रियवच्चरति,
तथोन्मुखे त्वयिहिते प्रिय आत्मनि च।

न रमन्त्यहो असदुपासनयान्महतो,
यदनुषया भ्रमन्त्युरु भये कुशरीर भृतः ॥

(श्रीमद्भा० वेदस्तुति)

हे नाथ ! आपके सदृश प्रिय, आत्मीय, और मित्रकी तरह प्यार करनेवाले, हितैषी आत्मवत्प्रिय, ऐसे आपके चरणोंका परित्याग करके संसारमें भ्रमते हैं वे कुशरीरधारी पापी आपकी चरण सेवाहीन पामर प्राणी अवश्य ही महा भयङ्कर भयको प्राप्त होते हैं। शास्त्रोंकातो मत है कि——

दासभूतमिदं सर्वं ब्रह्माद्यं सकलं जगत् ।

ब्रह्मासे लेकरके समस्त सचराचर प्रभुका ही दास है परम सेवा निष्ठ दास्यरसके उत्कट रसिक भक्तवर हनुमानजी कहते हैं कि——

दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
हनूमान् शत्रु सैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ।

अक्लिष्टकर्मा, कोशलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका मैं दास हूँ, मैं शत्रुओंकी सैन्याका नाशक, पवनका पुत्र हूं मेरा नाम हनूमान है ।

जो प्रभुके शरणागत होगया है प्रभुका अनन्य दास बन गया है उनके दर्शनके लिये तो गङ्गादिक तीर्थ सर्वदा तरसते ही रहते हैं यथा–

जाह्नव्यादीनि तीर्थानि पापनिष्कृतिहेतवे ।
कांक्षन्ति हरिदासानां दर्शनं हरिदासवत् ॥

गङ्गादिक महा प्रसिद्ध तीर्थ भी सर्वदा प्रभुके दासोंका शुभ दर्शन चाहते हैं जैसे प्रभु प्रिय सेवक गग प्रभुके दर्शनके लिये आतुर रहते हैं वैसे ही समस्त पवित्र तीर्थ प्रभुके दासोंका दर्शन चाहते हैं।

ईहा यस्य हरे र्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।
अखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्त स उच्यते॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यस्यस्यान्मतिरीदृशी।
दासोऽहं रामभद्रस्य सर्वाँल्लोकान्समुद्धरेत्॥

जिसकी यह इच्छा होती है कि मैं कर्म, मन, वचनसे प्रभुकी दास्यता करूं वह भक्त समस्त अवस्थाओंमें भी जीवन्मुक्त दशाको ही प्राप्त रहते हैं, हजार जन्मके बाद मैं प्रभुका दास बनूंगा ऐसी भी जिसके हृदयमें भावना रहती है और सदा प्रभुसे प्रार्थना करता है कि हे प्रभु! किसी भी जन्ममें मुझे अपना सेवक बना लीजिये तो वह भक्त समस्त लोकोंका उद्धारक बनता है

इस प्रकार प्रत्येक धर्मशास्त्र प्रभुकी दासताका ही प्रतिपादन करते हैं दासताही सर्वश्रेष्ठ है, दास्य रस ही कल्याण कर्ता है दासताही मुक्ति दाता है गोस्वामी तुलसीदासजीका मत है—

सेवक सेव्य भाव विनु भव न तरिय उरगारि।
भजिय राम पद पङ्कज अस सिद्धान्त विचारि॥

बस, दासता विना मुक्ति मिलना ही दुर्लभ है अतएव जो कोई प्रेम और परमेश्वरकी प्राप्ति करना चाहते हैं उन्हे यह आवश्यकीय कर्तव्य है कि हमेशा प्रभुसे प्रार्थना करे कि—

जेहि जेहि योनि कर्मवश भ्रमहीं। तहां तहां ईश देहु यह हम हीं।
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होहु नाथ यहि ओर निवाहू ॥

जब ऐसी प्रार्थना करोगे तो दयालु प्रभु अवश्य ही तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करेगा और देव दुर्लभ निज चरण सेवा प्रदान करेगा और प्रभु सेवाकी नित्य प्राप्तिके समान और कोई लाभ है ही नही—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।

जिसके समान और अधिक लाभ है ही नही, जिसको प्राप्त करके भक्त बडेसे बडे दुखसेभी चलायमान नही होता है ऐसी दिव्य गुणमयी श्रीप्रभु सेवा है, और प्रभुकी दासता है ?

। इति दास्यभक्ति ।

सख्यभक्ति

बहुधा देखा जाता है कि संसारमें प्रत्येक मनुष्यको दो चार मित्र और दो चार शत्रु अवश्य होते हैं। उदासीन और शत्रु ज्यादा होते हैं परन्तु सच्चा प्रेमी तो कोई एकाध ही प्राप्त होता है यदि दो चार मित्र हुए तो वह भी कपटी स्वार्थी ही, परन्तु सच्चा सखा तो केवल एक परमात्मा ही है।

स्वर्गनर्कप्रदेशेऽपि बन्धुरात्मस्य केशवः।

स्वर्ग और नरकादिक दुःख सुखके सर्व समयोंपर सच्चा स्नेही सच्चा प्रेमी और सच्चा सखा प्रभु सर्वदा साथही रहता है। उसी सर्व सुहृद् प्रभुको प्रेमकेद्वारा स्नेह बन्धनमें बाँध लेनाही सख्य भक्ति है। यह तो सबको विदित है कि जिसके साथ मित्रता करनी होती है उसके मतानुसार चलनाभी पडता है। अपने मनको मार कर उसके मनके अनुसार चलना पडता है, मित्रका मन और अपना मन एक कर देना पडता है, मित्रका मन दूसरा और हमारा मन दूसरा होगा तो उस विषम जमीनमे प्रेम कल्पतरुकी जडें जमही न सकेंगी। एक मनही प्रेमका सच्चा स्वरूप है। मित्र—मित्रसे कोई कपट नहीं रखता दोनों मित्र परस्पर अपना सर्वस्व सौंप देते हैं और अन्तःकरण तथा विचार एक कर लेते हैं तभी सख्यताकी जड मजबूत होती है।

नश्वर जगतके प्रेमियोंके प्रेममें फँस कर हमें घर, द्वार, स्त्री, कुटुम्ब ग्राम, और देश छोडकर अनेकों प्रकारकी आफतें झेलनेका समयभी सप्रेम गुजारना पडता है। प्रेमकी प्रचलता हमें सुख दुःखमें क्षोभ नहि होने देती, तो फिर हमें परम सखा परम मित्र परमेश्वरसे स्नेह करनेमें कदाचित् कुछ कष्ट भोगना पडे तो कौन बडी बात है ? अरे उसके लिये तो हमेशाँ अपना मस्तक चढ़ानेके लिये तैयार रहना चाहिये। उसके साथ दृढ़ सख्यता कर लेनी चाहिये। समर्थ गुरु रामदासजी कहते हैं–

" ईश्वर वज्रका पिंजडा है, ईश्वर भक्तका पक्षपाती है, वह पतितोंको तारता है और अनाथोंका सहकारी है, भक्त पर प्रेम करना ईश्वर ही जानता है, अतएव ईश्वर के साथ सख्यता करलेनी चाहिये, उससे अपने सुख दुःखकी बातें कहनी चाहिये।

(दासबोध)

कविवर वियोगी हरि प्रेमयोग नामक ग्रन्थमें लिखते हैं कि– "कौन कह सकता है कि इस सुन्दर सख्य रसमें कितना माधुर्य भरा हुआ है, इस रसको पीते ही भक्त ईश्वरकी ईश्वरताको भूल कर उसके साथ ढिठाईका व्यवहार करने लग जाता है। प्रभुको मित्र कहकर पुकारने लगता है कविवर रवीन्द्रने क्याही अच्छा कहा है–

" नाथ तेरे सङ्गीतका आनन्द रस पीकर मैं अपने आपको भूल जाता हूँ और तुझे जो मेरा स्वामी है मित्र कह कर पुकारने लगता हूँ. "

श्रीलक्ष्मणजी, सुग्रीवजी, विभीषणजी, उद्धवजी, अर्जुन, इत्यादि भक्तगण सख्यरसके उपासक हैं। सख्यरसके उज्वल आदर्श हैं जगमगाते हीरे हैं।

सख्यरसमें एक यहभी विशेषता है हि कि सखा अपने प्राण सखा परमेश्वरके साथ मन माना वर्ताव कर सकता है। प्रथम तो अपना मन माणिक्य प्रभुको सौंप देना पडेगा परन्तु ज्योंही तुम्हारा मन प्रभुके पास जावेगा कि तुरत प्रभुभी तुम्हारे मनके सहित अपना मन तुम्हें सौंप देगा।

ऐसे भक्तको प्रभुकी समानता प्राप्त हो जाती है यदि उस रङ्गीले खेलाडी सखाको सर्वेश्वर भी छेडेगें तो वह चुप चाप बैठा न न रहेगा वह तो तुरत ललकार उठेपा कि—

आजु हौ एक एक करि टारि हौं।
कि हमहीं कि तुमहीं माधव अपुन भरोसे लरिहौं॥
हौं तो पतित सात पीढ़िनको पतिते ह्वै निस्तरि हौं।
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हैं विरद विनु करिहौं॥

सख्यरस बिकासी श्रीरामसखेजीके श्री ठाकुरजी एक समय चित्रकूटमें एक कुआंमे गिर गये थे, प्यारे मित्रके कुआंमे गिरते ही आप विकल हो गये,एकदम मूर्छा आ गई, जब होश आया तब आप कोप करके बोलने लगे कि—

अरे शिकारी निर्दयी करिया नृपति किशोर।
क्यों तरसावत दरश विनु रामसखे चितचोर॥

बस, इतना उच्चारण करते मात्रही श्रीशालग्राम भगवान् तुरत उनके हाथमें आविराजे। धन्यवाद है इस मित्रताको। मस्ताने मित्र सीताप्रसादजीके मुखसे भी ऐसेही वचन निकले थे—

अरे शिकारी निठुर क्यौं सुनत न मेरी वात।
तीर मारि बेपीर क्यों हिय काढ़त कद्रात॥

भक्त अर्जुनने भी प्रभुके साथ अति दृढ़ सख्यता करलीथी, वहतो खाते पीते सोते हर समय प्रभुको कोसता ही रहता था—एक साथ खाने बैठें तो कहे कि वाह! आप बडे लालचू हैं अच्छी अच्छी चीजें तो आपही स्वाहा कर जाते हैं, एक साथ सोवैं तो कहै कि वाह महाराज! पलङ्गके बीचमें तो आपही सोजाते मुझे तो एकदम किनारे पर सोना पडता है। इस प्रकारकी ढ़ीढता न हुई तो सख्यता ही कैसी? अर्जुनको जब प्रभुके वियोगका दुःख हुआ उस समय वह प्रभुकी दयालुता और अपनी ढीठताका स्मरण करके कहता हैं कि—

नर्माण्युदाररुचिरस्मित शोभितानि,
हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति।
संजल्पितानि नरदेव हृदि स्पृशानि,
स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य॥
शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिषु,
ऐक्याद्वयस्यकृतवानिति विप्रलब्ध।
सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं,
सेहे महान्महिमतया न कुमतेरघंमे॥

(श्रीमद्भागवत)

कल्याणप्रद, उदार, परमरुचिर, और परम शोभायुक्त प्रभु जब मुझे हे सखे! हे पार्थ! हे अर्जुन! हे कुरुनन्दन! इत्यादि सम्बोधन देकर बुलातेथे, हाय, आज मनमोहन माधवके उन वचनोंको यादकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। शय्या, भोजन, विहारादिक समयों पर हृदयकी एकताके कारण मैं प्रभुके साथ बडी ढीठतासे व्यवहार करताथा परन्तु दयालु प्रभु मेरी समस्त धृष्टताओंको जैसे मित्र–मित्रकी और पिता पुत्रकी धृष्टताएं माफ करता है वैसे ही माफ कर देते थे हाय, अब मुझे ऐसे दयालु प्रभु कब मिलेंगें?

सांसारिक मित्र तो जरासा विक्षेप होतेही एक दूसरेका गला काटनेको तैयार होजाते हैं परन्तु भक्तवत्सल प्रभु तो मित्रके लाखों दोषोंको माफ करते हैं, उनका स्वभाव ही है कि—

रहत न प्रभु चित चूक कियेकी। करत सुरति शत वार कियेकी।।

प्रभु अपने प्रेमीकी सेंकडो भूलें भुला देते हैं और जरासाभी गुण सर्वदा याद रखते हैं। ऐसे दीनबन्धु प्रभुके साथ जिसने प्रेम न किया मित्रता न बांधी वह सर्वथा अवहेलना का पात्र है, सज्जनों द्वारा तिरस्कृत है, महा जघन्य है, और जिस भाग्यवान् भक्तने प्रभुके साथ मैत्री करली वही सर्वदा सर्वत्र और सर्व प्रकारेण धन्यवादका पात्र है—

। इति सख्यभक्ति ।

आत्मनिवेदनभक्ति

इष्टं दत्तं जपो जप्तं व्रतं यच्चात्मनः प्रियम् ।
दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम् ॥

(श्रीमद्भा० ११, ८-३६)

यज्ञ, दान, जप, व्रत, स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण, सबकुछ परमात्मा के अखिललोकशरणदाता पावनतम चरणोंमे निवेदन कर देनाही आत्म-निवेदन भक्ति है।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतः स्वभावात् ।
करोति यत्तत्सकलं परस्मै नारायणेति समर्पयेत्तत् ॥

कर्म, मन, वचन, इन्द्रिय, बुद्धि और सहजस्वभाव द्वारा जो कुछ करो वह सब जगदीश्वरके पवित्र पदपङ्कजोंमे समर्पण करदो। प्रभु कहते हैं कि—

"ये मेऽर्पयन्ति कर्माणि सुभगे शुभजाः क्रियाः ।
कोटिजन्मार्जितं पापं नित्यं तेषां वहाम्यहम् ॥"
"इष्टं दानं तपो देवि ये मेऽर्पयन्ति वैष्णवाः ।
तेनाहं वै समाहूतो वत्सं दृष्ट्वा तु गौर्यथा ॥"

हे सुभगे! जिसने अपनी समस्त शुभ क्रियायें मुझे अर्पण करदी है उसके करोंडो जन्मोंके पाप मैं नाश कर देता हूं। हे देवि!

जो वैंष्णवभक्त यज्ञ, दान, तपादिक कर्मोंका फल मुझे अर्पण कर देते हैं वे भक्त जब मुझे बुलाते हैं तो मैं वैसा दौड़ा हुआ जाता हूं जैसे बछड़ाको देख करके गौ।

सात्विकेन स्वभावेन कृत्वा कर्म मदर्पणम्।
असंख्यं फलमाप्नोति दीक्षितश्चैव मानवः ॥
निष्कामो वैष्णवो देवि कर्मार्पणं करोति यः।
नित्यं चैव शुचि भूतस्तेनाहं भक्तवत्सलः ॥

परम शुद्ध सात्विक स्वभावसे शुभकर्म करके जो मुझे समर्पण करता है वह वैष्णवजन असंख्य फल प्राप्त करता है। हे देवि! निष्कामभावेन सत्कर्म करके जो मुझे निवेदन करता है वह भक्तको मैं वत्सके समान याद करता हूं और सर्वदा उसकी रक्षा करता हूं।

ये मे कुर्वन्ति कर्माणि ह्यर्पयन्ति त्वकामतः।
तस्माद्भूमावतीर्य्याहं भक्त वश्यो भवामि ह ॥
ते न शोचन्ति भो देवि! यैः कृतं कर्मणोऽर्पणम्।
ते हि भासन्ति सर्वत्र यथा देवो दिवाकरः ॥

जो भक्त शुभ कर्म मुझे अर्पण कर देते हैं उन्ही भक्तोंके लिये मैं वारम्वार अवतार धारण करता हूं और मैं उन भक्तोंके वश हो जाता हूं। हे देवि! जिसने मुझे समस्त शुभ कर्म समर्पण कर दिये हैं वे भाग्यवान् भक्तगण जैसे आकाशमें भगवान् भुवनभास्कर प्रकाशित होते हैं वेसे ही सर्वदा सर्वत्र परम प्रकाशित रहते हैं।

यावज्जन्म कृतं कर्म नार्पयन्ति शुभे मम।
ते विड्भुजां गतिं यान्ति न तरन्ति भवार्णवम्।

जब तक मनुष्य मुझे अपने समस्त कर्म समर्पण नही करता है तबतक वे भवसागरसे पार नही जा सकते।

इसी लिये भक्तगण अपना सर्वस्व प्रभुको निवेदन करदेते हैं, कोई भी चीज अपनी मानते ही नही हैं समस्त ब्रह्माण्ड प्रभुका है, मैं भी प्रभुका हूँ और मेरी चीजेंभी प्रभुकी है ऐसा समझकर सबचीजें प्रभुको निवेदन कर देते हैं। वहतो कहते है—

यत्कृतं यत्करिष्यामि यत्करोमि जनार्दन।
तत्त्वयैव कृतं सर्वं त्वमेव फलभुग्भव॥

हे जनार्दन! मैंने जो कुछ किया है जो कुछ करूंगा आर जो कुछ करता हूं हे नाथ! वह सब आपही करातें है अतः मैं आपकी कराई हुई क्रियाएं आपकोही अर्पण कर देता हूं आपही उसके फल भोक्ता बनो। बस यही आत्मनिवेदन भक्ति है।

। इति आत्मनिवेदनभक्ति।

प्रेमाभक्ति

प्रेमाभक्ति दशवीं है, यह भक्ति सर्वोपर है, जिसके हृदयमें प्रेम है वही मनुष्य जीवित है और जिसके हृदयमें प्रेम नही है वही मनुष्य मृतक समान है। नवधा भक्तिकी पराकाष्ठाको ही प्रेम कहते हैं विना प्रेमके कोई भी भक्ति फलदाता नही हो सकती है। श्रवण, कीर्तन, स्मरणादिक नवधा भक्तिसे प्रेमके विना यथार्थ फल प्राप्त नही हो सकता, नवधा भक्ति प्रथम-प्रथम साधनरूप होती है और वही भक्ति प्रेमपूर्ण होजानेसे साध्यरूप होजाती है। भावके विना सच्चे प्रेमके विना मानव हृदय-हृदय नही है परन्तु वज्रवत्‌क ठोर पाषाण है—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताऽथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥

(भाग० २, ३, २४)

प्रभुके प्रेमास्पद नामोंके श्रवण करनेसे और कीर्तन करनेसे जिसके हृदयमे हर्ष नही होता है, नेत्रोंमे जल नही आता है और रोमावली खडी नही होजाती है वह हृदय हृदय नही है परन्तु पत्थरका सार कठोर वज्र है। जिसके हृदयमें भगवच्चरणार्विन्दके प्रति प्रेम है, जिसका मन रसिकमोहन प्रभुके रङ्गमे रङ्ग गया है। जिसको प्रभुके

नाम और लीलाओंमे प्रेम है उसी भक्तका भूतलमें अवतीर्ण होना सार्थक है। क्योंकि—

प्रेमही सब प्राणियोंके पुण्य पथका द्वार है।
प्रेमसे ही जगत्‌का होता सदा उपकार है॥
जिस हृदयमें प्रेमका उठता नही उद्‌गार है।
व्यक्ति वही निस्सार है वह मनुज भूका भार है॥

प्रेमही सच्चा जीवन है। प्रेम विना जीवन नही है इसी लिये प्रभुके प्रिय भक्त तो सदा यही माँगते हैं कि—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

(श्रीमद्‌भागवत)

हे राजीवलोचन प्रभु ! जैसे पांख रहित पक्षीके शिशु अपनी माताके लिये व्याकुल रहते हैं, जैसे क्षुधा—कातर बालक मातृ स्तन पानके लिये लालायित रहता है, जैसे पतिप्राणा रमणी निज पतिके दर्शनके लिये हरघडी तरसती रहती है, उसी तरह मेरा मन भी आपकी त्रिभुवन—विमोहन छबिके दर्शनार्थ सर्वदा अत्यन्त उत्कण्ठित बना रहे।

प्रेममें एक ऐसा प्रवल आकर्षण है कि वह प्रेमास्पदको आकर्षित किये विना छोडता ही नही है। मेघ आकाशमें न मालूम कितने ऊंचे पर गरजते हैं परन्तु प्रेमी मयूर तो पृथिवी परही घननादको सुन-

कर उन्मत्त होजाता है, और आनन्दमें मग्न होकर नाच उठता है। रजनीकान्त चन्द्रमा आकाशमें रहता है और समुद्र, कुमुद और चकोर पृथिवी पर। परन्तु प्रेमास्पद चन्द्रको जब षोडष कलायुक्त देखते हैं तो समुद्र एकदम आनन्दके मारे उछलने लगता है, कुमुद प्रफुल्लित होजाता है, और चकोरके आनन्दकी तो कुछ अवधिही नही रहती। किसी प्रेमोन्मत्त नायिकासे सखी कहती है कि--

सखि ! साहजिकं प्रेम दूरादपि विराजते।
चकोरी नयनद्वन्द्वमानन्दयति चन्द्रमा॥

हे सखि ! स्वाभाविक प्रेममें कुछ ऐसी ही विलक्षण आकर्षण शक्ति है कि वह कितनी भी दूरी पर रहनेवाले प्रेमास्पदका हृदय खींचे विना रहती ही नही। आकाशमें विराजमान होते हुए भी चन्द्रमा चकोरीके दोनो नेत्रोंको आनन्द देते ही रहते हैं, औरकी तो वात ही क्या परन्तु प्रेमार्णव प्रभुको भी श्रीमान् प्रेमदेवता पकडकर ले आते हैं जो प्रभु सदा स्वतन्त्र है वहभी प्रेमके विवश होजाता है। एक भक्तने क्याही सुन्दर गाया है।

भावका भूखा हूँ मैं और भावही बस सार है।
भावसे मुझको भजे उसका तो बेडा पार है॥
अन्न, धन, औ वस्त्र भूषण कुछ न मुझको चाहिये।
आप हो जाये मेरा बस, पूर्ण यह सत्कार है॥
भाव विन सब कुछ भी देडाले तो मैं लेता नही।
भावसे एक फूलभी देतो मुझे स्वीकार है॥

भावसे सूनीं पुकारें मैं कभी सुनता नही।
भाव पूरित टेरही करती मुझे लाचार है॥

जो मुझीमें भाव रखकर लेते हैं मेरी शरण।
उनके औ मेरे हृदयका एक रहता तार है॥

भाव जिस जनमें नही उसकी मुझे चिन्ता नही।
भाववाले भक्तका भरपूर मुझपर भार है॥

बांध लेते हैं मुझे यों भक्त दृढ़ जञ्जीरमें।
इस लिये इस भूमि पर होता मेरा अवतार है॥

(हरिनारायणगुप्ता)

जिसने भगवत्प्रेमसुधाका जरासाभी पान करलिया है उसकी तो दशाही बडी विचित्र होजाती है भागवतकार लिखते हैं कि-

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो,
भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात्।
औत्कण्ठय वाष्पकलया मुहुरर्द्यमान,
स्तच्चापि चित्तवडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते॥

भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्र-
मानन्दवाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः।
विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाचिताङ्गो,
नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः॥

"भगवानके प्रति प्रेम उत्पन्न होनेसे भक्तका हृदय द्रविभूत होजाता है, समस्त अङ्ग परम आनन्दसे रोमाञ्चित हो उठते हैं वे भक्त अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गद्गद्कण्ठ होकर श्रीभगवान्के चरणकमलोंमे अपने मन मधुपको सदा निमग्न रखते हैं। ऐसे भक्त भगवान्के प्रेममें मस्त बनकर लोकलाज त्यागकर भगवत्प्रेमासवको पीकर मतवाले हो नाचने लगते हैं हँसने लगते हैं गाने तथा रोने लगते हैं। प्रभु वियोगसे दुखित प्रेमी वारम्वार इस प्रकारकी दशामें रहता है, एक भगवत्प्रेमी कहता है—"तुम आते हो पर कब? जब तुम्हारी याद करते—करते मैं रो उठता हूँ। तुम आते हो। पर कब? जब तुम्हारी प्रतीक्षा करते—करते मैं रूठने लगता हूँ। तुम मुस्कराते हो। पर कब? जब तुम्हारे अधरोंकी ओर देखते—देखते मैं निराश हो उठता हू। तुम हँस पडते हो। पर कब? जब तुम्हारे रूखे ओठोंको देखते—देखते मुझे तुम्हारे प्रेममें शङ्का होने लगती है। तुम मीठे बोल बोलते हो। पर कब? जब तरसते—तरसते मैं उनकी आशा छोड देता हूं। तुम प्रेमदृष्टि डालते हो। पर कब? जब राह देखते—देखते मेरी आंखै पथराने लगती है। तुम सुधा सिञ्चन करते हो। पर कब? जब मैं मुरझाने लगता हूं।

बालकृष्ण बलदुआ

प्रेम कोई साधारण चीज नही है बडे योगीजन इस प्रेमदेवके दर्शनार्थ तरसतेही रहते हैं परन्तु उन्हे स्वप्नमेंभी झांकी नही होती है। प्रेम बडा महंगा सोदा है। अपना तन मन प्राण सर्वस्व सौंपदेना पडता है और सर्वदा प्रेमास्पदके परवश रहना पडता है विरहकी आगीमें मोमकी तरह गलना पडता है—

प्रेमियोंका जन्म विरहानलमें जलनेके लिये।
मोमकी बातीसी बनकरके गलनेके लिये ॥

(हरिजन)

मनमें लागी चटपटी कब निरखूँ घनश्याम।
नारायण भूल्यौ सबै खान पान सन्मान॥

जिसके हृदयमें ऐसा प्रेम हुआ है उसको फिर लौकिक और वैदिक कोई भी क्रियाएं बन्धनकारक नही होती उसके सब बन्धन टूट जाते हैं, वह जीवन्मुक्त होजाता है।

तत्तद्भावादि माधुर्य्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शास्त्रं न युक्तिश्च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम् ॥

भक्तोंके दास्य, सख्य, वात्सल्य श्रृङ्गार और शान्त इन रसोंके मधुर माधुर्य्यके श्रवणसे जिसकी बुद्धि शास्त्र और युक्तियोंकी अपेक्षा नही रखती उसको प्रभुके प्रति प्रेम उत्पन्न होने लगा है ऐसा समझना। अर्थात् अनुरागात्मिका भक्तिकी उत्पत्ति होने पर शास्त्र और युक्तियोंकी अपेक्षा नही रहती।

अवश्य भगवत्प्रेम नियमोंसे अतीत है परन्तु वह प्राप्त भी नियम द्वारा ही होता है, नवधा भक्ति, सदाचारादिकका पालन करनेसे जब चित्त अत्यन्त शुद्ध बन जाता है तब ही प्रेम प्राप्त होता है। जो प्रभुके नामसे नियमोंकी अवहेलना करता है और उसका मन स्वतः विषयोंमें विहार करता है वह प्रेमी नही है प्रत्युत दाम्भिक आलसु है। प्रेमीको

नियमोंका बन्धन तोडना नही पडता परन्तु प्रेमकी प्राबल्यता होनेसे उसके नियमबन्धन स्वतः टूटकर जूदे होजाते है।

प्रभुको प्राप्त करना कोई सहज वात नही है। उसको प्राप्त करना कायर लोगोंसे कदापि बन ही नही सकता। नियमोंके पालनसे घबडाकर जो प्रेमके नामसे सन्नियम छोड देते हैं वह अवश्य दण्डके प्राप्त होते हैं। जब उत्कट प्रेम होजाय नियम पालन करनेकी खबरही न रहे स्वतः नियम ही रजा लेकर चलें जाय तो वह वात दूसरी है परन्तु प्रेम तो है नही, जरासी भक्ति करनी शीखे कि प्रथम ही नियमोंको इस्तिफा दे देना सिवा प्रमादताके और पाखण्डके और कुछ नही हे। ऐसे लोग प्रेम—प्रेम कहा करते हैं परन्तु थोडेसे विघ्नोंसे भी व्याकुल हो उठते हैं और प्रेमपथका त्याग कर देते हैं। सच्चा प्रेमी तो लाखों कष्ट सहन करनेको हर समय तैयार रहता है। वह तो ललकार उठता है—

कुन्दनके हम डले हैं जब चाहे तू गलाले।
श्रद्धा न होतो हमको ले आजमाले॥

जैसी तेरी खुशी हो सब नाच तू नचाले।
सब छान वीन करले हर तौर दिल जमाले॥

राजी हैं हम उसीमें जिसमे तेरी रजा हो।
याँ यूँ भी वाहवा है वाँ वूँ भी वाहवा है॥

या दिलसे खुश होकर कर हमसे प्यार प्यारे।
ख्वाह तेग खैंच जालिम टुकडा उडा हमारे॥

जीता रखे तू हमको या धडसे शिर उतारे।
अब "राम" तेरा आशिक कहता है यों पुकारे ॥
राजी हैं हम उसीमें जिसमे तेरी रजा हो।
याँ यूँ भी वाहवा है वाँ वूँ वाहवा है॥

—स्वामी रामतीर्थ

प्रभुपद पङ्कजमे ऐसा प्रेम है ही नही और नियमोंके पालनमें कष्ट प्रतीत होनेंसे प्रेमके नामसे आलस्य और प्रमादको स्थान देनेवाला कभी प्रभुको प्राप्त नही कर सकता है आपही बतलाइये कि—

मन महबूब मिलाय न पलभर खाते दूध दही हैं।
"युगलानन्यशरण" बातोंसे किसने लाल लही है ॥
छठी रातका दूध कढ़े जब चढ़ें इश्कके राहैं।
मढ़ी मसान समान खान औ पान न नेक निराहैं॥
पढ़ी पढ़ाई वात न सूझे छावै आह अथाहैं।
युगलानन्य कढ़ी कातिल किरपान सु शूर सराहैं॥

प्रभुकी मदभरी मनोमोहक नजर, गर्विली कृपाकटाक्ष जिस पाषाण हृदय परभी एकवार पडजाती है उसकी लोकोत्तर विलक्षण दशा होजाती है।

अमिय हलाहल मदभरी, श्याम श्वेत रतनार।
जिये मरे झुकि झुकि परे, जेहि चितवत एकवार॥

(विहारी)

बडा कडा काम है इश्ककी आगमें पैर धरनेका। परन्तु जब तक मनुष्य इस प्रेमकी मीठी और कसकीली पीडाका अनुभव नही करता है तब तक कदापि कल्याण हो ही नही सकता। प्रेमीको तो जिस रोज प्रेमकी पीडासे हृदय व्यथित न होय उसरोज बडाही भयङ्कर कष्ट प्रतीत होता है वह तो त्रैलोक्यकी सम्पत्तिको भी प्रेमकी मधुर पीडाके सामने नगण्य समझता है। भगवत्प्रेमी तो प्रेमकी मधुर मादकतामें मस्त होकर पुकारता है कि—

कितनी प्यारी कितनी मीठी मधुर प्रेमकी पीडा।
मेरा मन अनुभव करता है करके उसमें क्रीडा॥

प्रेमासवकी मादकता जब हो नस—नसमें छाई।
पावन छवि उस प्रियतमकी तब देती है दिखलाई॥

दुनिया कहती है प्रेमीको पागल और दिवाना।
मैं तो मुग्ध हुआ हूं उस पर झूम रहा मस्ताना॥

जो इस अगाध प्रेम सिन्धुमें पडा है वह तो फिर उससे बाहर निकलता ही नही है, प्रेम एक ऐसी बुरी बला है कि उसके पीछे तो लोग धाम, धरणी, धन, रमणी सर्वस्वका त्यागकर देते हैं। महात्मा ललितकिशोरीशरणजीने ठीकही कहा है।

ललितकिशोरी युगल इश्कमें बहुतोंका घर घलते देखा।
डूबा प्रेमसिन्धुका कोई हमने नही उछलते देखा।
दुनियाके परपञ्चोंमें हम मजा नही कुछ पाया है॥

भाई बन्धु पिता माता पति सबसों चित अकुलाया है।
छोड छाड घर गाँव नाँव कुल यही पन्थ मन भाया है॥
ललितकिशोरी आनन्द घनसों अब हठि नेह लगाया हैं॥

जब परमेश्वरके प्रेममें कुछ अद्भुत शक्ति होगी तभी तो महात्मागण प्रभुसे प्रेम करनेके लिये वारम्वार आदेश देते हैं, अतः प्रभु प्रेम प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक मानव देह धारियोंको सतत प्रयासवान् रहना चाहिये—

प्रभुका सच्चा प्रेमी तो प्रियतमके सबन्धवाली कोई भी चीजको देखता है तो वह प्रेममें विभोर होजाता है। महाप्रभु चैतन्यदेव समुद्रकी नीलिमा देखकर प्रभु विरहमें व्याकुल होजाते थे। प्रियतम प्रेममें मतवाला तो चारों तरफ प्रभुको ही देखने लग जाता है, उसको तो समस्त सचराचर जगत् प्रभुमय प्रतीत होने लगता है।

ख्वाबमें जिस वक्तसे तस्वीर पाई आपकी।
हे प्रभो! हरदम तभीसे याद आई आपकी॥
आप हैं किस देश वासी आपका क्या नाम है?
आपसे मिलनेंको मैनें क़सम खाई आपकी॥
सूझता कुछ भी नही है बूझता कुछ भी नही।
इस प्राणके चारों तरफ सूरत समाई आपकी॥
मोर पंखोंकी झलकमें कोकिलाके कण्ठमें।
दीख पडती है मुझे बस, श्यामताई आपकी॥

× × ×

घनश्शाम प्यारे तुम कहां जो प्राणप्रिय हो नयनके।
जोत अब हर जीवमें देती दिखाई आपकी॥

—नयनजी

जब ऐसी दशा प्राप्त होजाय अपने स्वामीको ही समस्त संसारमें देखने लग जाँय तभी हमारा कल्याण हो सकता है। कथा सुनो परन्तु प्रेम न हुआतो वह निरस होजाती है। कीर्तन करो परन्तु प्रेम न हुआ तो वह भी निरस प्रतीत होने लगता है। स्मरण, सख्य, दास्य, पादसेवन, पूजन, आदिक कोई भी भक्ति विना प्रेमके निष्फल है, प्रेम ही सार है, प्रेम ही सबका प्राण है, प्रेम ही जगत्‌का आधार है, और प्रेमके विना सब कुछ असार है। नवधा भक्तिको शक्ति प्रदान करनेवाला केवल विशुद्ध प्रेम ही है।

जप तप साधन और व्रत सकल पुण्य भरपूर।
सदा सर्वदा हैं सभी प्रेम विना के धूर॥
प्रेम जगत्‌में सार है प्रेम जगत आधार।
परम प्रेमसे तुरतही मिलते जगदाधार॥
प्रेम नहीं जिस मनुषको वो है अतिशय क्रूर॥
वाके शिर पर डारिये भरि भरि मूँठी धूर॥

मित्रो! आप सब भी प्रभु प्रेममें मस्त होजाओ, शुद्ध सदाचारका पालन और नवधा भक्तिके अनुष्ठानद्वारा प्रभु कृपा प्राप्त होती है और प्रभु कृपाद्वारा ही परम प्रेमकी प्राप्ति होती है। अतः सर्वेश्वरकी कृपा प्राप्त करनेके लिये परमातुर बनो, और सच्चे प्रेमी बनकर सदा प्रेमदेवकी जय मनावो।

जाको लहि कछु लहनकी आश न चितमें होय।
जयति जगत पावन करण प्रेम वरण यह दोय।

—भारतेन्दु

और निर्भय होकर ललकार उठो कि—

हम आशिक हैं सीतावरके कतल कलेजा करते हैं।
टूक टूक हो जाय जिगरपै किञ्चितभी नहि डरते हैं॥
रोम रोम हो जाँय खडे सब नयनोंसे जल झरते हैं।
रोवैं गावैं प्रेम मग्न हो आह हमेशाँ भरते हैं॥
जगसुखकी नहि चाह हृदयमें दुखसे कभी न डरते हैं।
विरह जनित वडवागीमें नित ठाढ़े ठाढ़े जरते हैं॥
प्रेम पियाला पीकर प्यारे मतवाले बन फिरते हैं।
"प्रेमनिधी" प्रभु नही मिलेंतो छुरी मारके मरते हैं॥

जब तुम्हारा ऐसा उत्कट प्रेम होगा तो क्या प्रभु न मिलेंगें? अरे वहतो दोडे आवेंगे। जल विना मछली, जैसे विकल होती है प्रभु दर्शन विना तुम जब वैसीही परम व्याकुलताका अनुभव करोगे तो प्रभु जराभी दूर नही है। याद रखो—**प्रेम विना प्रभु कदापि मिल नही सकते और उत्कट प्रेमी भक्तसे पराभक्तिके अनुष्ठाता पुरुषसे प्रभु दूर नही रह सकते** उत्कट प्रभु प्रेमकी प्राप्तिही परा भक्ति है और नवधाभक्तिकी प्राणभूता सर्वोच्च भक्ति है।

। इति प्रेमभक्ति ।

शरणागति-उपाय

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

(वाल्मीकि-रामायण)

जो हार्दिक भावसे एकवार भी कह देता है कि "हे नाथ! मैं आपका हूँ" उसे मैं प्राणिमात्रसे अभय कर देता हूं। यह मेरा व्रत है!

परम सरलता सरसता और शीघ्रतासे प्रभुको प्राप्त करनेका उपाय एक मात्र प्रभु प्रपत्ति ही है। शास्त्र, पुराण, वेद और इतिहास मुक्त कण्ठसे यह उद्घोष करते हैं कि जीवका सर्वप्रकारेण कल्याण करनेवाला उपाय केवल प्रभु शरणागति है। प्रपत्ति, शरणागति, आत्मनिवेदन, समर्पण, आदिक सब नाम प्रपत्तिके पर्याय वाचक हैं। गीताशास्त्रका सिद्धान्त है कि—

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥"

(गीता० ७-१४)

यह मेरी त्रिगुणात्मिकी माया महादुस्तर है जो मेरे शरणागत होते हैं वे ही इस घोर मायासे तर जाते हैं।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता० ९-३२)

हे पार्थ! मेरे शरणागत होकर स्त्री, शूद्र, वैश्य, तथा अन्य पाप योनियोंमे उत्पन्न हुए जीव भी परम गतिको प्राप्त करलेते हैं। गीता शास्त्रके पर्यवसानमें प्रभुने कहा है कि—

तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गी० १८, ६२)

हे भारत! तू सर्वभावेन उस जगदाधारके शरण हो जा, उसके प्रसादसे तुझे परम शाश्वत और शान्तिप्रद स्थान प्राप्त हो जायगा—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गी० १८, ६४)

समस्त विधिनिषेधात्मक कर्मोंका त्याग करदे और अनन्यभावेन मेरे शरण होजा, मैं तुझे समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू कोई प्रकार-का सोच मत कर।

सर्व कर्माऽखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।

और—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।

(गी० ७, १९)

इससे मालूम होता है कि गीता शास्त्रका सिद्धान्त श्री प्रभु शरणागति है—जीवको इहलौकिक और पारलौकिक सुख प्रदाता समस्त अघओघ दुःखनाशक उपाय है तो एक भगवत्—शरणागति है। जो पुरुष अपना सर्वस्व प्रभुके चरणोंपर न्यौछावर कर देता है प्रियतम प्रभु भी उसके समस्त योग क्षेमका भार अपने शिर ले लेते हैं। फिर उसे किसी भी प्रकारकी चिन्ता या चाह करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। शरणागत भक्त जैसे जैसे शरणागतिमें दृढ़ होता जाता है वैसे ही वैसे प्रपन्नको प्रपत्ति देविकी सर्वतापहर शीतल कृपा कटाक्षका विशेष अनुभव प्राप्त होता है। उसकी कृपासे प्रपन्न भक्त परमेश्वरकी परम करुणामयी गोदमें बैठनेका परमाधिकारी होजाता है। और परम निर्भय होजाता है। पिताकी गोदमें बैठा हुआ बालक जैसे निडर रहता है वैसे ही परम पिता प्रभुकी गोदमें बैठा हुआ भक्त प्रपन्न सर्वथा निर्भीक होजाता है। प्रभुकी शरणागतिमें कोई प्रकारका प्रत्यवाय रहताही नही है, प्रभु प्रपन्नके समस्त प्रतिबन्धकोंको प्रभुने प्रथमसेही विनाश कर दिये हैं। प्रभु प्रपत्तिका आश्रय सब देश, सब कांल, सब अवस्थाओंमें सब भूतमात्र ग्रहण कर सकते हैं।

न जाति भेदं न कुलं न लिङ्गं न गुण क्रियाम्।
न देश कालो नावस्थां योगो ह्ययमपेक्षते॥
ब्रह्म क्षत्र विशः शूद्रा स्त्रिया वा अन्त्यजास्तथा।
सर्वएव मपद्येरन् सर्व धातारमच्युतम्॥

यह परम समर्थ शरणागतियोग किसी जाति कुल, लिङ्ग, गुण, क्रिया, देश, काल, या अवस्थाकी अपेक्षा नही रखता है परन्तु ब्राह्मण

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, चाण्डाल, और सब प्राणी मात्र जगत्कर्ता प्रभुकी शरणागति स्वीकार कर सकते हैं।

भागवतमें श्री शुकदेवजी कहते हैं कि—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसाः आभीरकङ्कायवनाः खशादयः।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

"किरात, हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, खश, और यवनादि अन्य चाण्डाल, और महा पापात्मा भी जिस प्रभुके चरण का आश्रय ग्रहण करके, शरणागतहो करके परम शुद्ध होजाते हैं उस प्रभुको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं।"

अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाय यदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं किंवा दयालुं शरणं व्रजेम॥

(भाग० ३, २, २३)

"महाराक्षसी, दुष्टा पूतना, स्तनमें महा हलाहल कालकूट लगाकर आई हुई, दुग्धके व्याजसे महा प्रचण्ड विष पिलाकर प्रभुका विनाश करनेकी इच्छासे आनेवालीको भी दयालु प्रभुने वह गति प्रदानकी जो गति पुत्र वत्सला माँको मिलनी चाहिये ऐसे दीन दयालु प्रभुको छोड कर मैं किसके शरण जाऊँ?"

जो प्रभु ऐसे दयासागर हैं उनके शरणागत होनेके लिये कौन हतभागी कामना न करेगा? विज्ञ पुरुष तो अपना सर्वस्व प्रभुके पाद पद्मोंमे ही समर्पण कर देते हैं, यदि भगवान्के वास्ते सारा संसार त्यागना पडे, अपना मस्तक कुर्बान करना पडे तब तो वह अपनेको कृतार्थ मानते हैं।

जब कभी भारी गभराहट उत्पन्न हो, विघ्न, और सङ्कट चारों तरफसे आक्रमण करे, दुःखकी भयङ्करता घोर पीडा देने लगे तब प्रत्येक सज्जन पुरुषको उचित है कि सर्वेश्वर भगवानसे शरण याचना करे, समस्त चिन्ताओंका परित्यागकर चिन्ताहर प्रभुके शरण होजाय क्योंकि भगवत्–शरणागति "**आर्तानां आशु फलदा**" आर्त भक्तोंको शीघ्र फल देनेवाली है। और जो पुरुष मोक्षकी कामना रखता है निष्कामभावेन ईश्वरकी प्राप्ति करना चाहता है वह भी सर्वेश्वरके ही शरण होजाय। शास्त्रोंका सिद्धान्त है कि—

प्राप्तुमिच्छन् परां सिद्धिं जनः सर्वोऽप्यकिञ्चनः।
श्रद्धया परया युक्तो हरिः शरणमाश्रयेत्॥
(भारद्वाज संहिता)

"जो कोई परम अकिञ्चन होकर परमसिद्धि प्रभुधामकी प्राप्तिकी कामना रखता है वह भी परम श्रद्धा और विश्वासयुक्त होकर परात्पर प्रभुके शरणागत होजाय। श्रुति कहती है कि—

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

"जिस परमात्माने ब्रह्माजीको प्रगट करके वेद प्रदान किये, उसी आत्मा और बुद्धिके प्रकाश करनेवाले प्रभुके मैं मोक्षकी इच्छासे शरण होता हूं"

"अन्यायादपि चैकस्य सम्यङ्न्यस्तात्मनो हरौ।
सर्व एव प्रमुच्येरन् नराः सर्वे परे तथा–॥

बालमूकजडान्धाश्च पङ्गवो बधिरास्तथा ।
सदाचार्य्येण सन्दिष्टाः प्राप्नुवन्ति सदागतिम् ॥"

श्रद्धा या अश्रद्धासे भी जो कोई प्रभुके शरणागत होजाते हैं वे सब मनुष्य इस घोर भवबन्धनसे मुक्त होजाते हैं। बालक, मुङ्गा, जड, अन्ध, पङ्गु, बहिरा और भी अनेक अशक्त जीव श्रीगुरुदेवद्वारा प्रभुकी शरणागति ग्रहण करके परम गतिकी प्राप्ति करलेते हैं। "**परम पुरुषस्य वशीकरणं प्रपदेन**" प्रभुको वश करनेके लिये शरणागति वशीकरण मन्त्र है। श्रुति भगवति उपदेश करती है।

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

(कठ० १, २, १७)

"प्रभुका आश्रयही श्रेष्ट है प्रभुका आश्रयही पर है प्रभुकी शरणागतिको यथार्थ समझकर मनुष्य प्रभुके दिव्यधामके आनन्दका भोक्ता बनता है" पुनः—

योऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य औषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमोनमः ।

(श्वे० २, १७)

जो अग्नि, जल, समस्तविश्व, भुवन, औषधि और वनस्पति आदिकमें प्रविष्ट है उस प्रभुके शरण होकर मैं नमस्कार करता हूँ। योग सूत्रकार महर्षि पातञ्जलि लिखते हैं कि—

"ईश्वरप्रणिधानाद्वा"

(यो० सू० १, २३)

परमार्थकी प्राप्ति ईश्वरकी शरण जानेंसे होती है।

येदारागारपुत्राप्तान्प्राणान्वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणंयाताः कथंताँस्त्यक्तुमुत्सहे॥

"जो पुरुष स्त्री, गृह, पुत्र, धन, प्राण, सबका त्यागकर मेरे शरण आते हैं क्या, उसका मैं त्याग कर सकता हूँ? कदापि नहीं।

भक्त विभीषणका ज्वलंत उदाहरण है कि जब भक्तराज विभीषणने रामशत्रु=रावणको अनेक तरह समझाया, श्रीरामके शरण जानेके लिये कहा परन्तु दुष्टात्मा रावण नीतिज्ञ भ्राता विभीषणके वाक्योंकी अवहेलना करता है और विभीषणका सभाके मध्यमें तिरस्कार करता है उस समय विभीषणजी—

'तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता।
आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चैमां स राक्षसाम्॥
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना।'

"मैनें आपको ज्येष्ठ भ्राता समझकर प्रेमके कारण आपके हित करनेवाली जो कुछ वातें कहीं उसको सुनकर आपको क्षोभ होता है और मुझको अपने सुखका बाधक समझते हो तो हे भाई! लो, मैं तो अब जाता हूं, अब आप मेरे विना इस पुरीके सहित सर्व प्रकारेण सुख भोगो, आपका कल्याण हो,

'इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः ।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥'

'इस प्रकार कठोर वाक्य कह कर रावणका भाई विभीषण जिस जगह पर श्रीलक्ष्मणजीके सहित श्रीराम विरामान थे उस जगह पर मुहूर्त भरमें अतिशीघ्रतासे आते हैं, और—

तमात्मपञ्चमं दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिपः ।
वानरैः सह दुर्धर्षश्चिन्तयामास बुद्धिमान् ॥

आकाशस्थित चार मन्त्रियोंके सहित राक्षसराज रावणके भाईको देखकर महापराक्रमी वानरेन्द्र सुग्रीव वानरोंके सहित विचार करने लगे। सब वानरोंने उनके संग्रह करनेंमे विरोध किया, परन्तु विभीषणजीभी बडे बुद्धिमान् थे उन्होंने मनमें अनुमान कियाकि यदि मैं धीरेसे किसीको वात कहूंगा तो रजवाडाओंमे पोल बहुत होती है अतः शायद ये लोग मेरी प्रार्थना प्रभुको सुनावें या नहीं अतः—

"उवाच स महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान् ।
सुग्रीवं तांश्च सम्प्रेक्ष्य सर्वान्वानरपुङ्गवान् ॥
रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः ।
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इतिश्रुतः ॥
निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने ।
सर्व लोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥"

"महान् बुद्धिमान् विभीषण ऊंचे स्वरसे सुग्रीव तथा अन्य सेनाधीशोंको और वानर श्रेष्ठोंको सम्बोधन करके बोले कि—महा उद्धत

दुराचरणी लोकप्रसिद्ध राक्षसेश्वर रावणका मैं छोटा भाई हूं, मेरा नाम विभीषण है, अशेषलोकशरण्य प्रभु श्रीरामभद्रजीसे जाकर ये प्रार्थना कहें कि वह आपके शरण आया है।

यह वाक्य कोई साधारण तो था नही, इसमें अनन्त भाव भरपूर हैं, और प्रभुको अपने स्वभावकी यादी दिलवाने वाला है। क्यों कि इसमें कहा है कि "**सर्वलोकशरण्याय राघवाय**" अखिल लोकके शरणदाता, जयन्तादिक पापात्माओके भी रक्षक, गीधादिक नीच योनि-योंके उत्पन्न होनेवाले परभी पितृभाव रखनेवाले, बालीके त्राससे तप्त सुग्रीवकी रक्षा करनेवाले आप हैं और आप राघव हैं जिस कुलके अबोध बालकके हृदयमें भी—

किन्त्वर्थिनार्थितदान शीक्षा, कृतव्रतश्लाघ्यमिदं कुलं नः।

हमारा कुल वह है जो अर्थी चाहै कैसाभी प्रयोजन लेकर आवे उसके मनोरथकी पूर्ति कर देता है, इस प्रकारकी भावनायें भरी हुई है तो फिर आपतो उस कुलके रत्नभूत हो सर्व श्रेष्ठ हो नायक हो तो मुझे अवश्य स्वीकार करें इत्यादि अनेक रहस्यमय इस वाक्यको वानरोंके सहित सुग्रीव और लक्ष्मणजीके सहित श्रीराघवने सुना—कपिराज सुग्रीवने प्रेमके आधिक्यसे अनिष्टाशङ्का करके हाथजोड कर प्रभुसे कहाकि—

"आपको राजनीतिके अनुसार समय समय पर सलाह करना, गुप्तचर भेजना, सेनाका प्रबन्ध रखना, इत्यादि कार्योंसे सावधान रहनेकी पूरी आवश्यकता है। उसीमें हमारा और आपका हित है।

राक्षस बडे मायावी होते हैं। अनेक रूप धारणकर भोले मनुष्योंको धोखा देते हैं और समयपर पूरी आघात पहुंचाते हैं। सम्भव है कि यह रावणका भेजा हुआ हो, या खुद रावण ही भाईका वेश लेकर आया हो, मेरी रायसे इसको नही रखना चाहिये, यह अपना भेद लेकर आगे अपने पर आघात करे, दगा दे तो कुछ आश्चर्यकी वात नही है अतः शत्रुपक्ष वालेसे किसी भी प्रकारका सम्पर्क न रक्खें।

इस वाक्यको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने सब वानरोंसे कहा कि–कपिराज सुग्रीवने जो कुछ कहा वह " **भवद्भिरपि च श्रुतम्** " आप लोगोंने भी सुना अतः अब आप सबका क्या मत है?

इस प्रभु वाक्यको सुनकर सब सचिव अपना-अपना मत दर्शाने लगे–पहले युवराज अङ्गद बोले कि—

यदि इसमे गुण अधिक हैं तो भले ही वह शत्रु पक्षका क्यों न हों परन्तु उसे स्वीकार करलें और यदि दोष युक्त हो तो उसका सर्वथा त्याग कर दें।

शरभका मत हुआ कि–प्रथम उसके पास गुप्तचर भेज कर परीक्षा करनी चाहिये फिर उसके गुण दोष देखकर संग्रह करना उपयुक्त है।

जाम्बवानने कहा कि–जिससे हमारा दृढ़ वैर बँधा है जो अखिल लोकमें महापापी माना जाता है उस दुष्टात्मा रावणके पाससे आये हुए अनवसर पर प्राप्तको संग्रह करना सर्वथा शङ्कास्पद है।

मैन्दने कहा कि–यह रावणका भाई है अतः मेरी रायसे शान्ति

पूर्वक इससे वात चित कर लेनी चाहिये। वात चितसे हार्दिक भाव विदित होजायगा, यदि दुष्ट भावना हो तो त्याग करना और निर्दोष हो तो संग्रह करना परमोचित है।

श्रीअञ्जनीकुमारहनुमानजीने परम नम्र वाक्य सुनाकर दीनता सह प्रत्येक मतकी समालोचना करते हुए कहा कि—

इस आये हुए व्यक्तिके स्वीकार करनेमें इस समय गुणदोषका अनुमान करनेका अवकाश नही है। क्योंकि जबतक जिसको कोई कार्यमें नियुक्त नही किया जाय तबतक उसकी परीक्षा हो नही सकती और इसको सहसा कोई कार्य पर नियुक्त करना उचित प्रतीत नही होता है। अतएव गुणदोषकी परीक्षा करके संग्रह करना यहां पर सर्वथा ठीक नहीं मालुम होता। आगे आप सर्वज्ञ हैं। आपसे बढ़कर और कौन नीति तत्वका ज्ञाता होगा?

इस प्रकार सबने अपने अपने विभीन्न मत प्रदर्शित किये, प्रभु सबके मतको ध्यान पूर्वक सुनते गये परन्तु आपको किसीका मत गले न उतरा, क्योंकि आपको विभीषणके "**सर्वलोकशरण्याय राघवाय**" इन वाक्योंका पूरा ख्याल है अतएव आप परम मधुरतासे किसीको बुरा भी न लगे और अपना मत भी सबके हृदयङ्गम होजाय उस प्रकारकी वाक्चातुरीसे बोले कि—

अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च।
न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः॥

"हे सचिवो! शास्त्रोंको विना पढ़े और विना वृद्धोंकी सेवा किये कोई ऐसी सुन्दर सलाह नही दे सकता है जैसी सलाह कपिराज सुग्रीवने दी है।" यों प्रशंसा करके सबकी बुद्धिको धन्यवाद दिया। परन्तु मन्त्रियोंकी सलाहें शरणागत भक्तकी हितकारिणी न होनेंसे प्रभु उनकी उक्तियोंको अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करते हुए काटकर कहते हैं कि—

ममापि च विवक्षास्ति काचित्प्रति विभीषणम्।

विभीषणके विषयमे बोलनेकी कुछ मुझे भी इच्छा है। अर्थात् आप सबने तो अपनी राय सुना दी परन्तु इस विषयमें जो मेरी सम्मति है **"तत्सर्वं भवद्भिःश्रोतुमिच्छामि"** वह मैं तुम लोगोंसे सुनाना चाहता हूं।

प्रभुने विभीषणको प्रथमसेंही हार्दिकभावेन स्वीकृत कर लिया है परन्तु नीति और लोक मर्यादाके रक्षणार्थ, और मन्त्रियोंको मान्य प्रदानार्थ प्रभुने सबसे सलाह ली थी, परन्तु सबकी सलाह प्रभुके मनसे प्रतिकूल आई, प्रभुतो सर्वलोक शरण्य हैं विभीषणने प्रथमही विशेषण दे रक्खा है कि **सर्वलोक शरण्याय** अतः प्रभुने उत्तर=प्रत्युत्तर खण्डन=मण्डनमे ज्यादा समय न विताकर मेरा क्या कर्तव्य है? उसको सम्मत्यर्थ सबके सामने उपस्थित करते हैं, सुग्रीवादिकोंने इस वाक्यकी अनेक तरहसे समालोचना की है और इसमें कुछ परिवर्तन करना चाहा है परन्तु प्रभुने पूर्ण चातुर्य्यसे इस वाक्यकी रक्षा की है। देखिये, प्रभुको शरणागत पर कितना प्यार है प्रभु शरणागत भक्तके समस्त विघ्नोंको टाल कर कैसे रक्षा करते हैं वह सब भाव इसीमे भरपूर हैं।

प्रभु अपनी प्रतिज्ञा पूर्वक सम्मति सुनाते हैं कि—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

जो एकवार भी "हे प्रभु मैं आपका हूँ" ऐसा हार्दिक भावसे कहता है उसको प्राणिमात्रसे अभय कर देता हूं यह मेरी प्रतिज्ञा है। शरणागतका एक वार मेरे पास आनाहीपर्याप्त है, परन्तु विभीषण तो शरणागत आया है उसने याचना भी की है और मैं अब अधिक विलम्ब कर रहा हूँ यह मेरे माथे विभीषणका भारी एहसान हो रहा है। मुझे अब अधिक समय विताना और सर्वसम्मत्यनुसार कार्य करना अभीष्ट नहीं है परन्तु मैं तो अपनी प्रतिज्ञाके रक्षणार्थ ही उद्यत हूँ मेरा नाम सत्यसन्ध है और मेरी प्रतिज्ञा असत्य होगई तो मुझे भारी कलङ्कका पात्र होना पडेगा. अतः

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम्॥

मित्र भावसे प्राप्त शरणागत भक्त विभीषणका मैं कदापि त्याग नही कर सकता हूं। यदि उसका कुछ दोष भी हो तो भी उसका संग्रह करना विज्ञ पुरुषों करके गर्हित नही है।

निषादमें कौनसे गुण थे? गीधमे कौनसे गुण थे? परन्तु उन्हे स्वीकृत करनेमें मुझे कुछ भी शङ्का न हुई तो यहां शङ्का कौन वात की है? यदि कहो कि यह अनवसरमें प्राप्त है तो हे सुग्रीव! मैं इस

बातकी कोई चिन्ता नही रखता, मुझे चिन्ता या फिकर है तो मेरी प्रतिज्ञाकी है अतः इसका तो त्याग करनेके लिये मैं सर्वथा असमर्थ हूं।

जो मित्र भावसे मुझे "सम्प्राप्तम्" सौभाग्यसे प्राप्त हुआ है उसको "**न त्यजेयं**, "**त्यक्तुं न शक्नोमि**" त्यागकरनेका मुझमें सामर्थ्य नही है मैं सर्व शक्तिसम्पन्न हूँ परन्तु जिस समय किसीके मुखसे मैं ऐसा सुन लेता हूं कि "हे प्रभु! मैं तेरे शरण हूं" फिर उसका त्याग करनेकी शक्ति मुझमें नहीं रह जाती, उस समय मेरी तमाम शक्तियाँ शरणागत वत्सलताकी चरणदासी बन जाती हैं अतः इस विभीषणको मैं नही त्याग सकता। "**दोषो यद्यपि तस्य स्यात्** भले उसका दोषभी हो परन्तु मैं तो उसका संग्रह करूंगा ही। प्रेम एक ऐसी चीज है कि वह प्रेमास्पदके दोषोंको देखनेही नहीं देती। प्रेमीकी दी हुई सामान्य चीज भी अमूल्य हो जाती है, और उसके भीतर रहे हुए लाखों दोषभी प्रेमके सामने छिपे रहते हैं अतः परम प्रेमी विभीषणके दोषों पर प्रभुने जराभी शङ्का न की। आप तो सर्वज्ञ हैं मनमे समझते ही हैं कि इसके हृदयमें दोषबुद्धि नही है परन्तु सुग्रीवादिक इसको न मानें तो कहते हैं कि "**दोषोयद्यपि तस्यस्यात्**" भले उसमें दोषही हो परन्तु उसको स्वीकार करना सर्वथा उचित है "**सतामेतदगर्हितम्**" सज्जनोंने विचारशीलोंने इसको गर्हित नहीं बताया है।

कितनी दयालुता भरी पडी है? क्या ऐसा शरण्य और किसी जगह पाया गया है? प्रभु शरणागत पर कितना प्रेम रखते हैं?

इसी लिये तो वेद शास्त्रादि उनके गुणोंका गान करते हैं ऐसा गुण-निधान नायक उन्हें अन्यत्र मिले कहांसे—

स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां,
कवीनां को दोषः स तु गुणगणानामवगुणः ॥

यदि कोई हमें ऐसा कहे कि तुम कवि लोक सिवा रामचन्द्रजी-के गुणोंको दूसरोंके गुणोंका वर्णन क्यों नही करते हो ? तो भाई साहब ? इसमें हमारा कुछ दोष नही है वह दोष है प्रभुके शुभ गुणोंका। यदि उनमें सुन्दर शुभगुण न होते तो उनका कोई नामभी न लेता, परन्तु क्या करें ? शुभ गुणोंके भण्डार होनेंसेही कवि लोग रघुकुल तिलक श्रीरामके ही चरित्रोंका गान करते हैं। अतः प्रभुने शरणागत वात्सल्य गुणको याद करके स्पष्ट रूपेग घोषणा कर दी कि—

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥

हे सुग्रीव ! **एनम् उपस्थितम्** वह जो खडा है शरण याचना करता है, उसे तुम खुद जाकर ले आओ। हे हरिश्रेष्ठ ! तुम कुछ भी शङ्का मत करो, भले वह विभीषण हो या रावग परन्तु उसको शीघ्र-तासे मेर पास ले आओ मैं उसको अभय वरदान दे चुका हूं।

मित्रो ? देखी प्रभुकी दया ? करुणासागरकी करुणा के दिव्य दर्शन हुए ? इसका नाम है दयालुता। आज समस्त समाज और समस्त विश्व विभीषणसे प्रतिकूल है परन्तु दयालु देवता उसके प्रेमको और उसकी पूर्ण शरणागतिको देखकर ऐसे प्रसन्न हुए कि

किसीकी टिकी न जमीं, सबको सहर्ष जाकर सादर विभीषणको लाना पडा, भक्तराजने तो प्रभुके दर्शन करते मात्र ही अपने जीवनका फल प्राप्त कर लिया कृतार्थ हो गए, प्रभु सादर हृदयसे—हृदय लगाकर मिले, और आश्वासन देकर विभीषणको निर्भीक बना दिया। आते मात्रही प्रभुने यह प्रतिज्ञा करली कि—

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं स बान्धवम्।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमिते॥

मैं प्रहस्त कुम्भकर्ण और अन्यान्य निशाचरोंके सहित दशग्रीव रावणको मारकर तुझे राजा करूंगा यह मेरी सत्य—सत्य प्रतिज्ञा है।

विभीषणके हृदयमें उस समय राज्यकामना भी न थी, कुछ चर्चा भी न चली थी, परन्तु भक्त मनभावन भगवानने तुरत ही राज्य देनेकी प्रतिज्ञा करली सच कहा है—

आयुमारोग्यमर्थांश्च भोगांश्चैवानुषङ्किकान्।
ददाति ध्यायतां नित्यमपवर्गप्रदो हरिः॥

जन्म मरणकी घोर बेडी छुडाकर मोक्ष देनेवाले श्रीहरि अपने शरणागत भक्तको स्मरण ध्यान करनेवाले भक्तको दीर्घायु, आरोग्य, धन और विविध प्रकारके सुख साधन विना माँगे ही देते हैं, जबतक भक्त विभिषणको राज्य प्रदान न किया तबतक आपके हृदयमें सर्वदा राज्य देनेकी चिन्ता बनी रहती थी—जिस समय श्री लक्ष्मणजीको मूर्छा हुई है और प्रभु भाईके विरहमें विलाप करते हैं तब कहते हैं कि—

यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवेनं यमक्षयम्॥

जिस तरह महाद्युति लक्ष्मणने वन जाते समय मेरा अनुगमन किया है, उसी तरह परलोक जाते समय मैं इसका अनुगमन करूँगा, जब प्राण देनेका समय आता है तब किसका स्मरण रहता है परन्तु ऐसे भयावह समयमें भी प्रभु कहते हैं कि—

तत्तु मिथ्या मलसं मां प्रधक्ष्यति न संशयः।
यन्मया न कृतो राजा राक्षसानां विभीषणः॥

यदि मैं विभीषणको राज्य न देकर प्रथम ही चला जाऊंगा, तो मेरे हृदयमें इस बातकी चिन्ता सर्वदा कष्टकर काँटाकी तरह कसकती ही रहगी—

किसके हृदयमें अपने सेवकोंके प्रति इतनी दया होगी सिवा एक दीनबन्धु शरणागतवत्सल श्रीरामके।

त्वामामनन्ति कवयः करुणामृताब्धे,
ज्ञानक्रियाभजनलभ्यमलभ्यमन्यैः।
एतेषुकेन वरदोत्तर कोशलास्थाः,
पूर्वं सदूर्वमभजन्त हि जन्तवस्त्वाम्॥

हे करुणासागर! पण्डित लोग आपको ज्ञान, आदिक कर्म और उपासनाद्वारा प्राप्त होने योग्य बतलाते हैं परन्तु हे वरद! उत्तर कोशलके (अयोध्याके) निवासी प्राणियोंने इन तीनोंमेंसे किस साधनद्वारा आपका अनुष्ठान कियाथा, जिससे कि आपने उन सबका उद्धार

कर दिया ? अयोध्या प्रान्तके कीडे तकको सद्गति प्रदान की, अब कहिये उसने क्या साधन किया था ?

भगवान् शरणागत भक्तपर तो असीम स्नेह करते हैं। विभीषणके लिये प्रभुने कहा है कि—

कोटि विप्र वध लागहि जाहू। आये शरण तजौं नहि ताहू॥
सन्मुख होय जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नाशौं तबही॥
जो सभीत आवा शरणाई। रखिहौं ताहि प्राणकी नाँई॥

समस्त सभाके बीचमें श्री लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, समस्त मन्त्री तथा वानर रींछके समूहके मध्यमें प्रभुने यह स्पष्ट उद्घोष किया है कि—

सत्य कहौं मेरो सहज स्वभाऊ।
सुनहु सखा कपिपति लङ्कापति, तुम सन कवन दुराऊ।
सबविधि हीन दीन अति जडमति, जाको कतहुँ न ठाँऊ।
आये शरण तजौं नहि ताही, यह जानत ऋषिराऊ॥
पुनि पुनि भुजा उठाय कहत हौं, सकल सभा पतिआऊ।
नाहिन प्रिय मोहि कोउ दास सम, कपट प्रीति बहिजाऊ॥

—गोस्वामी तुलसीदासजी

इस शरणागति योगके छ अङ्ग हैं, जैसे योग यम नियमादि आठ अङ्गसे पूर्णमाना जाता है वैसे ही शरणागति छ अङ्गोद्वारा ही पूर्ण मानी जाती है—यथा—

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षयिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्व वरणं तथा ॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ॥
(नारद पञ्चरात्र)

प्रपत्तिरानुकूल्यस्य सङ्कल्पोऽप्रतिकूलता ।
विश्वासो वरणं न्यासः कार्पण्यमिति षड्विधा।
(भारद्वाज संहिता)

मैं सदा प्रभुके अनुकूल वर्ताव करूंगा ऐसा सङ्कल्प, प्रतिकूलताका त्याग, प्रभु मेरी रक्षा करेगें ऐसा अटल विश्वास, अब आपही मेरे रक्षणकर्ता हैं इस तरह वरण करना, अपनी आत्माको प्रभु चरणोंमें अर्पण कर देना, और दीनता, ये छ अङ्ग द्वारा ही पूर्ण प्रपत्ति मानी जाती है ।

(१) अनुकूलताका सङ्कल्प—प्रभुके प्रत्येक विधानमें प्रसन्न रहना, प्रभुकी दिव्य आज्ञाओंका उल्लङ्घन न करना यह शरणागतका प्रधान कर्तव्य है ।

जो मनुष्य प्रभुको सर्वेश्वर सर्वलोकशरण्य, माता, पिता, सर्वस्व समझकर उनके शरण जाना चाहेगा उसके लिये भगवान्के अनुकूल कार्य करना अनिवार्य है । इस संसारमें भी यदि हम अपनेंसे श्रेष्ठ किसी भी मनुष्यसे कुछ सहायता चाहते हैं तो उसके साथ भी यदि कुछ प्रतिकूल वर्ताव करें तो अपनी धारणा पार नही पडती है, एतदर्थ स्वाभाविक उसके अनुकूल वर्ताव करना पडता है, उसी प्रकार

जो जगत्पति प्रभुका सहारा लेना चाहे उसको भी प्रभु अनुकूल ही आचरण करने चाहिये। प्रभुकी इच्छा ही अपनी इच्छा बना देनी चाहिये, अपनी कामनाका सर्वथा विनाश करदेना चाहिये। अपना श्वासोच्छ्वास प्रभु अनुकूल ही चलना चाहिये, जिस कार्यसे मालिक प्रसन्न हो वही कार्य करना चाहिये। प्रभुकी आज्ञा और अभिरुचिको अपना कर्तव्य बना लेना चाहिये। जो प्रभुके अनुकूल व्यवहार रखता है वही मनुष्य प्रभुप्रिय हो सकता है—

सोइ सेवक मम प्रियतम सोई। मम अनुशासन मानै जोई॥

प्रभुका प्यारा भक्त तो प्रभुके प्रत्येक विधानके अनुकूल ही होजाता है, फिर वह कोमलसे कोमल या कठोरसे कठोर क्यों न हो, प्रभुके स्मरण कीर्तन करनेमें लाखों विघ्न आवे तो भी कभी प्रभुसे प्रतिकूल होता ही नही है। और अनेक सुख प्राप्त होने पर भी प्रभु स्मरण छोडता नही है।

त्रिभुवन विभव हेतवेऽप्यकुण्ठ—
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दा—
ल्लव निमेषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥

(भाग० ११, २, ५३)

"देवगण भी निरन्तर स्मरण करते हुए जिन चरणोंके दर्शन की लालसा रखते हैं उन भगवच्चरणारविन्दसे त्रैलोक्यका राज्य मिलने

पर भी जो आधी पलक भी विचलित नही होता है वह प्रभुका सच्चा शरणागत है।

भक्त विभीषणजी **"मित्रभावेन सम्प्राप्तम्"** मित्र भावसे प्राप्त थे, यदि मित्र मित्रके अनुकूल न होजाय तो मित्रता बनही नही सकती, अतः उन्होंने पहले अपना सब कर्तव्य प्रभुके अनुकूल बना लिया था. प्रभु सेवा करनेका प्रोग्राम रच लिया था, तब आप प्रभु शरणागत हुए थे—आपने कहा भी है—

राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे।
करिष्यामि यथा प्राणं प्रवक्ष्यामि च वाहिनीम्॥

हे प्रभो! मैं लङ्काके प्रधर्षणमें, और राक्षसोंके वधमें सर्वदा आपकी सहायता करूंगा, और जब तक प्राण है इस सैन्याका सञ्चालन करूँगा।

इस प्रकार प्रभुके अनुकूल आचरण करना शरणागतिका प्रथम अङ्ग है।

(२) **"प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्"** प्रतिकूल आचरणोंका त्याग करना शरणागतिका द्वितीय अङ्ग है।

जो प्रभु प्राप्तिके प्रतिबन्धक हैं, प्रभु भजनके बाधक हैं, उनका भक्तजन सर्वथा त्याग करते हैं। ऐसे अगणित भगवत्-शरणागतोंकी गाथाएं मिलती है, जिन्होंने प्रभु प्रेम प्राप्त्यर्थ प्रियसे भी प्रिय चीजोंका बहिस्कार किया है! भक्तराज विभीषणने—

विभीषणो रावणवाक्यतः क्षणात्
विसृज्य सर्वं सपरिच्छदं गृहम् ।
जगाम रामस्य पदारविन्दयोः
सेवाभिकांक्षी परिपूर्ण मानसः ॥

भक्त विभीषणने रावणके परुष वाक्यसे अपने समस्त परिवार सहित घरका त्याग कर दिया, और प्रभु चरण सेवाभिलाषी भक्त विभीषण तत्काल प्रतिकूलता करनेवालोंका परित्याग कर श्रीराम चरणोंकी शरण हो गये ।

प्रभुसे खुद विभीषणने भी कहा है ।

परित्यक्ता मयालङ्का मित्राणि च धनानि च ।
भवद्गतं मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ॥

मैं सर्व प्रकारेण आपके ही शरण हूं । आपही मेरे राज्य,जीवन और सुख हैं । मैं तो लङ्कापुरी सुहृद तथा धनादिक समस्त प्रतिबन्धकोंका परित्याग करके आपके पास आया हूँ । इस प्रकार प्रतिकूलताका वर्जन प्रपत्तिका द्वितीय अङ्ग है ।

(३) "**रक्षायिष्यतीति विश्वासो**" प्रभु अवश्य मेरी रक्षा करेगें ऐसा दृढ़ विश्वास रखना प्रपत्तिका तीसरा अङ्ग है ।

जिसका स्वभाव है कि—

नीच वाप्यति नीचं च स्वभक्तं तारयाम्यहम् ॥

नीच हो या अतिनीच हो महाचाण्डाल हो परन्तु मेरा भक्त हो तो उसका मैं उद्धार करता हूं। जो अनुकम्पा गुणयुक्त है

रक्षिताश्रितभक्तानामनुराग सुखेच्छया।
भूयोभीष्टप्रदानाय यश्चताननुधावति।
अनुकम्पा गुणो ह्येष प्रपन्नप्रियगोचर ॥

अपने आश्रित भक्तोंको सुख प्राप्त करानेकी इच्छासे तथा उनके समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये जो सदा शरणागतोंके पीछे पीछे दौडा करता है वह प्रपन्नोंको प्रिय भगवान्‌का अनुकम्पा गुण है। जिनमें ऐसे ऐसे गुण हैं। और —

एवं दोषोमहानत्र प्रपन्नानामरक्षणे।
अस्वर्ग्यं चापयश्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥

जो प्रपन्नकी रक्षा न करनेसे अस्वर्ग, अपयशकी प्राप्ति तथा बल वीर्यका नाश समझता है। उसके प्रति यदि विश्वास न रक्खें तो हम लोग अवश्य ही हतभागी समझे जायगें, अतः प्रभुके प्रति अत्यन्त श्रद्धा और विश्वास रखना चाहिये।

कवनिहू सिद्धि कि विनु विश्वासा। विनु हरि भजन कि भवभय नाशा

विश्वास विना प्रभु भजन बन ही नही सकता और प्रभु भजन विना भव सागरका पार आ नही सकता। विश्वाससे प्रभु प्रेम बढ़ता है, विश्वाससे सन्त और भगवान्‌की कृपा प्राप्त होती है, विश्वाससे शान्ति और सुख प्राप्त होता है। और विश्वाससे विश्वकर्ता प्रभुके साक्षात् दर्शन प्राप्त होते हैं। प्रभुके भक्तोंका तो सिद्धान्त है कि—

बने तो रघुवरसों बने बिगडे तो भरपूर।
तुलसी औरन्ह ते बने वा बनिवेमें धूर ॥
—तुलसीदासजी

जब तक मनुष्यको प्रभु पर पूर्ण विश्वास नही होता है तब तक प्रभु शरणागतिका अधिकारी हो ही नही सकता है—

राजा शिबिने अपने शरीरका मांस देकर कपोतकी रक्षा की रही, राजा परीक्षितने महा दुष्ट कलियुगको भी अभयता दे दी, तो क्या अशेषलोक शरण्य, अप्रतिम शरणागतवत्सल तुम्हारा रक्षण न करेगा? विश्वास रक्खो, जो समस्त विश्वकी रक्षा करता है वही परमेश्वर तुम्हारी भी रक्षा करेगा. अन्य देव नर नाग तो परवश होनेसे तुम्हारी रक्षा न कर सकेंगे परन्तु परम समर्थ सर्व शक्तिवान् प्रभु ही सबका रक्षक है उसका नाम है सर्वरक्षक, अतः उसी प्रभु पर पूर्ण विश्वास करो। यह शरणागतिका तीसरा अङ्ग है—

(४) "**गोप्तृत्व वरणम्**" अपनी रक्षाके लिये प्रभुको वरण करना यह शरणागतिका चौथा अङ्ग है।

प्रभु "**रक्षापेक्षामपेक्षते**" हमेशाँ रक्षाके लिये प्रार्थना की अपेक्षा रखते हैं। जीव दीन होकर आर्त बनकर मुझसे प्रार्थना करे ऐसी प्रभु चाहना रखते हैं। अतः हमारा कर्तव्य है कि प्रभुको रक्षकत्वेन वरण करें। प्रभुके सन्मुख जाकर प्रार्थना करें कि—

तवास्मि जानकीकान्त कर्मणा मनसा गिरा।
रामकान्ते तवैवास्मि युवामेव गती मम ॥

शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ ।
प्रसादं कुरुतां दासे मयि दुष्टेऽपराधिनि ॥

नमत्समोऽस्तिपापात्मा पापहा न समस्त्वया ।
इति सञ्चिन्त्य देवेश यथेच्छसि तथा कुरु ॥

अन्यथाहि गतिर्नास्ति भवन्तौ हि गतिर्मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन कृपां कुरु दयानिधे ॥

दासोऽहं शेष भूतोऽहं तवैव शरणं गतः ।
अपराधितोऽहं दीनोऽहं पाहि मां करुणाकरः ॥

हे जानकीकान्त ! कर्म, मन, वचनसे मैं आपका हूं । हे रामकान्ते ! आप और प्रभु श्रीराम दोनोंही मेरी गति हैं । हे करुणा-सागर ! मैं आप दोनोंके शरणागत हूं । मुझ दुष्ट और अपराधी दास पर आप कृपा करैं । मेरे समान कोई भी पापात्मा नही है और आपके समान त्रैलोकमें कोई भी पापका नाशक नही है अतः अब मुझ शरणागतकी जो व्यवस्था करनी हो वह खूब विचार करके करें । मेरी अन्यत्र कहीं गति नही है आप युगल सरकार ही मेरी गति हैं । अतः हे करुणानिधे ! आप निर्हैतुकी कृपा कटाक्षेण मुझपर दया करो । मैं आपका दास हूँ, शेष हूँ, अपराधी हूँ, दीन हूँ और शरणागत हूँ, हे करूणाकर ! आप मुझ पर प्रसन्न हों ।

प्रार्थयामि महादीनो दीनोद्धर कृपानिधे ।
एतद्देहावसानेमां सम्प्रापय दयाकर ॥

न मे पाप विनिर्मोक्षे न च त्वत्वप्राप्तिसाधने।
शक्तिस्तत्र समर्थस्त्वं स्वमाप्तेः साधनं भव॥

हे कृपानिधे ! मैं दीन होकर वारम्वार यह प्रार्थना करता हूं कि इस देहके अवसानके समय दया करके आप दर्शन दें। मेरे पाप नाश करनेके लिये और आपको प्राप्त करनेंके लिये मुझमें कुछ भी समर्थता नही है अतः हे प्रभो ! अपनी प्राप्तिके लिये आपही सावधान बनें। मेरे साध्य और साधन उपाय और उपेय आपही हैं।

न जननी जनको न च बन्धवो नहि सखा न परेऽथसहायकाः।
मम जगज्जलधौ विनिमज्जतो रघुपते शरणं चरणौ तव॥

(भक्तकल्पद्रुमः ३)

हे रघुपते ! आपके अतिरिक्त न कोई माता है न पिता, न बन्धु है और न सखा, न और कोई सहायक, इस अगाध भवसागरमें डूबते हुए मेरे लिये आपके युगल चरण कमलके सिवा और कोई भी शरण नही है।

इस प्रकार दैन्यतायुक्त प्रभु प्रार्थना करना प्रभुको रक्षक बना कर खुद प्रभुके रक्ष्य बनना यह शरणागतिका चौथा अङ्ग है।

(५) 'आत्मनिक्षेप' सर्वस्व प्रभुके पावन पद पद्मों पर न्यौछावर कर देना शरणागतिका पाँचमा अङ्ग है।

अपना तन, मन, धन और सर्वस्व जब तक प्रभुको अर्पण न कर देंगे तब तक यह जन्म मरणका दुःखदाई दावानल बुझाने

वाला नही है। अतः सर्व प्रकारेण उसके होजानेमें ही अपना परम कल्याण है। अपनी आत्माको प्रभुके पाद पङ्कजमें अर्पण कर देना ही आत्मनिक्षेप कहलाता है।

(६) कार्पण्य, परम दीनता, यह शरणागतिका छठवाँ अङ्ग है प्रभुके सामने जाकर हार्दिक दैन्यतासे युक्त अपने अपराधोंकी माफी माँगना, हाथ जोडकर कहना कि—

मलिनकर्म कृदस्मि यद्प्यहं रघुपतेऽस्मि तथापि जनस्तव।
हर ततो विपदामनपायितामपयशो बहुशो भवितान्यथा॥

(भक्तकल्पद्रुमः ७)

हे रघुपते ! मैं यद्यपि मलिन कर्म करनेवाला हूं। तथापि आपका ही जन हूँ। अतः मेरी विपत्तियोंकी जो अनपायिता=अविनाशता है उसको हर लीजिये। अन्यथा आप जगत्में उपहासके पात्र बन जायँगे लोग कहने लग जायँगे कि प्रभु तो परम दीनोंकी भी रक्षा नही करते हैं।

भक्त हमेशाँ परम दीन बना रहता है उसके हृदयमे अहङ्कारका अङ्कुर उद्भव होने ही नही पाता। प्रभु तो दीन दयालु हैं दीनोंके बन्धु है अभिमानियोंके ऊपर दया करनेवाले नही है, प्रभुकृपा जलके समान है जैसे जल नीचे स्थलमें ही ठहरता है ऊंची जगहमें नही ठहर सकता, वैसे ही ईश्वरकृपा भी जिसका हृदय परम नम्र है उसके हृदयमें ही ठहरती है,अभीमानीके हृदयमें कदापि नहि रह सकती है।

इसीसे जब किसी भक्तके हृदयमें गर्व उत्पन्न होता है तब गर्वगञ्जन प्रभु शीघ्र उसके गर्वका नाश कर देते हैं।

ये छ अङ्ग है भगवति प्रपत्ति देवीके। याद रहे यदि इन छ अङ्गोमेंसे एक भी अङ्गका पालन न हो सका तो पूर्ण शरणागति नही मानी जा सकती है, शरणागतिके प्रत्येक अङ्गोका सप्रेम और सादर पालन करोगे तब तुम्हे शरणागतिका पूर्ण चमत्कार मालूम होगा—

भारद्वाज संहितामे लिखा है—

एषा च त्रिविधाज्ञेया कारणत्रयभेदतः।
गुणत्रयविभेदादप्येकैका त्रिविधा पुनः॥

यह शरणागति, कायिक, वाचिक, और मानसिक इन भेदोंसे और सात्विकी, राजसी और तामसी इन गुणोंके भेदोंसे तीन तीन प्रकारकी है।

प्रणामाङ्कन मुख्येन न्यासलिङ्गेन केवलम्।
गुर्वधीना हि भवति प्रपत्तिः कायिकी क्वचित्॥

प्रणामादिकसे युक्त, समस्त बाह्याभ्यान्तर चिन्होंसे युक्त हो श्री गुरुदेवकी सेवापरायण शरणागत भक्त कायिकी प्रपत्तिनिष्ठ प्रपन्न माना जाता है। और-

अविज्ञातार्थ तत्त्वस्य मन्त्रमीरयतः परम्।
गुर्वधीनस्य कस्यापि प्रपत्तिर्वाचिकी भवेत्॥

मन्त्रके तत्त्वको न समझकर केवल उपांशु जप करनेवाला श्रीगुरुसेवा परायण प्रपन्न भक्त वाचिकी प्रपत्ति निष्ठ कहा जाता है।

न्यासलिङ्गवताङ्गेन धियार्थज्ञस्य मन्त्रतः ।
उपासितगुरोः सम्यक् प्रपत्तिर्मानसी भवेत् ॥

श्री गुरुदेवकी पूर्णतया कृपा सम्पादन करके, मन्त्र मन्त्रार्थ, और मन्त्र प्रतिपादित देवकी उपासनाके रहस्योंको समझकर, बाह्य और आन्तरिक वैष्णवीय चिन्होंसे युक्त होकर प्रभु यजन करनेवालेको मानसी प्रपत्ति निष्ठ भक्त कहा जाता है ।

यदीच्छन् प्रतिकूलानि सर्वभूतानुकम्पनम् ।
प्रपद्येत हरिं मोहात्सा प्रपत्तिस्तु तामसी ॥

मैं प्रभु शरणागत होकर ऐसी शक्ति प्राप्त करूंगा कि मेरे समस्त प्रतिबन्धकोंका शत्रुओंका नाश कर सकूं, ऐसी कामनासे जो मोहके वश श्रीहरि शरणागत होता है वह तामसी प्रपत्ति है ।

अभीप्सन विविधान् कामान् यदकामैकवत्सलम् ।
प्रपद्येत हृषीकेशं तामिमां राजसीं विदुः ॥

जो अनेक प्रकारकी कामओंमे आसक्त "मुझे सब प्रकारका सुन्दर वैभव प्राप्त हो" इस इच्छासे, भक्तोंकी समस्त कामनाओंके पूर्ण करनेवाले प्रभुके शरणागत होता है उसकी राजसी शरणागति मानी जाती है ।

परित्यज्याखिलान्कामान् भक्त्यैवात्मेश्वरं हरिम् ।
प्रपद्यते दास्य रतिर्यदैषा सा तु सात्त्विकी ॥

आब्रह्मभुवनपर्य्यन्त समस्त लोकोंके भोगोंकी कामनाओंका अत्यन्तिक नाश करके, केवल प्रभु चरण सेवाकी इच्छासे, दास्य

भावनायुक्त प्रभुके चरणाश्रित होता है, वह सात्विकी शरणागति कहलाती है।

हीना हीनतमाश्चैव रजसा तमसा कृताः ।
सत्वेनयाः प्रयुज्यन्ते मुख्यास्ताः परिकीर्तिताः ॥

तामसी शरणागति हीनतम है। राजसीहीन है। और सात्विकी शरणाति सर्वश्रेष्ठ है।

सत्वजा मानसीत्येका तत्र मुख्यतमामता ।
तयाहि परमांसिद्धिं सद्योयान्ति मनीषिणः ।

सात्विकी और मानसी शरणागति मुख्य है इसका विधिवत् अनुष्ठान करनेंसे मनुष्य शीघ्र ही फलकी प्राप्ति कर लेता है।

राजसी, तामसी, कायिकी, वाचिकी, शरणागति भी जीवका उद्धार करती है परन्तु सात्विकी और मानसी शरणागति शीघ्र फल-दायिनी है।

उदाहरणार्थ—वायस वेषधारी इन्द्रका पुत्र जयन्त श्रीजगदम्बा सीताजीके चरणमें चोंच मारकर भागता है और प्रभु श्रीराम उसके वध करनेके लिये बाण छोड देते हैं जयन्त अखिल ब्रह्माण्डमें समस्त देव देवतान्तरोंको और ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादिकोंको प्रार्थना करके हार जाता है जब उसका कोई रक्षक नही बनता है वापिस प्रभुके चरणोंमे पडकर शरण चाहता है तब—

स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ।
वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ॥

(वा० रा)

वध करनेलायक, अपराधी, वायस वेषधारी, जयन्ता भूमिमें गिरकर साष्टाङ्ग दण्डवत् करता है और कायिकी शरणागति स्वीकार करता है यह देखकर सर्वलोकशरण्य काकुत्स्थ प्रभु श्रीरामने उसका भी कृपाकटाक्षेण परिपालन किया। और—

त्यक्त्वा पुत्राँश्च दाराँश्च राघवं शरणंगतः ।

मैं स्त्री पुत्रादिको त्यागकर रघुकुल नायक श्रीरामके शरण आया हूँ।

सर्वलोकशरण्याय राघवाय महात्मने ।
निवेदयत मां क्षिप्रं विभीषणमुपस्थितम् ॥

इत्यादि वाक्यनुसार विभीषणजी वाचिकी शरणागति ग्रहण करते हैं। और–

सङ्गृह्य पुष्कराग्रेण काञ्चनं कमलोत्तमम् ।
निवेद्यमनसा ध्यात्वा पूजांकृत्वा विपद्गतः ॥

जब गजराजने अपनी सुण्डसे सुन्दर कमल लेकर मनमें ध्यान कर प्रभुकी प्रार्थना की। मानसी शरणागति स्वीकारकी तब प्रभुने शीघ्र ही उसको बचायाथा—

इत्यादि दृष्टान्तोंसे विदित होता है कि प्रभु सब प्रकारके शरणागतोंकी रक्षा करते हैं।

अञ्जलेर्बन्धनादाशु पादयोः पतनादनु ।
प्रेमार्द्र हृदयो राम आत्मदानात्प्रसीदति ॥

हाथ जोडकर पगमें पडकर जो प्रभु प्रार्थना करता है और आत्म समर्पण करता है तो प्रेम परिपूर्ण हृदयवाले श्रीराम उस भक्त पर शीघ्रही परम प्रसन्न होजाते हैं, और उसका शीघ्र उद्धार करते हैं।

प्रभुका शरणागत प्रभुको त्यागकर साधनान्तरोंके आश्रयका परित्याग कर देता है। अर्थात् जप तपादिक करनेंसे मेरी मुक्ति होगी ऐसा विचार नही रखता है, वहतो सर्वथा प्रभु पर ही निर्भर रहता है, वह अपना कर्तव्य केवल प्रभुसेवा ही मानता है, अपना भरोंसा त्याग देता है, केवल प्रभुका ही भरोसा रखता है, सुग्रीव, गजराजादिक भक्तोंने जब तक अपने शारिरीक बलका भरोसा रखकर युद्ध कियाथा तब तक प्रभु रक्षा करनेंके लिये उद्यत नही हुएथे और आर्त होकर प्रभुको पुकारते ही प्रभुने शीघ्रतर उनका उद्धार कियाथा–

उसी प्रकार विपद्‌ग्रस्ता सती द्रौपदीको भी जब तक परम समर्थ पाण्डवोंका और भीमादिकोंका भरोसा था तब तक प्रभु दूर ही बैठे रहे और जब आर्त बनकर पुकारती है कि—

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्ति नाशन ।
कौरवार्णव मग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥

हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे आर्तिहरण! हे जनार्दन! मुझ कौरवरूपी भयङ्कर सागरमें मग्न अनाथाकी रक्षा कर। हे विश्वात्मन्! हे विश्वभावन! हे महायोगी! हे कृष्ण! हे कृष्ण! कौरवोंके बीचमें हताश होकर तेरे शरण आनेवाली मेरी रक्षाकर। तब दयालु दीनबन्धु प्रभुको तत्काल वहीं प्रकट होना पडा!

भक्त जब अन्य समस्त साधनोंकी अपेक्षा त्याग देता है अनन्य हो जाता है तब प्रभु उसके रक्षणार्थ आ पहूँचते है। जब रावणपुत्र मेघनादने हनुमानजीको ब्रह्मास्त्रद्वारा बाँध लिये थे और अल्पबुद्धि दुष्ट राक्षसोंने ज्योंही अन्य तुच्छ साधनोंद्वारा उन्हे बाँधनेका प्रयास कियाकि ब्रह्मास्त्र स्वतः छूट गया, उसी तरह कलिमलको विध्वस्त करनेंको प्रचण्ड ब्रह्मास्त्रवत् प्रभु प्रपत्ति ग्रहण करनेवाला प्रपन्न जब अन्य तुच्छ साधनोंका आश्रय ग्रहण करता है तब प्रपत्ति उस प्रपन्नका त्याग कर देती है, फिर जब आर्त होकर प्रभु शरणागत होता है तब पुनः कृपा कटाक्ष करती है अन्यथा वह प्रपत्तिदेवीकी प्रेमभरी कृपासे वञ्चितही रहता है। प्रपत्तिनिष्ठ अनन्य भक्ततो पुकार उठेगा कि—

श्री जानकी जीवनकी बलि जैहौं।
चित कहै राम सीय पद परि हरि, अब न कहूँ चलि जैहौं॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहु सुख, प्रभुपद विमुख न पैहौं।
मन समेत या तनुके वासिन्ह इहै शिखावन दैहौं॥
श्रवणन्ह और कथा नहि सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन विलोकत औरहि, शीश ईशहि नैहौं॥

नातो नेह नाथसों करि सब, नातो नेह वहैहौं।
यह छर भार ताहि तुलसी, जग जाको दास कहैहौं॥

यह है अनन्य भक्ति, यह है ह्रदयका दृढ़ सिद्धान्त कि प्रभुश्री रामको छोडकर मेरा हितकर त्रयलोकमें कोई है ही नही। बस, यदि कोई दिवस ऐसा कहदूँ कि मै प्रभुका नही हूं, अन्य किसीका हूँ, ऐसा भूलसे भी निकल जाय तो मेरी ये जीभ गल करके गिर पडे हे नाथ?

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं॥
जानकी जीवन जन्मजन्मजग ज्यायो तिहारेहि कौरको हौं॥
तीनि लोक तिहुं काल न देखत सुहृद रावरे जोरको हौं।
तुमसों कपटकरि कल्पकल्प कृमि ह्वहौं नरक घोर को हौं।

मन तो एक है, मनुष्य भगवान्‌के किसी एकही रूपकी उपासना कर सकता है, वह अन्य रूपका ध्यान धरने बैठेगा तो पूर्व रूपका विस्मरण हो जायगा, अतः प्रपन्न प्रभुके किसी एकही रूपमें मस्त रहता है। एकहि साधै सब सधै सब साधै सब जाय। प्रभुके किसी एकही रूपकी उपासना हो सकती है भले, फिर वह राम हो या कृष्ण, विष्णु हो या नारायण परन्तु उपासना तो किसी एकही की होगी। शरणागत तो प्रभुके किसी एक ही स्वरूपके होंगे, यदि हम अपने शरणदाताके चरणोंमे अनन्य हो जायँगे तो हमारा बेडा पार हो जायगा और अन्य दोचार ओर भी रक्षक बनावेंगें तो वह समझेगा कि वह तारेगा और वह समझेगा कि वह तारेगा और उसी फेरमें हमारा नाश हो जायगा अतः—

कानन दूसरो नाम सुनै नहि एकहि रङ्ग रङ्गयो यह डोरो।
धोखेहुं दूसरो नाम कढ़ै रसना मुख बाँधि हलाहल बोरौं॥
ठाकुर चित्तकी वृत्ति कही हम कैसहुं टेक तजैं नहिं भोरौं।
बावरि वे अखियाँ जरि जाँयजे साँवरो छांडि निहारति गोरो॥
—सुकवि ठाकुर

परमानन्य भक्तप्रवर श्रीरामदूत हनुमानजी प्रतिज्ञापूर्वककहते हैं।

रामादन्यं नमेच्चेत् पततु शिरसि मे कालदण्ड प्रचण्डः।
जिह्वामेतां द्विजिह्वो दशतु रघुपते र्नामतोऽन्यं जपेच्चेत्॥
दम्भोलि र्मामकीनं विदलतु हृदयं चिन्तयेच्चेत्ततोऽन्यं।
जानीते सर्ववेत्ता सकल हृदिगतः वेत्तुवाऽन्यो न वेतु॥

भगवान् श्रीरामके सिवा यदि मैं अन्य किसीको अपना मोक्ष-दाता मानकर माथा झुकाऊं तो मेरे माथेपर तत्काल कालदण्ड गिरे और चूरचूर कर दे। मेरी जीभ प्रभुश्री राघवको छोडकर अन्य किसीके नामको कल्याणकारी समझकर ले और आपके नामको गौण मान ले तो घोर विषधर नाग जीभको काट ले। यदि मेरा हृदय आपके चरणोंका भरोसा त्यागकर अन्य किसीके भरोसे भवपार जाना चाहे तो तत्काल वज्र मेरे हृयको विदीर्ण करदे। हे नाथ! आप अन्तर्यामी हैं सब कुछ जानते हैं अतः मेरे हृदयमें ऐसी अनन्य भक्ति है या नही उसका स्वतः विचार करलें। भले, दूसरे लोग जाने या न जानें।

जातका पक्षी परन्तु प्रेमका उज्वल आदर्श चातकके माथे कितने कितने प्रबल कष्ट आते हैं परन्तु वह दृढ़ प्रेमवीर अनन्य स्नेही चातक कभी मेघसे रूठकर किसी दूसरेके शरणापन्न होता है?

उपल वरषि गरजत तरजि डारत कुलिश कठोर।
चितवन चातक मेघ तजि कबहुं दूसरी ओर॥

भक्त कबीरने भी कहा है

कविरा काजर रेख हू अबतो दई न जाय।
नैनन्ह प्रियतम रमि रहा दूजा कहां समाय॥

चातककी अनन्यताको तो शतशः धन्यवाद है। जीते–जीते तो वह स्वाती जलको त्यागकर अन्य जल नही छूता है परन्तु मरते समय भी अपने पुत्रको उपदेश देता है—

तुलसी चातक देत शिख सुत ही वारम्वार।
तात न तर्पण कीजियो विनु स्वाती जलधार॥
गङ्गा यमुना सरस्वती सप्तसिन्धु भरपूर।
तुलसी चातकके मते विनु स्वाती सब धूर॥

जब श्याम सुन्दरके चरणोंमे ऐसी दृढ़ श्रद्धा होगी, जब प्रभुके पाद पद्मोंमे ऐसा अनन्य भाव होगा, तब भक्त परमपिताका साक्षात् दर्शन प्राप्त कर सकता है। ऐसे अनन्य प्रभु भक्तको यदि अन्तकालमें प्रभुका विस्मरण भी हो जाय तो भी उस समय भगवान् स्वयं उसकी खबर लेते हैं श्रीभगवान्की प्रतिज्ञा है कि—

यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां च विस्मरेत्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्॥

यदि वात, पित्त, कफादिके प्रकोपसे व्यथित होकर मेरा भक्त अन्तकालमें मुझे भूल जाय तो मैं उसका स्मरण करके उद्धार करता

हूँ और मेरे परम धाममें वास देता हूँ। इसी लिये तो शास्त्रकारोंने कहा है—

उपायेषु प्रपत्तिः स्यादन्तिमः स्मृति वर्जनम् ॥

इस लिये सर्वत्रसे चित्तवृत्तियोंका निरोध करके अनन्यभावेन भगवान्के चरण शरण होजाना चाहिये। और परम आर्त बनकर प्रभु प्रपन्न बन जाना चाहिये। क्योंकि प्रपत्ति आर्त भक्तको शीघ्रं फलदाता है और दृप्त भक्तके भी जन्मान्तरोंकी निवारिणी है।

आर्तानामाशुफलदा सकृदेव कृता ह्यसौ।
दृप्तनामपि जन्तूनां देहान्तरनिवारिणी ॥

ऐसी सरल और सरस प्रपत्ति सबको परिपालनीय है। यदि यह जिन्दगी वीतगयी, मानव जीवनकी शुभ घडियां व्यतीत होगई तो फिर बहुत पछतावा करना पडेगा——

आछे दिन पाछे गये हरिसों कियो न हेत।
फिर पछिताये क्या मिले चिडिया चुग गई खेत ॥
आज कहे मैं काल्ह करूं काल्ह कहै फिर काल।
आज कालके करत ही अवसर जासी चाल ॥
काल करै सो आज कर आज करैसो अब्ब
पलमैं परलय होयगो बहुरि करेगा कब्ब ॥

यह मानव देह अमूल्य रत्न है, परमात्माके तरफसे इनाममें मिली हुई चीज है, इसको व्यर्थ खोदेना महान् अपराध है। अतः प्रभुके शरणागत होजाना ही जीवनका चरम लक्ष्य है प्रभुकी शरणा-

गतिमें सर्वाधिकार हैं, ब्राह्मणसे लेकर महा चाण्डाल तकके जीव ईश्वर शरण हो सकते हैं, और हो गये हैं। गज, गणिका, गीध, शबरी, यवन, स्वपचादिक अनेकों भक्तोंकी गाथाएं हम लोग जानते ही हैं वह सब भी प्रभु प्रपन्न जीवही थे। जो प्रभुके लिये अपना सर्वस्व होम देता है उसका संसारमें कोई प्रतियोगी रह नही जाता। जो साधक आत्म समर्पण मन्त्र सिद्ध कर लेता है अर्थात् जो विना कामनाके अभिलाष के अपना सर्वस्व तन, मन, और प्राण, विना कपट प्रभुके लिये अर्पण कर देता है उसके लिये प्रभु कल्पतरुवत् अपनी कर कमलकी शीतल छायाद्वारा उसके तापोंका हरण कर लेते हैं। उसके हाथ विना दाम विक जाते हैं।

जिस समय वह भक्त इस नश्वर देहको त्यागकर प्रभु धाममे चलता है तब देवगण उनकी पूजा करते हैं। लोकपाल, दिक्पाल, सुर, असुर, नर, नाग, गन्धर्व उसकी प्रार्थना करते हैं और वारम्वार जय मनाते हैं। चन्द्र, तारा, ग्रह, नक्षत्र, सब उसके अनुकूल होजाते हैं। चारों तरफ सगुण दिखाई देने हैं। स्वार्थ और परमार्थ करतलगत होजाते हैं। जन्म मरणका फेरा छूट जाता है। कृतार्थ होजाता है। और दिव्य आनन्द धाम श्रीरामधाममें जाकर निवास करता है।

। इति शरणागति—उपाय।

सदाचार्य्याभिमान-उपाय

बालमूकजडान्धाश्च पङ्गवो बधिरास्तथा।
सदाचार्य्येण सन्दिष्टाः प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥
(भारद्वाज संहिता)

बालक, मूक, अन्ध, पङ्गु, बधिर, और भी अनेक प्रकारके साधन हीन सदाचार्यका उपदेश ग्रहण करके परम पदको प्राप्त कर लेते हैं।

आचार्यको इष्टदेव मानकर उनकी हार्दिक सेवा करना, मुझे श्री गुरु सेवाद्वारा ही इष्ट देवकी प्राप्ति होजायगी, मुझ सरीखे दीन और साधन हीनोंको सिवा श्री गुरुसेवाके और कोई भी उपाय नहीं है। मैं और किसी भी उपायान्तरसे भवपार नहीं जा सकता हूं, ऐसा निश्चय करके जो भाग्यभाजन दृढ़ श्रद्धा और विश्वासके साथ श्री गुरु-देवकी सेवा करता है उसे श्री सदाचार्य्याभिमान कहा जाता है।

साक्षात् सर्वेश्वर मुझे कृतार्थ करनेके लिये ही श्री सद्‌गुरुस्वरूप धारणकर प्रकट हुए हैं, और भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, कर्म, प्रपत्ति, आदिक समस्त उपायोंसे भी श्री सद्‌गुरुसेवाको सुलभ मानकर सेवा करना पाँचमा उपाय है, यह उपाय सर्वश्रेष्ठ है।

जीव जबतक श्री गुरु शरण होकर प्रभुके दिव्य गुण, कर्म, लीला और रूपलावण्यका वर्णन न सुने तब तक मनुष्य कदापि प्रभु प्रेमी नही बन सकता है एतदर्थ प्रत्येक प्राणीको श्रीसद्‌गुरु शरण जाना आवश्यकीय कर्तव्य है। श्रुति कहती है कि—

तद्विज्ञानार्थं सगुरूमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियम् ब्रह्मनिष्ठम्।
(मुण्डक)

आचार्य्यवान् पुरुषो वेद।
(छान्दोग्य)

आचार्यकी कृपा विना भगवत्तत्व जाना नहीं जा सकता, भगवत्तत्व समझे विना भगवत्प्रेम नही हो सकता, और भगवत्प्रेम विना मनुष्य इस घोर भवसागरसे पार नही जा सकता है।

तस्माद्‌गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयमात्मनः।
(भागवत)

इस लिये कल्याणकामी मनुष्योंको श्री सद्‌गुरु शरण होना चाहिये—

आचार्य्यं मां विजानीयात् नावमन्येद् कर्हिचित्।
न मर्त्यबुध्या सेवेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

भगवान् कहते हैं—आचार्यको मेरा स्वरूप मानो, उनकी कभी निन्दा मत करो, अपमान मत करो, उन्हे मनुष्य न मानो, श्रीसद्‌गुरु

सर्व देवोंकी साक्षात् मूर्ति हैं। अर्थात् समस्त तीर्थ और देवता गुरु चरणोंमें ही हैं। इस ग्रन्थके मूल श्लोकोंमे भी—

गुरावीश्वरबुद्धिश्च तदाज्ञापरिपालनम्।

श्री गुरु महाराजके चरणोंमे ईश्वर भाव माने और उनकी आज्ञाका प्रेम सहित परिपालन करे यह परमोपाय बतलाया है, श्री गुरुदेव साक्षात् ईश्वरकी मूर्ति हैं शास्त्रोंमें कहा है।

चक्षुर्गम्यं गुरुं त्यक्त्वा शास्त्र गम्यं तु यः स्मरेत्।
हस्तस्थमुदकं त्यक्त्वा घनस्थ मभिवाञ्छति॥
सुलभं श्रीगुरुं त्यक्त्वा दुर्लभं यदुपासते।
प्रत्यक्ष धनं हित्वा स गुप्त मन्वेशिति क्षितौ।

चक्षुर्गम्य (प्रत्यक्ष) साक्षात् गुरुरूप प्रभुको त्यागकर जो शास्त्रस्थ प्रभुके लिये परिश्रम करता है, वह हाथमे रहे हुए जलका त्याग करके मेघमें रहे हुए जलकी प्राप्तिके लिये श्रम करने-वालेके सदृश है। परमात्माके सुलभरूप श्री गुरुसेवाका परित्यागकर जो दुर्लभ प्रभुकी प्राप्तिके लिये प्रयास करता है वह हाथमें रहे हुए धनका त्यागकर पृथिवीमेंसे धन खोजकर सुख भोगनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यवत् श्रमको प्राप्त करता है।

यो गुरुः स हरिः साक्षात् यो हरिः स गुरुः स्वयम्।
गुरुर्यस्य भवेत्तुष्टस्तस्यतुष्टो हरिः स्वयम्॥

श्री सद्गुरुदेव ही साक्षात्हरि हैं और श्रीहरि ही साक्षात् श्री

सद्गुरु देव हैं। जिसके ऊपर श्रीगुरु प्रसन्न होते हैं उसके ऊपर साक्षात् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं।

मन्त्रे तद्दैवतायां च तथा मन्त्र प्रदे गुरौ।
त्रिषु भक्तिः समाकार्य्या सा हि प्रथमसाधनम्॥

मन्त्र, मन्त्रप्रद श्रीगुरु और मन्त्र प्रतिपाद्य श्री इष्टदेव तीनोंमें समान श्रद्धा और विश्वास रखना ही सर्व प्रथम साधन है। अर्थात् इसके विना उपायान्तर फलप्रद नही हो सकते।

अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्व मनर्थकम्।
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षा हीनो मृतो नरः॥
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः।
न भवन्ति प्रियास्तेषां शिलायामुप्त बीजवत्॥॥

(पद्मपुराण, उत्तर खण्ड अ० २२)

जपस्तपो व्रतं तीर्थं यज्ञो दानं तथैव च॥
गुरु तत्त्वमविज्ञाय सर्वंव्यर्थं भवेत्प्रिये॥

(स्कन्दपुराण)

धर्मार्थकाममोक्षाणामालयः साम्प्रदायिकः।
सम्प्रदाय विहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः॥
यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छलेनाथ बलेन वा।
पत्रे स्थितं च गाथां च तं जनयेदनर्थकम्॥

(वृद्ध गौतमीय)

हे वामोरु ! श्री गुरुदीक्षा विना मनुष्य मरनेके बाद पशु योनि प्राप्त करता है, और उसके कियेहुए शुभ काम सब व्यर्थ होजाते हैं। अदीक्षित पुरुष जप, तप, यज्ञादिक जो क्रियाएं करता है वह पाषाण पृष्ठ पर बीज बोनेके समान निष्फल होजाती है।

जप, तप, व्रत, तीर्थ, यज्ञ, दान, तथा अन्य शुभ कर्म श्री गुरु दीक्षा लिये विना व्यर्थ होजाते हैं।

धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चारों पदार्थ साम्प्रदायिक मन्त्र द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। सम्प्रदाय विहीन समस्त मन्त्र निष्फल माने जाते हैं। किसी जगहसे सुना हुआ, छलसे या बलसे लिया हुआ, पुस्तकमे बाँचा हुआ, और कोई वार्तामे सुना हुआ मन्त्र व्यर्थ होता है। वैदिक धर्म निष्ट साम्प्रदादिक श्री सद्गुरुद्वारा जो मन्त्र प्राप्त है। वही मन्त्र फलदाता हो सकता है।

ध्यान मूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्र मूलं गुरोर्वाक्यं भक्तिमूलं गुरोः कृपा॥
गुरोः पादोदकं पीत्वा गुरोरुच्छिष्टभोजनम्।
गुरोः मूर्तेः सदा ध्यानं गुरोः मन्त्रं सदा जपेत्॥
न गुरोरप्रियं कुर्य्यात्ताडितः पीडितोऽपिवा।
नावमन्येतद्वाक्यं नाप्रियं हि समाचरेत्॥
शरीरमिन्द्रिय प्राणमर्थं स्वजनबान्धवान्।
आत्मगृहादिकं सर्वं सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्॥

ध्यानका मूल श्री गुरु मूर्ति है, पूजाका मूल श्री गुरुचरण है, मन्त्रका मूल श्री गुरु वाक्य है, भक्तिका मूल श्री गुरु कृपा है। श्री

गुरुदेवका चरणामृत और प्रसाद हमेंश लेना चाहिये। सदा श्री गुरु मन्त्रका जप और गुरु मूर्तिका ध्यान धरना चाहिये। भले, कदाच श्री गुरुदेव शिष्यके हितार्थ मारे या पीडा देवें तो भी उनका अप्रिय काम नही करना, उनके वाक्यकी अवहेलना न करनी, शरीर, इन्द्रिय, प्राण, धन, मित्र, बन्धु, आत्मा, घर और सर्वस्व श्री गुरु चरणोंमे अर्पण कर देना चाहिये।

भारत वर्षमें श्री गुरुशरणागति सर्व प्रथम साधना मानी जाती है। विना श्री गुरु कृपा साधनाके वास्तविक मर्म समझमें नहीं आ सकता है। केवल शास्त्र और तर्कके सहारे ईश्वरके स्वरूपको नहीं जाना जा सकता है। अनुभवी गुरुकी कृपा विना भवाटवीके भयङ्कर वीहडोंसे निकलना दुस्साध्य है। संसार सागरसे पार जाते समय भारी भारी विघ्नोंको विदारण करनेकी कलायें श्री सदगुरु ही बता सकते हैं। शिष्यको अनायास ही अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचा देनेकी ताक़त श्री गुरुदेवमें ही है। इसी लिये वेद उपनिषद् इतिहास पुराण और आधुनिक सन्तजन श्री गुरु महिमाके गीत गाते हैं। शास्त्रोंने तो गोविन्द से भी श्री गुरुदेवकी विशेष महिमा वर्णन की है। अतः श्री गुरुकी कृपाका प्रचण्ड प्रताप वर्णनातीत है। वह पुरुष बडाही भाग्यशाली है जिसने श्री गुरुदेवके प्रत्येक वाक्यको श्रुतिवत् मान्य देकर अपना जीवन उनकी सेवामें विताया है और श्री गुरुदेवके लिये समस्त संसारका परित्याग कर दिया है। मेरी समझसे तो श्री सद्गुरु विना पारमार्थिक साधनमें सफलता प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है। कृपालु गुरु देवके कर्ण धार भये विना भवसागरकी उत्ताल तरङ्गोंसे बचकर नौकाका

पार लगना नितान्त असम्भव है। अतः प्रत्येक मोक्षकामी मनुष्योंको श्री गुरु शरण होना और दीक्षा लेकर भगवत्सेवाके निगूढ रहस्योंको प्राप्त करना परमोचित है। क्योंकि—

गुरु विन भवनिधि तरै न कोई। जो विरञ्चि शङ्कर सम होई॥

—गोस्वामी तुलसीदासजी

यह बाततो निर्विवाद सिद्ध है कि गुरु विना मुक्ति नही है परन्तु वह गुरु होनें कैसे चाहिये उसका भी विचार कर लेना चाहिये क्योंकि आजकाल यह कहावत है कि गुरु कीजै जानके, पानी पीजे छानके। आचार्यके लक्षण दर्शाते हुए हमारे शास्त्र कहते हैं।

आचार्य्यो वेद सम्पन्नो विष्णु भक्तिसमन्वितः।
मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदामन्त्राश्रयः शुचिः॥

आचार्य वेदतत्त्वोंके ज्ञाता, प्रभु भक्ति सम्पन्न, मन्त्रके तत्त्वोंके और अर्थोंके पूर्णतया जाननेवाले, मन्त्रके दृढ़ उपासक, और मन्त्रका आश्रय ग्रहण करनेवाले होते हैं।

सत्सम्प्रदायसंयुक्तो मन्त्रराजादिकोविदः।
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नो वेदवेदान्तपारगः॥

जो सत्सम्प्रदायनिष्ठ हो, पन्थाई न हो, असत्सम्प्रदायवाला न हो. मन्त्रराजके रहस्योंका यथार्थ ज्ञाता हो, ज्ञान, वैराग्य सम्पन्न हो, अर्थात्, भगवत्तत्वसे अज्ञात न हो और विषय लोलुप न हो, वेद वेदान्त पारङ्गत हो वह सद्गुरु पदवीके योग्य है। और—

मन्त्रदाता न च गुरुर्न च मन्त्रार्थवाचकः ।
मन्त्रमन्त्रार्थं यो दद्यात् गुरुरित्यभिधीयते ॥
गुरवो बहवः शन्ति शिष्यद्रव्यापहारकः ।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्य सन्ताप हारकम् ॥

केवल मन्त्रप्रदाता गुरु नही है, और केवल मन्त्रार्थदाता भी गुरु नही है, परन्तु मन्त्र तथा मन्त्रार्थ दोनोंको यथार्थ समझानेवाला ही गुरु हो सकता है। जगत्में शिष्योंकी सम्पत्ति हरण करनेवाले गुरुओंकी तो भरमार है परन्तु शिष्यके सन्ताप हरण करनेवाले तो लाखोंमे कोई एक ही प्राप्त होते हैं।

गुरवो निर्मलाः शान्ताः साधवो मितभाषिणाः ॥
कामक्रोधविनिर्मुक्ता भगवद्भक्ता जितेन्द्रियाः ॥

सच्चे सद्गुरु, निर्मल, शान्त, साधुवृत्तियुक्त, बहुत कम बोलने-वाले काम, क्रोध, लोभादिकोंके बन्धनसे मुक्त, सच्चे भगवद्भक्त और जितेन्द्रिय होते हैं, जिसके हृदयमें ऐसे सद्गुण हैं वही सद्गुरु शब्द वाच्य है। ऐसे सद्गुरु बडे ही दुर्लभ होते हैं। आजकाल ऐसे सच्चे गुरु देवोंका बहुत अभाव है। जिनमें उपरोक्त गुण विद्यमान नही है उन्हे गुरु बनाकर भवसागरसे पार जानेकी चाहना रखना नितान्त मूर्खता है, जिसके हृदयमें परम पवित्र प्रभु प्रेम परिपूर्ण हो वह भले विद्या या अन्य गुणोंसे रहित हो परन्तु सद्गुरु होने योग्य है ओर जो सर्व गुण सम्पन्न हो परन्तु प्रभु प्रेम रहित हो तो वह सर्वथा त्याज्य है। उसको गुरु बनानेंसे कोईभी लाभ नही हो सकता। क्योंकि—

पाषाणस्य यथा नौका न तरेन्नापितारयेत् ।
गृही गुरुर्न कर्तव्यो न तरेन्नापितारयेत् ॥

जैसे पत्थरका नाव खुद तर नही सकता और दूसरोंको तार नही सकता उसी तरह स्त्री पुत्रादि माया जालमें फँसा हुआ गृही गुरु न खुद भवपार जा सकता है और न दूसरोंको भवपार ले जा सकता है । कितने लोगोंकी ऐसी मान्यता है कि नगुरा न रहना चाहिये, गुरु कर लेना चाहिये, फिर वह अच्छा हो बुरा हो, गृही हो, विरक्त हो, भक्त हो, अभक्त हो, वैष्णव हो, अवैष्णव हो, परन्तु कुलकी अन्ध परम्पराके पाले पडकर उनका चेला बनजानेमें ही हमारा कल्याण है । परन्तु यह मत शास्त्रोंसे सर्वथा बहिस्कृत है ।

यज्ञेदानोपवीतेषु विवाहे श्राद्धतीर्थके ।
षड्स्थानेषु गुरुर्विप्रो मन्त्र दीक्षासु वैष्णवः ॥

यज्ञ, दान, उपवीत्त, विवाह, श्राद्ध, और तीर्थ इन छ स्थानोंमे ब्राह्मण गुरु है परन्तु प्रभु प्राप्त कर दीक्षा देनेंके समय वैष्णवही गुरु हो सकता है ।

महाकुल प्रसूतोऽपि सर्व यज्ञेषु दीक्षितः ।
सहस्त्र शाखाध्यायी च न गुरुस्यादवैष्णवः ॥

उत्तम कुल प्रसूत हो, अनेक यज्ञान्त स्नानकृत हो, वेदकी हजारों शाखाओंको पढ़ा हुआ हो, परन्तु यदि अवैष्णव है तो वह गुरु नही हो सकता ।

स्मृतिकार लिखते हैं कि—

षट्शास्त्री हि भवेद्विप्रो वेद वेदान्त पारगः ।
अवैष्णवो गुरुर्नस्याद्वैष्णवः श्वपचो गुरुः ॥

षट्शास्त्र और वेद वेदान्त विशारद ब्राह्मण भी अवैष्णव हो तो उसे गुरु न करना चाहिये और वैष्णव जन प्रभुका सच्चा प्यारा भक्त यदि नीच कुलोत्पन्न हो तो भी वह गुरु होने योग्य है । शास्त्रकारोंने तो वैष्णवताको उच्च अट्टालिका कर चढ़ा दिया है देखोने महर्षिगण क्या कहते हैं !

दुर्लभा वैष्णवी दीक्षा दुर्लभः स्मृति सङ्ग्रहः ।
दुर्लभः शिष्ट संसर्गो दुर्लभा भक्तिरुच्यते ॥

वैष्णवी दीक्षा दुर्लभ है । वैष्णवी दीक्षा विना जीवका कल्याण होना भी दुर्लभ है । और प्रभु भक्ति परम दुर्लभ है ।

विना श्री वैष्णवी दीक्षा प्रसादं श्री गुरोर्विना ।
विना श्री वैष्णवं धर्मं कथं मुक्तिमवाप्नुयात् ॥

विना वैष्णवी दीक्षाके विना श्री गुरु कृपाके और विना श्री वैष्णव धर्मके मनुष्य कैसे भक्ति प्राप्त कर सकता है ? स्कंध पुराणमे लिखा है—

ते नराः पशवोलोके किं तेषां जीवने फलम् ।
यैर्नलब्धा हरेदीक्षानाराध्यो जगदीश्वरः ॥

वह मनुष्यका जीवन पशुवत् है उसके जीनेसे क्या लाभ ? जो श्री वैष्णवी दीक्षा ग्रहण नही करता है और प्रभुका स्मरण नही करता है। श्रुति भी कहती है—

वैष्णवो भवति विष्णुर्वै यज्ञः स्वयमेवैनं।
तद्देवतया स्वेन छन्दसा सम्वर्द्धयति ॥
(ऐत० ब्रा० अ० ३ खं० ४)

विष्णु दीक्षा ग्रहण करनेंसे ही यह पुरुष वैष्णव होता है, यज्ञ नाम विष्णुका है विष्णु देवता आप अपनी स्वतन्त्रताद्वारा उस पुरुषको जिसने वैष्णवी दीक्षा ली है वैष्णव हुआ है उसकी वृद्रि करते हैं-

इत्यादि प्रमाणोंसे वैष्णवी दीक्षा ही दीक्षा मानी जाती है। और वैष्णवी दीक्षा ही श्रेयस्कर है ऐसा विदित होता है।

आलोड्य सर्वशास्त्राणि पुराणानि च सर्वशः।
तदर्थमाचरेद्यस्तु स आचार्य्य इतीरितः॥
सद्धर्म शासको नित्य हरिभक्तिपरायणः।
सम्प्रदायी कृपापूर्णो विरागी गुरुरुच्यते॥
स्वयं वा भक्ति सम्पन्नो ज्ञानवैराग्यभूषितः।
स्वकर्मनिरतो नित्यमर्हत्याचार्य्यतां द्विज॥

हे द्विज ! जो समस्त शास्त्र और पुराणोंका मथन करके उसका सार निकालकर तदनुकूल आचरण करनेवाला हो वह आचार्य कहलाता है। सद्धर्मशासक, हरिभक्ति परायण, सम्प्रदायी, कृपापूर्ण, विरक्त, स्वयम्

भक्तिसम्पन्न, ज्ञान वैराग्यादिक युक्त, और कर्तव्यनिष्ठ हो वही आचार्यताके योग्य हो सकता है ।

ये हैं श्री सद्गुरु महाराजके संक्षिप्त गुण, प्रत्येक जीवको उचित है ऐसे सद्गुणी सद्गुरुके शरण जाकर भगवत्तत्वको समझे । श्री गुरु दीक्षा लीये विना मनुष्य आगे बढ़ नही सकता है । श्रीगुरु शरणागति प्रभु प्राप्तिकी नींव है । नवधाभक्ति, प्रेमाभक्ति, प्रभु प्रपत्ति ये सब इसीके उपर ठहरे हुए हैं जैसे नींव विना मकान नही ठहर सकता, जड विना झाड नही रह सकता उसी तरह आचार्याभिमान विना भक्ति, प्रपत्ति, ज्ञान, वैराग्यादिक ठहर नही सकते । प्रभु प्राप्त हो नहि सकते यथा—भारद्वाज संहितायाम् ।

न जन्मतो नाध्ययनान्नयज्ञान्न तपः श्रमात् ।
न दानादश्नुते ब्रह्म गुरूपसदनं विना ॥

परब्रह्म प्रभुकी प्राप्ति उत्तम कुलमे जन्म होनेंसे, पढने, लिखनेंसे, यज्ञसे, तपसे, दानसे, अनेक प्रकारके परिश्रमसे नही हो सकती है वह तो केवल श्री गुरु शरण होनेसे ही प्राप्त होती है ।

अतो गुरुं प्रणम्येवं सर्वस्वं विनिवेद्य च ।
गृह्णियाद्वैष्णवं मन्त्रं दीक्षापूर्वं विधानतः ॥

(विष्णुयामल)

इस लिये श्री गुरुदेवको नमस्कार कर, सर्वस्व श्री गुरु समर्पण कर, दीक्षापूर्वक वैष्णव मन्त्र ग्रहण करना चाहिये।

दीक्षा शब्दका अर्थ है–

दिव्यं ज्ञानं यतोदद्यात्कुर्य्यात्पापस्य संक्षयम् ।
तस्मद्दीक्षेति सा प्रोक्ता दैशिकैस्तत्व कोविदैः ॥

जिसकेद्वारा दिव्यज्ञान प्राप्त हो, पापोंका विनाश हो तत्त्ववेत्ता आचार्य उसे दीक्षा कहते हैं।

बहुतसे जड कर्माभिमानी ब्राह्मण, स्मार्त, वैष्णवोंको वर्णाश्रम हीन पतित बतलाते हैं। परन्तु वह नही जानते हैं कि वर्णाश्रमका मूल वेद है उन वेदोंने ही वैष्णवधर्मको सर्व श्रेष्ठ बताया है और दीक्षा ग्रहणकरनेवाला प्रत्येक नर द्विज हो जाता है, ऐसा आदेश किया है। यथा–

यथैतद्ब्रह्मणस्यदीक्षितस्य ब्राह्मणो दीक्षिष्टेति दीक्षामावेदयन्त्येवमेवैतत्क्षत्रियस्य।

(ऐत० ब्रा० अ० ३४ खं० ७)

जेसे ब्राह्मणके दीक्षाके समय आवेदनादि करते हैं कि अमुक ब्राह्मणने दीक्षा ली, वैसे क्षत्रियको भी इसी श्रुतिके भाष्यमें आपस्तम्ब सूत्र है कि––

"ब्राह्मणो वा एष जायते यो दीक्षते, तस्माद्राजन्य वैश्योपि ब्राह्मण इत्येवावेदयति"

जो दिक्षा लेता है वह ब्राह्मण होजाता है। इसी लिये क्षत्रिय और वैश्योंको भी दीक्षा लेने पर ब्राह्मण कहकर आवेदन करते हैं।

यथा काञ्चनतां याति ताम्रो रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥

जैसे रसके विधानसे ताँबा सुवर्ण बन जाता है उसी तरह दीक्षा विधानसे मनुष्य द्विज बन जाता है। श्री राम मन्त्रमें तो सर्वाधिकार है ऐसा शास्त्रकारोंका मत है यथा—

सर्वेषामधिकारो वै ज्ञातव्यो देशिकोत्तमैः।
इत्याद्या श्रुतयः सन्ति स्मृतयश्चसहस्रशः॥
एतदेव विनिर्मुक्तेः रुद्रः कथयति स्वयम्।

श्रीराम मन्त्रमें सबका अधिकार है ऐसा प्रत्येक आचार्यको मानना चाहिये, ऐसा श्रुति और हजारों स्मृतियें कहती हैं, भगवान् शङ्करजी मुक्तिके लिये श्रीराम मन्त्र अन्तकालमें सबको देते हैं।

यही कारण है कि स्त्री, शूद्र तथा अन्त्यज भी वैष्णवी दीक्षा ग्रहण करके परम पदको प्राप्त हुए हैं। महा नीच पतित चाण्डालादिकको तारण करनेकी प्रबल शक्ति है तो केवल श्री वैष्णवी दीक्षामें ही है, अतः प्रत्येक मनुष्यको श्रीराम भक्त होना ही परमोचित है। और श्रीराम प्रपत्ति (वैष्णवी दीक्षा) मनुष्य जब चाहे तब ले सकता है—यथा—

न तीर्थं न व्रतं होमं न स्नानं न जपः क्रियाः।
यदैवेच्छेत्तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुसारतः॥
कालदष्टं जराग्रस्तं नानाव्याधि समन्वितम्।
भय मोहातुरंक्लिष्टं सद्यो दीक्षा प्रदापयेत्॥

इत्यादि वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि वैष्णव धर्म वैदिक है उसमे सर्वाधिकार है और सुलभ हैं। अस्तु—दीक्षाके विधानमें शास्त्रकारोंने पञ्च संस्कारका विधान लिखा है—यथा—

तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं शरेण चापेन तथोर्ध्वपुण्ड्रम्।
श्रुति श्रुतं नाम च मान्त्रमालिके संस्कार भेदाः परमार्थ हेतवः॥
(वैष्णवमताब्जभास्कर)

तप्त धनुषबाणके द्वारा दोनों भुज मूलोंको अङ्कित करना, उर्ध्व पुण्ड्र तिलक धारण करना, वैष्णवता सूचक शुभ नाम रखना, श्रीराम मन्त्र प्रदान करना और तुलसीकी पवित्र कण्ठी धारण करना ये मोक्षके दाता वैष्णवी दीक्षाके पञ्च संस्कार हैं। ऋग्वेदकी श्रुति कहती है—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनुर्न तदामो अश्नुते श्रृतास इद्वहन्तस्तत समासत॥

हे ब्रह्माके स्वामिन्! आप समर्थ हैं अतः सर्वव्यापक हैं ऐसे व्यापक आपका परम विस्तृत वज्रसे भी रक्षण करनेवाला जो आपका धनुष है उस धनुसको तपाकर जिसका बाहू मूल चिन्हित नही होता वह अदग्ध पुरूष उस ब्रह्म स्वरूपको (आपको) प्राप्त नही कर सकता और दिव्यायुधोंसे तप्त तनु आपको प्राप्त कर लेता है। यहां पवित्र शब्दका यौगिक अर्थ करनेंसे धनुष अर्थ होता है। बाण, शंख चक्रादिक विधया प्राप्त होते हैं और "**पवित्रं चरणं चक्रं**" इस वचनसे पवित्रका अर्थ चक्र करनेंसे धनुष, बाण, शंखादिक उपलक्षणतया प्राप्त होते हैं।

श्री तुलसीकृत रामायणके प्रसिद्ध टीकाकार महात्मा रामचरण-दासजीने "श्रीरामनवरत्नसार संग्रह" नामक पुस्तकमें—यजुर्वेद उत्तरार्ध अध्याय २९ मन्त्र ३९ की श्रुति लिखती है कि—

धन्वना गा धन्वनाऽऽजिञ्जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम। धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥

अस्यार्थ—धन्वना, धनुषङ्किता इतिशेषः अतस्तीव्राः पटवः परब्रह्मप्राप्तिप्रतिबन्धकीभूत पाप निरसने समर्थावयं समदः कामादिभिर-नुष्ठितान् संग्रामान् जयेम। नन्विन्द्रियाणां विषयौन्मुख्ये कथं कामादि जयः इत्याकांक्षयामुच्यते। धन्वना धनुषा तदङ्कन प्रभावेणैव गाः इन्द्रि-याणिजयेम। इन्द्रियजयेन च प्रसंख्यानाख्यावस्था लाभे धन्वना आजिं अजन्ति गच्छन्ति, परब्रह्मगन्तारो, अस्मिन्निति आजिमार्गः तं जयेम धनुरङ्कन प्रसन्नेश्वर प्रदर्शितया सुषुम्नया नाडया बहिर्निष्क्रम्य अर्चिरादि मार्गेण परब्रह्म गच्छेम इत्यर्थः। नन्वनिर्ह्लन मायान्वयस्य कथमीश्वर प्रसत्तिरित्या शङ्काह, धनुः कर्तृ शत्रुभूतमनादिमाया सम्बन्धस्य संसार पातनौन्मुख्य अपकृणोति अपनयति नाशयति यद्वातस्यमनोरथाभावं सम्पादयति ननु सत्सुसञ्चितादिकर्मसु कथं माया सम्बन्धस्य संसारपा-तनौन्मुख्यं विनाश इत्याह धन्वना धनुषा सर्वा प्रदिशाः सर्वदिग्वर्ति नाना योनि, जन्म, प्रदान समर्थानि सर्वाणि कर्माणि जयेम नाशयाम इत्यर्थः।

भाषा—हम धनुषबाणसे अङ्कित होंगे तो परम समर्थ होकर श्रीराम परब्रह्मकी प्राप्तिमे प्रतिबन्धकी भूत जो पाप उन सबोंका विनाश

करनेमे समर्थ होकर समदः अर्थात् कामादिकोंके किये हुए युद्धमे जयेम अर्थात् जातेंगे। यदि कहो कि इन्द्रियें उन्मत्त हो रहीं हैं तो कामका जय कैसे करोगे? तो हम धनुषके अङ्कनके प्रभावसे जीत लेवेंगे पुनः इन्द्रियजयद्वारा जब प्रसंख्यानाख्यानाख्य अवस्था प्राप्त होगी तब हम परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये प्रभुप्राप्तिमार्गमे चलेंगें। धनुषाङ्कित होनेंसे प्रभु प्रसन्नताद्वारा सुषुम्ना नाडीद्वारा बाहर निकलकर अर्चिरादि मार्गसे परब्रह्मको प्राप्त कर लेंगे। यदि कहो कि मायाका आवरण रहते हुए प्रभु प्राप्ति कैसे होगी? तो हम धनुषाङ्कनके प्रभावसे माया निबारण कर देगें, मायाके मनोरथोंका सर्वथा अभाव कर देगें। यदि कहो कि सञ्चितादि कर्म रहते हुए मनोरथोंका नाश कैसे होगा? तो हम धनुषाङ्कन प्रभावसे समस्त दिशाएं जीत लेगें हमारे लिये कोई भी प्रकारका प्रतिबन्ध रहेगा ही नही—हम नाना योनि प्रद जन्ममरणप्रद कर्मोंका विनाश कर देवेंगे।

चक्राङ्कित जनानां तु चापमुद्रा अपेक्षिता।
चाप बाणाङ्कितानां तु चक्रचिन्हं विवर्जितं॥
चाप बाणाङ्कितं दृष्ट्वा यदि चक्राङ्कितो नमेत्।
स लभेदतुलं पुण्यं विपरीतात्तु पातकम्॥

(सनत्कुमार अ० ८, श्लो० १४)

शंख चक्र चिन्हधारीको धनुषबाणादि चिन्होंकी आवश्यता है परन्तु चापबाणधारीको चक्रादि चिन्होंकी कोई आवश्यकता नही है। धनुषाङ्कित मनुष्यको यदि चक्राङ्कित नर प्रणाम करे तो नमस्कार

करनेसे अतुलनीय पुण्यं प्राप्त होता है और नमस्कार न करै तो अतुलनीय पाप प्राप्त होता है ।

चक्राच्छतगुणं प्रोक्तं फलं बाणादि धारणे।
सर्वेषां रामभक्तानां राममुद्राभि धारणम् ॥
(अगस्त्य संहिता)

द्वितीय संस्कार है उर्ध्वपुण्ड्र । उर्ध्वपुण्ड्र तिलकके लिये शास्त्र कहते हैं।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा शुभ्रं यो धत्ते नित्यमात्मवान्।
तस्य प्रसादं कुरुते विष्णुर्लोकनमस्कृतः॥

जो भाग्यशाली मानव मृतिकासे शुभ्र स्वेत ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है उसके ऊपर प्रभु श्रीराम प्रसन्न होते हैं और अन्तमे भगवान्के लोकमें जाकर वास करता है—

ऊर्ध्वपुड्रो मृदा शुभ्रो ललाटे यस्य दृश्यते।
चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः॥
सर्ववर्णेषु मद्भक्ताः कुर्वीरन्नूर्ध्व पुण्ड्रकम्।
ब्राह्मणा श्च विशेषेण जपहोमपरायणाः॥
गृहस्थो वानप्रस्थ श्च ब्रह्मचारी तथा यतिः।
अवश्यं धारयेत्पुण्ड्र पुण्यमूर्ध्व सुशोभनम्॥

और—

नित्य नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्रुति चोदितम्।
ऊर्ध्वपुण्ड्र विहीनस्य सर्वं तन्निष्फलं भवेत्॥

श्वेत मृत्तिकासे किया हुआ उर्ध्वपुण्ड्र जिसके ललाटमें दिखाई दे वह चाण्डाल भी विशुद्धात्मा है और पूज्य है।

भगवद्वक्य है किहमारे भक्तोंको अवश्य ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये भले वह किसी भी वर्णके हो और ब्राह्मणोंको तो अवश्य ही ऊर्ध्वपुण्ड्रधारण करना चाहिये।

गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और संन्यासी सबको ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये।

नित्य, नैमितिक, तथा काम्य कर्म जो श्रुतियोंमे कहे हैं वह सब कर्म विना ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किये करे तो निष्फल होजाते हैं।

तृतीय संस्कार नाम है—

यस्य वै वैष्णवं नामं नास्ति माङ्गल्यकारकम्।
अनामकः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः॥

योजयेन्नाम दासान्तं भगवन्नाम पूर्वकम्।
तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्य भागीभवेन्नरः॥

जिसका मङ्गल करनेवाला प्रभु सम्बन्धी नाम नही है वह समस्त शुभ कर्मोंसे वहिस्कृत है अर्थात् वह अनामक पुरुष कोई शुभ कर्म नहीं कर सकता। इस लिये प्रभु नाम आगे रखकर दासान्त (जिसमे प्रभुके प्रति सेवक भाव प्रदर्शित हो ऐसा) नाम रखना चाहिये।

ऐसे नामवालोंके पाप नाश होजाते हैं और वे महान पुण्यके भागी होते हैं।

चौथा मन्त्र संस्कार है—

मन्त्ररूपं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः।
रकारादि मकारान्तं मन्त्रंषड्र्णसंयुतम् ॥

हे नारद ! सुनो, मैं आपको मन्त्रराज बतलाता हूं 'रा, आदि और 'म' है अन्तमे जिसके ऐसा षड्क्षरवाला श्री राम तारक मन्त्र ही परम मन्त्र है।

रामोऽन्तो वन्हि पूर्वो नमोन्तः स्यात् षडक्षरः।
तारको मन्त्रराजोऽयं संसारविनिवर्तकः ॥

राम शब्दके चतुर्थी विभक्तिका एक वचन मध्यमें लगा है और अग्निबीज है आगे और नमः है अन्तमें, ऐसा षडक्षर श्रीरामतारक मन्त्र संसारसे विमुक्त करनेवाला है।

लब्ध्वा षडक्षरं मन्त्रं रामस्य परमात्मनः।
मन्त्रान्तरान् प्रयत्नेन वर्जयेन्मन्त्र तत्त्ववित् ॥

राममन्त्रं समादाय योऽन्यमन्त्रं समिच्छति।
गृहीता प्राप्नुयात्पापं दाता च नरके व्रजेत् ॥

श्रीराम मन्त्रको प्राप्त करके अन्य तुच्छ मन्त्र न लेने चाहियें। राम मन्त्रको प्राप्तकर जो दूसरे मन्त्र लेता है वह पापका भागी होता

है और देता है वह घोर नरकमें जाता है क्योंकि राम मन्त्र सबका राजा है उसके रहते हुए दूसरे मन्त्र लेना उसका अपमान करना है, और रामनाम, राममन्त्र, रामधाम रामचरित्र और रामरूपका अपमान करनाही महा घोर पाप है।

पाँचमा संस्कार तुलसी माला है—स्कान्दे

तुलसीमालिकाधारी पुनातिभुवनत्रयम् ।
प्रणमन्ति सुरास्तस्मै शिवशक्रयमादयः॥

अगस्त्य संहितायाम्—

त्रयो वेदास्त्रयो देवास्तिस्रः संध्यास्त्रयोग्नयः।
सदा कुर्वन्ति माङ्गल्यं तुलसी यस्य मस्तके॥

तुलसी माला धारण करनेवाला तीनों भुवनोंको पावन करता है शिव, इन्द्र, यमादि देवता तुलसीधारी मनुष्यको प्रणाम करते हैं।

तीनों वेद, तीनों देव, तीनों सन्ध्या, तीनों अग्नि और समस्त देवता तुलसी मालाधारी मनुष्यका मङ्गल करते हैं।

यज्ञसूत्रं विना विप्रा वेद हीनाः क्रिया यथा।
सत्यहीनं यथा वाक्यं माला हीना न वैष्णवा॥

जैसे यज्ञोपवीतके विना ब्राह्मण—ब्राह्मण नही है, वेद वेहीन क्रिया—क्रिया नही है,सत्य रहित वाक्य—वाक्य नही है, वैसे तुलसीमाला विना वैष्णव—वैष्णव नही है।

इस प्रकार गुरु द्वारा पञ्च संस्कार सम्पन्न होकर गुरु सेवा करनेवालेको असंख्य धन्यवाद है । शास्त्र कहते हैं—

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रंधन्यं कुलोद्भवम् ।
धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद्गुरु भक्तिमान् ॥

उसकी माता धन्य है उसका पिता धन्य है उसका गोत्र धन्य है उसका कुल धन्य है जिस पृथवी पर वह प्रकट हुआ वह वसुधा धन्य है और गुरु भक्तिवान शिष्य धन्य धन्य और धन्य हैं ।

। इति सदाचार्य्याभिमान-उपाय ।

विरोधिस्वरूप

अनात्मन्यात्म बुद्धिस्तु स्वात्मशेषित्व भावना ।
भगवद्दासवैमुख्यं तदाज्ञोल्लङ्घनं तथा ॥१५॥

ब्रह्मेशेन्द्रादिदेवानामर्चनं वन्दनादिकम् ।
असच्छास्त्राभिलाषश्च सच्छास्त्रस्यावमाननम् ॥१६॥

मर्त्यसामान्यभावेन गुर्वादौ नाति गौरवम् ।
स्वातन्त्र्यं चाप्यहङ्कारो ममकारस्तथैव च ॥ १७॥

द्वादशी विमुखत्वं च ह्यकृत्यकरणं तथा ।
ज्ञेयं विरोधिरूपं तु स्वस्वरूपस्य सर्वदा ॥ १८॥

(१) अनात्म नश्वर देहमें आत्म बुद्धि रखना ।

(२) अपने आत्माको प्रभु श्रीरामको छोडकर अन्य किसीका शेषी मानना, ।

(३) भागावतोंसे वैष्णवोंसे विमुखता रखनी, उनकी निन्दा करनी उनसे द्वेष रखना, और उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना ।

(४) ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादिक देवतान्तरोंका अर्चन वन्दन करके अपने कल्याणकी कामना रखना ।

(५) खोटे शास्त्रोंमे अभिरुचि करना, और उनको मान्य देना।
(६) सच्चे शास्त्रोंका अपमान करना।
(७) श्री गुरुदेवको मनुष्यवत् समझना, उनके प्रति विशेष भाव-प्रेम श्रद्धा या विश्वास न रखना।
(८) स्वतन्त्र बन जाना, गुरुजनोंके दबावमें न रहना, अहङ्कारी होजाना, "ये मेरा है" "ये मेरा है" इस प्रकार जगत्की नश्वर चीजोंमे ममता रखना।
(९) एकादशी व्रतका त्याग करना।
(१०) अकरणीय कार्योंको करना. शुभ कार्योंका त्याग करना-

ये दश विरोधी इस जीवात्माके हैं, जो जीव भगवान् श्रीरामकी प्राप्ति करना चाहे उसको इन विरोधियोंका प्रयत्नतः त्याग करना चाहिये। क्योंकि जब तक समस्त प्रतिबन्धकोंका नाश न होजाय तब तक मनुष्य कोई भी अभीष्टकी प्राप्ति नही कर सकता है। और जब तक शत्रुओंको जानते नही है तब तक उसका नाश होनाभी असम्भव है अतः अब इन विरोधियोंका कुछ वर्णन लिखता हूं।

(१) अनात्मदेहमें आत्मबुद्धि

यह देह नश्वर है, आजतक कोई शूर, वीर, धीर, धनी, राजा या रङ्क ऐसा नही हुआ है जिसने कि अपनी देहको अविचल रक्खा हो, सबको एक रोज कालका कलेवा होनाही पडता है तो फिर इसकोही सर्वस्व मान बैठना, उसके पालन पोषणमे अपने आत्माका नाश कर देना कितनी भारी मूर्खता है।

यथामेघवितानस्था विद्युल्लेखातिचञ्चला।
आयुरप्यग्नि सन्तप्त लोहस्थ जल विन्दुवत्॥

(अध्यात्म रा०)

जैसे मेघ वितानस्थ विजुली अत्यन्त क्षणिक है जैसे परम तप्त लोह पर गिरा हुआ जलबिन्दु क्षणिक है वैसे ही यह देह भी परम क्षणिक है। ऐसे क्षणिक देहके सुखोंमे फँसा हुआ जीव विचारा कुछ नही कर सकता है—

संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषिते क्षणम्।
ग्रस्तं कालाहितात्मानं कोऽन्यत्रातुमिहेश्वरः॥

(भागवत)

संसार कूपमें पडे हुए, दैहिक सुखकी इच्छासे सांसारिक विषयोंमे लिप्त ऐसे जीव महा कराल काल व्यालके मुखसे अपनी रक्षा करनेंमे कब समर्थ हो सकते हैं। और

आत्मेन्द्रियाद्यधिष्ठाता करणं हि सकर्तृकम्।
शरीरस्य न चैतन्यं मृतेषु व्यभिचारतः॥

(कारिकावली)

आत्मा समस्त इन्द्रियोंका अधिष्ठाता है और कर्ता है। यह शरीर आत्मा नही हो सकता क्योंकि आत्मा नित्य है और देह मरणादिक प्राप्त करता है। यदि शरीर नित्य हो तो मृतकादिक भावोंको क्यों प्राप्त होता ? गीता शास्त्रका भी सिद्धान्त है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

(गीता० २, २२)

यह आत्मा अजन्मा है, अमर है, ये कभी न हुआ है और न होगा, यह अज है, शाश्वत है, नित्य है, शरीर नाश होजाता है परन्तु आत्माका नाश नही होता है।

इत्यादि प्रमाणोंसे देह अनित्य और नश्वर माना जाता है और प्रत्यक्ष इसकी नश्वरता अनेंकोवार दृष्टिगोचर होती है अतः जड और नश्वरमें आसक्त प्राणी कदापि चैतन्य स्वरूप प्रभुकी प्राप्ति नही कर सकता है। इस लिये प्रभु भक्त देहासक्त नही होते हैं—भगवान्‌का वाक्य है कि—

मद्भक्तः सरितां पतिं चुलुकवत् खद्योतवद्भास्करम्,
मेरुं पश्यति लोष्टवत् किमपरं भूमेः पतिं भृत्यवत्।
चिन्तारत्नमणिं शिला सकलवत् कल्पद्रुमं काष्टवत्,
संसारं तृणराशिवत्किमपरं देहं निजं भारवत्॥

मेरा भक्त समुद्रको क्षुद्र चुल्लुके जल समान, भास्करको खद्योतके समान, मेरूको लोह समान, चक्रवर्तिको नौकर समान, चिन्तामणिको पाषाणवत्, कल्पवृक्षको काष्टवत्, संसारको घासके समान और प्रभु प्राप्ति विरोधक नश्वर गन्दे देहको भारके समान समझता है। इस लिये प्रत्येक प्रभु प्रेमलोलुप भक्तोंको देहको आत्मा मान न बैठना चाहिये परन्तु देहको नश्वर समझकर उसका मोह त्याग परम पिता परमेश्वरकी रमणीय चरण सेवामें लग जाना चाहिये।

(२) **स्वात्मशेषित्व भावना** दूसरा प्रत्यवाय है आत्माको अन्य देवतान्तरोंका शेषी मानना—

यह जीव ईश्वरका ही अंश है, ईश्वरका ही सेवक है, ईश्वरको छोडकर अन्योंका सेवक बननेंसे यह अवश्य दण्डच समझा जायगा। प्रभु कहते हैं कि

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(गी० १५, ७)

यह जीव मेराही सनातन अंश है

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

(गीता० ७, ४)

मेरी आठ प्रकारकी प्रकृति अपरा है और हे महाबाहो! दूसरी मेरी परा प्रकृति श्रेष्ठ प्रकारकी प्रकृति जीव रूपेण है, वह अनन्त हैं, और उन्हीसे यह समस्त जगत् धारण होता है। हारितस्मृतिमे लिखा है कि—

विष्णोर्दास्यं पराभक्ति येषां तु न भवेद्धृदि।
तेषामेवहि संस्पष्टं निरयं यान्ति वै नृप॥

हे नृप! मैं प्रभुका अंशी हूं, दास हूं, सेवक हूं, ऐसा भाव जिसके हृदयमें नही है वह निश्चय ही नरकमें जाता है।

श्रुति कहती है "**यस्यात्मा शरीरम्**"—जिस परमेश्वरका आत्मा शरीर है। "**य आत्मनि निष्ठन् य आत्मानमन्तरो यमयति स ते आत्मान्तर्याम्यमृतः**" जो आत्मामें स्थित है जो

आत्माके अन्दर रहकर नियमन करता है जो आत्माका अन्तर्यामी है इत्यादि श्रुति वचनोंसे और—

"दासभूताः स्वतः सर्वे ह्यात्मनः परमात्मनः।":

इत्यादि स्मृति वचनोंसे आत्मा ईश्वरका शेषी है ऐसा प्रमाणित होता है। इस शेषित्वभावको त्यागकर, मैं सर्वेश्वर प्रभुका नियाम्य हूँ शेषी हूँ इस प्रकारकी पवित्र भावनाओंको त्याग करके, भूत, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी, चुडैल, भैरवादिक तामस देवोंका आश्रय ग्रहण करना यह परस्वरूपका भारी विरोधी है। इष्ट देवकी मूर्तिमें, अवतारमें, गुणोंमे, यत्किञ्चित् भी न्यूनता देखना परस्वरूप विरोधी कहलाता है अतः इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

(३) "**भगवद्दास वैमुख्यं**" प्रभुके दासोंसे विमुखता रखनी उनकी निन्दा करना, उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना यह चौथा विरोधी है।

जिन भक्तोंके हाथ भगवान् बेदाम विक जाते हैं, जिसकी रक्षाके लिये प्रभु सर्वदा सचेत रहते हैं, उनका अपमान करके प्रभुके प्यारे अभिन्न हृदय भक्तोंके हृदय दुःखा करके यदि प्रभुकी प्राप्ति करना चाहें तो वह कल्पकोटि शतैरपि हो नही सकती है। यह दोष जीव स्वरूपका प्रबल प्रतिबन्धक है।

जड देहमें आत्मबुद्धि और मैं ही ब्रह्म हूं ऐसी भावना तथा हरिगुरुसन्तोंकी अवहेलना यह जीव स्वरूपके विरोधक हैं अतः इन दोषोंका बहिस्कार करना चहिये।

(४) **ब्रह्मेशेन्द्रादि देवानामर्चनं वन्दनादिकम्** । मैंने बहु-तरोज प्रभु सेवाकी परन्तु प्रत्यक्ष कुछ भी प्रभाव माळम न हुआ, अतः अब अन्य देवताओंकी सेवा करूं ऐसा मानकर ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादिक अन्य देवताओंको इष्ट मानकर सेवा करना पाँचमा प्रति-बन्धक है।

जिस प्रभुकी वेद, पुराण, शास्त्र, इतिहासादिक मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हैं, और जिस प्रभुको सर्वोत्तम बतलाते हैं, उनको त्याग अन्योंकी उपासना करना कितनी भारी मूर्खता है। भक्ति, प्रपत्ति, आचार्याभिमानादि त्यागकर अन्य उपाय ग्रहणकर अपने इष्टको त्याग दूसरोंद्वारा कल्याणकी कामना करनी यह उपाय विरोधक है, अतः अनन्यभावेन सतत सर्वेश्वर प्रभुका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये, और उन्हीको सेव्य, पूज्य, गेय, और ध्येय मान लेना चाहिये। अन्य देवतान्तरोंके आश्रयको प्रत्यवाय मानकर सर्वथा त्याग देना उचित है।

(५) "**अच्छास्त्राभिलाषश्च**" खोटे शास्त्रोमें अभिलाषा रखनी पांचमा विरोधक है।

जो मिथ्या हैं, किसी अधर्मीके रचे हुए हैं, उन खोटे शास्त्रोंमें विश्वास कदापि नही करना चाहिये, उनको मान्य देनेंसे जीवका हृदय कलुषित होजाता है, हृदयकी शुद्धि विना ईश्वरीय कृपा प्राप्त होती नही है, इस लिये असत्–झूठे शास्त्रोंका ग्रन्थोंका त्याग करना चाहिये।

(६) "**सच्छास्त्रस्यावमाननम्**" सत्य शास्त्रोंका अपमान करना छठवाँ विरोधी है।

जो शास्त्र हमारे पथ प्रदर्शक हैं, सीधे रास्ते पर चढ़ानेवाले हैं, जिसमें हमारे पूर्वजोंने अपने मस्तिष्कके उत्तमोत्तम विचार भरे हैं, ऐसे रहस्यमय तत्वमय शास्त्रोंका अपमान करना महा पाप है, आज हम लोग जिनके निगूढ़ तत्त्वोंको, मर्मोंको, समझ भी नही सकते हैं ऐसे प्रभु प्रेमसे परिपूर्ण ग्रन्थोंका अपमान करना परम पाप है अतः उनका मान्य करनेमें हमारा पूर्ण हित समावेशित है।

(७) " मर्त्य सामान्य भावेन गुर्वादौनास्ति गौरवम्।

श्रीगुरुदेवको सामान्य मनुष्यवत् समझना यह सातवाँ प्रतिबन्धक है, हम सदाचार्य्याभिमान प्रकरणमें यह बतला चुके हैं कि **साधकके लिये श्रीगुरुसे बढ़कर अन्य श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है** विना आचार्योपासनाके मोक्ष धामकी प्राप्ति दुर्लभ है।

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्यातु मध्यमाम्।
गुरु शुश्रूषया त्वेव ब्रह्मलोके समश्नुते॥
गुर्वर्थे धारयेद्देहं गुर्वर्थे धनोपार्जनम्।
गुरोः शुश्रूषणं कार्य्यं देह प्राणधनैरपि॥

गुरुके लिये ही देह धारण करे गुरुके लिये ही धनोपार्जन करै धन, प्राण और शरीरसे श्री सद्गुरुकी सेवा करै।

ये न कुर्वन्ति गुर्वाज्ञां पापिष्ठास्ते नराधमाः।
न तेषां नरकक्लेशान्निस्तारो मुनिसत्तम॥

हे मुनिसत्तम! जो पापी श्रीआचार्यकी आज्ञाका उल्लङ्घन

करता है, उस पापीका नरकके क्लेशोंसे कभी निस्तार नही होता है। अत एव इस प्रत्यवायका निवारण करनेंमे ही परम कल्याण है।

(८) **स्वातन्त्र्यं चाप्यहङ्कारो ममकारस्तथैव च।**

स्वतन्त्र होजाना, अहङ्कारी होजाना और संसारमे आसक्त हो जाना यह आठवाँ विरोधक है। अतः इसका भी प्रयत्नतः त्याग करना परमोचित है।

(९) **"द्वादशी विमुखत्वं च"** द्वादशीका व्रत न करना यह नवमा विरोधक है।

एकादशीत्यादि महाव्रतानि कुर्य्याद्विविधानि हरि प्रियाण्यथ।

प्रत्येक मनुष्यको एकादश्यादि महाव्रत करने चाहिये। जब एकादशी वेधा हो तब द्वादशीका व्रत करना चाहिये। एकादशीका व्रत ही द्वादशीव्रत कहा जाता है शास्त्रोंका मत है।

वृद्धिर्वापि क्षयं वापि दशम्यादि दिनत्रयम्।
एकादशीं परित्यज्य द्वादशी समुपोषयेत्॥

दशमी, एकादशी, और द्वादशी इन तीन तिथियोंमे यदि कोई तिथि घटी हो या बढ़ी हो तो एकादशी त्यागकर द्वादशी व्रत करना चाहिये। संसारके समस्त पाप एकादशीके रोज अन्नमें वास करते हैं, ऐसा शास्त्रोंका मत है, अतः उसरोज जो कोई अन्न खाता है वह केवल पापमय ही भोजन करता है। इस लिये प्रत्येक मुमुक्षुको द्वादशी व्रत करना चाहिये।

(१०) " अकरणीय करणं तथा " जो कार्य करने योग्य नही है वेद शास्त्र और समाज जिसका निषेध करते हैं उसका आचरण करना दशवाँ प्रत्यवाय है।

जैसे, हिंसा, चोरी, छिनारी, दुर्व्यसन, नास्तिकता आदिक घृणित भाव लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारसे वर्जनीय है उनको करना ईश्वर प्राप्तिकी भारी प्रतिबन्धकता है, अत एव उनका तनमनसे त्याग कर देना ही श्रेयस्कर है।

प्रभुके पवित्र नामका अपराध करना आत्माका महान् विरोधी है पद्म पुराणमें सनत्कुमार कहते हैं कि—

नामाश्रयः कदाचित्स्यात्तरत्येव स नामतः।
नाम्नो हि सर्वसुहृदो ह्यपराधात्पतत्यधः॥

कदाचित् प्रभुका कोई अपराध बन जाय तो पाश्चात्तापपूर्वक दीन बनकर प्रभुनामके शरण जानेसे सर्वसुहृद दीनदयालु भगवन्नाम उसे अपराध मुक्त कर देता है, परन्तु भगवन्नामापराध करनेवालोंका निश्चय ही अधःपतन होजाता है श्री नारदजी पूछते हैं कि—

के तेऽपराधा विप्रेन्द्र नाम्नो भगवतः कृताः।
विनिघ्नन्ति नृणां कृत्यं प्राकृतं ह्यानयन्ति हि॥

हे विप्रेन्द्र ! समस्त पुण्यके हनन करनेवाले, प्रभुप्रेमपन्थसे पतित करनेवाले, कौन कौन अपराध हैं ?

श्रीसनत्कुमार महर्षि कहते हैं कि—

सतां निन्दा नाम्नः प्रथममपराधं वितनुते,
यतः ख्यातिं यातः कथमुपसहेत्तद्विगणनाम्।

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि निखिलं,
धिया भिन्नं पश्येत् स खलुहरिनामाऽहितकरः॥

(१) श्रीभगवन्नामका सर्व प्रथम अपराध है प्रभुप्रिय सन्तजनोंकी निन्दा करना। जिन सन्तजनों द्वारा प्रभुनाम प्रख्यात हुआ है उनकी निन्दा प्रभुनाम कैसे सहन करेगा। सन्तनिन्दा भगवन्नामको असह्य है। यही भगवन्नामका प्रधान अपराध है।

(२) शिव और भगवान् श्रीविष्णुके गुण और नामोंको बुद्धिसे भिन्न देखना यह भी भगवन्नामापराध है।

गुरोरवज्ञा श्रुति शास्त्रनिन्दनं, तथार्थवादो हरि नाम्निकल्पनम्।
नाम्नोबलाद्यस्यहि पापबुद्धि र्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः॥

(३) गुरुकी (नामोपदेष्टाकी) निन्दा करना।

(४) श्रुति शास्त्रादिक धर्मशास्त्रोंकी निन्दा करना।

(५) श्रीहरिनाममें अर्थवादकी कल्पना करना। यह सबसे भयङ्कर अपराध है।

हरिनाममें अर्थवाद करना अर्थात् शास्त्रोंमें जो प्रभु नामकी इतनी प्रचण्ड महिमाका वर्णन है वह केवल अर्थवादमात्र है, प्रशंसामात्र है, वस्तुतः भगवन्नामका इतना भारी महिमा नही है। जैसे किसी बुद्धिशालीको बृहस्पति समान कह दिया जाता है, किसी साधारण राजाकी प्रशंसा करते हुए आपतो इन्द्र समान प्रतापी राजा हैं ऐसा कहा जाता है, वैसे हरिनाम वास्तवमें इतनी महिमावाला नही है, लोगोंकी श्रद्धा दृढ़ हो उसी लिये

भगवन्नामका इतना भारी महत्व वर्णन किया गया है ऐसा अर्थवाद करना भगवन्नामका प्रबलतम अपराध है।

(६) नामके बलसे पाप करना भी नामापराध है। शास्त्रोंमें लिखा है कि नाम जितने पापोंको नाशकर देता है उतने पाप तो निखिल ब्रह्माण्डके पापीजन करभी नहीं सकते हैं। तब हम हमेशाँ, व्यभिचार हिंसा, मद्यपानादिक पाप करें और फिर रामनाम लेलेंगे हमारे पाप तो नाश होही जायँगे। ऐसा मानकर पाप करना नामका प्रचण्ड अपराध है। अवश्य, पूर्वकृत पापोंका और अनजानसे किये पापोंका श्रीप्रभुनाम तत्काल नाश कर देता है, परन्तु मैं ब्राह्मणको मार दूं बाद रामनाम ले लूंगा मुझे ब्रह्महत्या न लगेगी, मैं गायको, स्त्रीको मार दूं फिर राम नाम ले लूंगा मुझे गोहत्या न लगेगी, मैं व्यभिचार चोरी असत्यभाषण इत्यादिक पाप करलूं बाद रामनाम जप करूंगा मेरे पाप नाश हो जायँगे इस भावनासे जो पाप करता है उसकी शुद्धि अनन्त ब्रह्माण्डके अनन्त यमराज मिलकर करना चाहे तो भी वह शुद्ध नहीं हो सकता।

धर्मव्रतत्यागहुतादि सर्व शुभक्रिया साम्यमपि प्रमादः।
अश्रद्धाधाने विमुखे च शृण्वति यश्चोपदेशः स नामापराधः ॥

(७) धर्म, व्रत, त्याग, होमादिक शुभ कर्मोंके समान हरिनामभी एक शुभकर्म है ऐसा मानना, पतङ्गियोंके सदृश (खद्योतके सदृश) शुभकर्मोंको हरिनामरूपी सूर्यकी सदृश समझना नामापराध है।

(८) जो हरिनाम विमुख हैं, अश्रद्धालु हैं उन लोगोंको भगवन्नाम माहात्म्य सुनाना नामजपका उपदेश करनाभी नामापराध है।

श्रुत्वापि नाम माहात्म्यं यः प्रीति रहितो नरः।
अहं ममादि परमो नाम्नि सोप्यपराध कृत्॥

(९) नाम महिमा श्रवण करकेभी जो मूढ़नर प्रभुनाममें प्रेम नही करता है वहभी भगवन्नामका परमापराधी है।

(१०) अहङ्कार और ममतामें ही मानव जीवनकी अमूल्य घडियाँ खोदेना प्रभुनाम स्मरण न करना यहभी नामका अपराध है।

इन नामापराधोंका वर्जन करके (त्याग करके) प्रभुस्मरण करता है वही मनुष्य प्रभु नामके यथार्थ फलकी प्राप्ति कर सकता है।

ये दश नामापराध मनुष्यके घोर विघातक है। प्रत्येक मोक्षकामी मनुष्योंको इन अपराधोंका त्याग करना चाहिये। परन्तु ये अपराध ऐसे सूक्ष्म हैं कि जान अनजानसे प्रत्येक मनुष्यसे हो ही जाते हैं। ऐसी अवस्थामें हमें उन पापोंके अपराधोंके निवारणके लिये कोई उपाय करना चाहिये, इसी लिये महर्षि सनत्कुमारजी साथही साथ दर्शाते हैं कि——

जाते नामापराधे तु प्रमादेन कथञ्चन।
सदा सङ्कीर्तयन्नाम तदेकशरणो भवेत्॥
नामापराध युक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि यत्॥

यदि प्रमादसे या विभ्रमसे श्रीभगवन्नाम अपराध होजाय तो श्रीरामनामके शरण होकर प्रभुनामका सदा कीर्तन करना चाहिये। क्योंकि नामापराध संयुक्त मनुष्यके पापोंका निवारण श्रीप्रभुके नामही करते हैं। निरन्तर अविश्रान्तरूपेग नामस्मरण करनेंसे ही मनुष्यके पापविनाश हो जाते हैं।

ईस प्रकार प्रभुकी प्राप्तिके बन्धक नामापराधोंका प्रयत्नतः त्याग करना ही मनुष्यका प्रधान कर्तव्य है। जो मनुष्य इस प्रकार नामके दश अपराधोंका परित्याग कर प्रभुके जगन्मङ्गल पावन नामका सदा स्मरण करता है सह सुखपूर्वक शीघ्र प्रभुप्राप्ति कर लेता है इसमें कोई भी प्रकारका सन्देह नही है।

काम, क्रोध, लोभ, यह तीन घोर पापी हैं मनुष्यको नरकमें लेजानेवाले हैं, मोह, मद, अहङ्कार, द्वेषादिकको प्रकट करनेवाले हैं। इस लिये मोक्षार्थी तो इन तीनोंका त्याग कर देता है।

जिसका ब्रह्मचर्य्य नष्ट हुआ है वह मनुष्य मुडदेसे भी बेहतर है। कामी पुरुष धन, यश, बल, और पुण्यकी जडों पर कुठाराघात करता है। कामी पुरुष, आलसी, हतोत्साही, अकर्मी, रोगी, और निस्तेज हो जाता है। महर्षि सुश्रुत लिखते हैं।

यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टिः पुष्टिर्बलोदयः।
यन्नाशे नियतो नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम्॥

जिसकी वृद्धिके प्रतापसे, तुष्टि, पुष्टि और बलका उदय होता है और जिसके विनाशसे मनुष्यका विनाश होजाता है जिसके रहनेसे मनुष्यका जीवन है वह वीर्य है। श्रुति कहती है।

"ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत"

" ब्रह्मचर्य और तपद्वारा देवताओंने मृत्युको मार डाला " जिसका ऐसा प्रभाव है जो हमारा इतना हितकर है उसका एक क्षण भरके सुखके वास्ते विनाश कर देना कितनी भारी नालायकी है। डाक्टर फौलरेट लिखते हैं कि—

" हमारे देशमें अनेक युवकोंको बहुत वार स्मरण शक्तिका नाश बेचैनी, मन्दाग्नि, कब्जियत तथा शिर दर्द इत्यादि रोगोंकी शिकायत होती है, उसका वास्तविक कारण इन्द्रिय निग्रहका अभाव है ब्रह्मचर्यका तिरस्कार करनेसे ही इनकी उत्पति होती है। "

डाक्टर लुई कहते हैं कि—अखण्ड ब्रह्मचर्यसे मनुष्यके शरीरमें एवं मनमें पुष्टि होती है।

इस लिये पारमार्थिक और लौकिक, शारीरिक तथा मानसिक उन्नतिका मुख्य कारण ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये, नियमित और अल्पाहार, व्यायाम, प्राणायामादिद्वारा संयम नियम पालनद्वारा इन्द्रियोंका निरोध करना चाहिये और दुष्ट सङ्कल्पोंका अत्यन्ताभाव कर देना चाहिये, किसीने ठीक ठीक कहा है

काम जानामि ते मूलं सङ्कल्पात्किल जायते।
सङ्कल्पे तु मया त्यक्ते कथं त्वं मयि जायसे ॥

हे काम! मैं तेरा मूल खूब जानता हूं, तू सङ्कल्प जन्य है, आजसे मैं त्वद्विषयक सङ्कल्पोंका ही नाश कर देता हूं, देखूं भला तू अब कैसे उत्पन्न होता है?

कामदेव धर्म कर्म सबको भ्रष्ट कर देता है भर्तृहरिजीने क्याही अच्छा कहा है—

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां,
लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ।
भ्रूचापाकृष्ट मुक्ताः श्रवणपथ गता नीलपक्ष्माण एते,
यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टि बाणाः पतन्ति ॥

मनुष्य तभीतक सन्मार्गपर आरूढ़ है, तभीतक इन्द्रियां वशमे हैं तभीतक लज्जा है तभीतक विनय है, जबतक श्रवणतक आकृष्ट करके भृकुटीके धनुष पर चढ़ाकर छोडे हुए लीलावतीके दृष्टि-बाण हृदयमें नहीं लगे हैं। ऐसे धर्मभ्रष्टकारी कामका तो सर्वथा परित्याग करना चाहिये परन्तु आज इससे विपरीतही वर्ताव हो रहा है।

रामसों न कीन्ही रति कीन्ही रति वामहीसों,
रामरूप चाह्यो नही चाह्यो रूप वामको ।
रामको न ध्यायो ध्यायो रातदिवस वामहीको,
रामको न चाह्यो कियो चाह्यो निजकामको ॥
रामको विसारयौं ना विसारयौं दाम धाम वाम,
रामको मनायो ना मनायो तैं हरामको ।
रामसों न नेह नेह देहमें लगायो नीच,
वामगुन गायो पैन गायो गुण रामको ॥

(कमलाकर)

आज ठीक ऐसी दशा हो रही है। इस नीच बुद्धिने देशको बिगाड दिया है। मनुष्योंको दुर्बुद्धि, निर्बल, और मृतकवत् बना दिये

है, इस लिये इहलौकिक और पारलौकिक दोनों लोकमे सुख प्राप्त करना चाहो तो कामका परित्याग करो।

जो आपन चाहहु कल्याना। सुजश सुमति शुभगति सुख नाना॥
तो परनारि लिलार गोंसाई। तजहु चौंथ चन्देकी नाई॥
(गोस्वामी तुलसीदासजी)

(क्रोध)

क्रुद्धः पाप नरः कुर्य्यात् क्रुद्धो हन्येत् गुरुनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते॥

क्रोधके वश हो मनुष्य घोर पाप कर बैठता है, क्रोधी मनुष्य श्रेष्ठ जनोंकी गुरुजनोंकी भी हिंसा करता है, क्रोधी कठोर वचनोंसे कल्याणकारी मनुष्यका भी घोर अपमान करता है।

इस जगत्मे क्रोध विनाशका मूल है, क्रोधके वश हो मनुष्य भले मनुष्योंका तिरस्कार करने लगता है, समस्त अमानुषिक आचरणोंको करने लग जाता है, इस संसारमे कौन ऐसा दुष्ट कर्म है जिसको क्रोधी न कर सके?

अग्निसो कोप धधकत।
लाल नयन अति भौंह गँठीली फरकत दोनौं ओठ।
कटु वचन आहुतिके परतहि सहस गुन भभकत।
माता पिता गुरु अपनपौ काटत विलम्ब न आनै।
मानहुं ब्रह्मपिशाच चढ़ा शिर विनु विचार झझकत॥

तनिकन करुणा मनमें आवै छाई रही अँधियारी।
तीन लोकको परलय करिके हहरि हहरि हहकत॥
हिंसा नारी संगे जाके श्यामरूप पट गहने।
देवदेवको नयन तीसरो अस डङ्का गहकत॥
(श्रीकाष्ठजिह्वा देवस्वामी)

इस लिये क्रोध देवताको तो दूरसे ही नमस्कार करना चाहिये।

नमोस्तु क्रोधदेवाय स्वाश्रयज्वालिने भृशम्।
महाप्रचण्डरूपाय पापरूपाय वै प्रभो॥

क्रोध अपने आश्रितको जलानेवाला है, पापरूप है, महा प्रचण्ड है अतः उसका क्षमाद्वारा विनाश कर देना ही परमोचित है।

क्षमाखड्गः करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति॥

भला, पाणीमें पडकर अग्नि अपना प्रभाव दिखा सकती है? कभी नही उसी तरह शान्तिके अथाह सिन्धुमें बिचाराक्रोध क्या करनेवाला था।

क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम्।
इह सन्मान मृच्छन्ति परत्र च शुभां गतिम्॥

क्षमावानको यह लोक और परलोक दोनों सुखकर हैं, क्षमावान् इस लोकमें सन्मान और परलोकमें शुभ गति प्राप्त करता है।

भारत वर्षकी अवनतिका मुख्य कारण पारस्परिक वैमनस्यही है। आज भाई–भाई, पति–पत्नी, पिता–पुत्र, सासु–वहु, शेठ–नौकर सब कोई क्रोधके ही गुलाम बने हुए हैं, मूर्ख, पण्डित, गृही–विरक्त, धनी, निर्धनी, राजा, रङ्क सबकोई क्रोधके वश हैं, मित्रो ! तुम यदि प्रभुको प्राप्त करना चाहते हो तो इस पापी क्रोधका परित्याग कर दो।

(लोभ)

भगवान् गीताकार कहते हैं कि—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत्॥

आत्म विनाशक नरकके द्वार काम, क्रोध और लोभ यह तीन ही हैं अतः मोक्षार्थी पुरुषको इनका प्रयत्नतः त्याग करना चाहिये। श्रुती कहती है—

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम्।
(ईशावास्योपनिषद्)

भगवान्से त्यक्त अर्थात् कर्मानुसार दिये हुए पदार्थोंका भोग करो, अन्य किसीके धनकी इच्छा मत करो।

लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम्॥

लोभही पापका बाप है, लोभसे ही काम उत्पन्न होता है लोभसे ही क्रोध उत्पन्न होता है, लोभसे ही मोह होता है और लोभही जीवको नाश कर देता है।

धनं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते।
लब्ध नाशो यथा मृत्युस्तस्मादेतन्न चिन्तयेत्॥
धन लुब्धोह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रियः।
सर्व एवापदस्तस्य यस्य तुष्टं न मानसम्॥

धनकी प्राप्ति कठिन है, प्राप्त होजाय तो रक्षा कठिन है, और कदाच उसका नाश होजाय तो मृत्युके समान दुःख झेलना पडता है, धनका लोभी असन्तुष्ट, अनियमित, लोलुप, और समस्त आपदाओंका निवास स्थान बन जाता है अतः लोभका संतोषद्वारा विनाश कर देना चाहिये। महात्मा पुरुष तो कहते हैं।

भागरे भाग फकीरके बालके कनक अरु कामिनी वाघलागा"
महात्मा काष्टजिह्वदेवस्वामी कहते हैं कि—

लोभवा नट खेलही रचत॥
आशाकी डोरिनसे बाँधे बन्दर बन्दरिया।
मतलबकी डुगडुगी बजावै दूनो नाचत नचत॥
तृष्णा नारी साथै गाजै जेहिकर आदि न अन्त।
साधक दम्भ साज सब साजै पूरो रङ्ग मचत॥
जेहिसे तेहिसे दांत विदौरे नजर भैल बडि छोटी।
दाता सुनतै छाती फाटै कोऊ नाही बचत॥
योगी जपी तपी संन्यासी सबको नाच नचावै।
वासुदेवके चरण शरणमें कोऊ भागी बचत॥

इस लिये प्रत्येक प्रभु प्रेमी मनुष्योंको श्रीहरि शरण होकर परम सन्तोष धारणकर प्रभु भजनमें लगना ही उचित है, सन्तोषके समान तो तीनों लोकोमे कोई सुख है ही नही।

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येनाशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥
सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्त चेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥

उसीका पढ़ना सार्थक है, उसीका सुनना सार्थक है, उसका अनुष्ठान करना सार्थक है, जिसने आशाको पीठ देकर निरासाका आश्रय ग्रहण किया है। जो सुख सन्तोषामृत पान करनेवाले भाग्य-शाली पुरुषको प्राप्त होता है, वह धनके लोभी कुत्ताकी तरह इधर उधर भागनेवाले मनुष्यको कहांसे प्राप्त हो सकता है?।

मोती झालर रतन खम्भसे विरची ऊंची अटा।
एक दिवस तू इनको तजिके जावेगा चट पटा ॥

इस लिये प्रभुसे प्रार्थना करो कि—

अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निर्वाण।
जन्म जन्म प्रभु चरण रति यह वरदान न आन॥

इसीमें सबका कल्याण है।

जीवके परम घातक प्रभु प्राप्तिके प्रतिबन्धक और नरकमें लेजानेवाले दुष्ट दुर्व्यसन हैं। दुर्व्यसन समय, शरीर और सद्गुणोंका सत्यानाश कर देते हैं। आजतो तमाखु, भांग, चा, अफीण, दारु

और अनेक नशैली चीजोंने भारतवर्षको गहरे खाडेमें पटक दिया है स्वर्गको उजाड दिया है, और नरकमे भीड करदी है। भगवान् ब्रह्मा देवर्षि नारदजीसे कहते हैं। यथा स्कन्दपुराणे—

ब्रह्मचर्य्येण किं तस्य गार्हस्थ्ये न च किं पुनः।
वानप्रस्थेन किं तस्य संन्यासेनापि किं पुनः॥
संन्यासेनात्र किं तस्य वैराग्येण च किं पुनः।
पीतायेन तमाखुर्वै श्वपचादपि सोऽधमः॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तम।
चाण्डालसदृशा ज्ञेयास्तमाखूपान मात्रतः॥
धर्मभ्रष्टाहि ते ज्ञेयास्तमाखूपानकारकः।
तमाखुभङ्गमद्यानि ये पिबन्ति नराधमाः
तेषां हि नरके वासो यावदिन्द्रा श्चतुर्दश॥

उसके ब्रह्मचर्य पालनसे, गार्हस्थ्य पालनसे, वानप्रस्थ पालनसे, संन्यास पालनसे क्या? जिसने तमाखु पान किया। संन्याससे और वैराग्य पालनसे क्या? जो तमाखु पान किया तो, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तमाखु पान मात्रसे ही चाण्डालवत् होजाते हैं। जिसने तमाखु पान किया वह धर्म भ्रष्ट हैं, और अन्तमे रौरव नरकमें जाता है, इसमे कोई संशय नही है। तमाखु, भांग, और नशैली चीजें जो अधमनर पीते हैं वह चौदह इन्द्र बदलें तबतक नरकमें वास करते हैं।

सत्यत्रेताद्वापरेषु त्रियुगेषु भवेन्नसा।
इदानीं तु कलौ जाता तमाखूनामतः स्वयम्॥

हे नारद ! यह तमाखुपूर्वके तीनों युगोंमें नही थी यह तो जीवोंको नरकमें लेजानेके लिये ही कलियुगमें प्रकट हुई है।

नराणां धर्मनाशाय स्वाश्रमाद्भ्रंशनाय च।
म्लेच्छजन्म विधानाय जीवव्यामोहनाय च॥

धर्मके नाशार्थ, आश्रम नाशार्थ, म्लेच्छ वृध्यर्थ और जीवोंको मोहनार्थ तमाखू प्रकट हुई है।

तस्माद्विवेकिभिः पुत्र न पेया सा कथञ्चन।
जन्म साफल्यमिच्छन्ति तमाखुं न पिबन्ति ते॥

हे पुत्र ! इस लिये विवेकी, और जीवनको सुफल बनानेकी कामनावाले पुरुषोंको तमाकु न पीनी चाहिये। पद्म पुराणमें—

विजया कल्पमेकतु दश कल्पं तु नागिनी।
वारुणी कल्प साहस्रं धूम्र संख्या न विद्यते॥

भांग एक कल्प, अफीण दश कल्प, मदिरा हजार कल्प और धूम्रपान तम्माखु असंख्य कल्प तक नरकमें वास कराती है, तमाखू पीना तो दूर रहा परन्तु तमाखू पीने वालेको दान देनेवाला भी नरकगामी होता है यथा पद्मपुराणे—

धूम्रपान रतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्राम सूकरः॥

चिलम, बीडी, सिगारेटका धुआं पीनेवालेको दान देता है वह मनुष्य घोर नरकमें जाता है, और दान लेनेवाला ब्राह्मण गाँवका सुवर

होकर जन्मता है। तमाखू रोगोंकी भी खान है। तमाखु खुद कहती है—

खाँशी करूँ खुरी करूँ। तबभी न मरे तो मैं क्या करूँ॥

पद्मपुराणमें इसकी उत्पत्ति लिखी है कि—

रुधिरं पपातोर्व्यां त्रीणि वस्तूनि चाभवत्।
कर्णेभ्यश्च तमालश्च पुच्छाद्गोभी बभूवह।
रुधिरान्महेदी जाता तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

कामधेनू और गरुडकी लडाईमें कामधेनूके कानसे खून गिरा उससे तमाखू, पुच्छके खूनके गोभी और अन्य स्थलोंके रुधिरसे मेंहदी उत्पन्न भई। इस लिये प्रत्येक मोक्षार्थी मनुष्यको इनका परित्याग कर देना चाहिये। स्मृतिसारावलीमें कहा है कि—

गौडी माध्वी तथा पैष्टी पौस्तकी विजया जया।
षडेता मदिराः प्रोक्ता वर्जनीया मुमुक्षुभिः॥

गुडसे, मधुसे, आटासे, पोस्तासे, भांगसे, और तमाखुसे मदिरा उत्पन्न होती है अतः मोक्षार्थी इन मादकी चीजोंका परित्याग करे। *

भांग, तमाखू, गांजा, चा, बिस्कुट, परदेशी सक्कर, माँस, मदिरा, यह सब महा पापस्थान हैं अतः इनका तो मनुष्यको परित्याग कर देना चाहिये। इन चीजोंने हमारे देश, धर्म और द्रव्यका विनाश

* ग्रन्थ विस्तार भयसे इसका ज्यादा विस्तार नही करता हूं। यदि ईश्वरेच्छा होगी तो कभी फिर दुर्व्यसन पर अपना मत प्रगटकर आपकी सेवा करूंगा—

कर दिया है अतः धार्मिक और सामाजिक दृष्टिसे इनका त्याग करनेंमे ही हमारा श्रेय समावेशित है। यह संसार नश्वर है, इसकी नश्वर चीजोंमें फँस कर जिन्दगी बेकार न होजाय इस लिये सतत डरते रहो।

डरते रहो ये जिन्दगी बेकार न होजाय।
सपनेंमे किसी जीवका अपकार न होजाय॥

बडे बडे धीर वीर भूमि पै भये औगये,
जाके हेतु फौज जान देवेको अडी रही।
तेऊ भये कालकेकलेवा छिन एकहीमें,
टेकहीमैं नारी भौन भीतर खडी रही॥
रामके सनेह विनु वीते व्यर्थ वर्ष जग,
इतकी समृद्धि सब इतही गडी रही।
छूटिगो सुगेह देह चारुसो चितामें जरी,
चूर होई खोपडी मसानमे पडी रही।

—कवि कमलाकर

यह दशा एक दिन सबकी होनेवाली है, आज तक कोईभी इस सौभाग्यसे वञ्चित नही रहा है, फेर इतना ही रहता है कि इस दशाको प्राप्त कर पापी प्राणी नरकमें जाकर तरह तरहके ताप सहता है और पुण्यात्मा प्रभु धाममें जाकर अखण्ड एकरस और दिव्य आनन्दका अनुभव करके कृत्य कृत्य होजाता है—

छूटे प्रान छूटी जात धन धरतीमें सबै,
पशुगण बँधेही रहिजात पशुशालामें।

नारि छिटकारि लट रोय रहि जात भौन,
द्वारको किवाँर गहि शुनि सुख मालामें ॥
सज्जन सनेही मित्र बाँधब मसान हीलौं,
देहभी चिताकी जरि जात अग्नि ज्वालामें।
रामके सनेही सो तो सिधारे श्रीरामधाम,
रामको विसारे सो पधारे नरक नालमैं ॥

सचेत होजाओ, नरकके नालामें न वहना पडे ऐसा उपाय करो, प्रभुके प्रेमसागरमें कूद पडो आंख मूँद कर, हृदयमें प्रभु विरहकी ज्वाला सुलगाकर जलादो अपनी पापमय वासनाओंको, प्रभुके अनन्त दया सिन्धुमे डूबा दो अपने पाजी मनको, और भीजादो प्रेमभक्तिके पवित्र सलिलसे अपने रोम रोमको। लोकभय, समाजभय, शङ्का और कुतर्कोंको तोडकर फँकदो, और श्रीगुरु, संत, श्रीहरिके लोकपावन चरणोंमे अविचल प्रेम करो, समस्त विरोधियोंका परित्याग कर दो। प्रेमके साधक बनो, साधनोंसे निराश मत हो, साधनमे अरुचि मत करो, यह उपायस्वरूपका भारी प्रत्यवाय है इसको टाल दो। इह लौकिक और पारलौकिक कामनाओंका त्याग करो, सांसारिक वैभवोंकी कामना फलस्व रूपका प्रतिबन्धक है इन सब प्रतिबन्धकोंका परित्याग करो और डूब जाओ अनन्त दिव्य गुणार्णव प्रभुके आनन्द सागरमें।

। इति विरोधीस्वरूप ।

फलस्वरूप

प्रारब्धं परिभुज्याथ भित्वा सूर्यादि मण्डलम्।
प्रकृतेर्मण्डलं त्यक्त्वा स्नात्वातु विरजाम्भसा॥१९॥

सवासनं देहद्वयं विसृज्य विरजो भवेत्।
अतिवेगेन तां तीर्त्वा प्राप्य साकेतकं तथा॥२०॥

प्रविश्य राजमार्गेण सप्तावरणसंयुतम्।
नाना रत्नमयं दिव्यं श्रीरामभवनं शुभम्॥२१॥

तत्र श्रीभरताद्यैश्च सेव्यमानं सदा प्रभुम्।
विराजमानं वैदेह्या रत्नसिंहासने शुभे॥२२॥

स्वभावनया श्रीरामं प्राप्य सर्व सुखप्रदम्।
परानन्दमयो भूत्वाऽवस्थानं फलमुच्यते॥२३॥

प्रारब्ध कर्मोंका उपभोगकर प्रभुभक्तिके प्रभावसे सुषुम्ना नाडीसे बाहर निकल यह जीव सूर्यादिमण्डलोंको भेद कर प्रकृतिके उस-पार श्रीविरजा नदीमें स्नान करता है। विरजा स्नान मात्रसे ही जीव विरज हो जाता है, उसके वासनात्मक सूक्ष्म और कारण शरीरोंका

विनाश हो जाता है। प्रभुप्रिय भक्त वहांपर दिव्य देहको प्राप्त करता है और प्रभु प्राप्तिकी अत्यन्त उत्कंठा होनेसे भक्त अतिवेगेन विरजा, पार होकर "श्री साकेतधाम" को प्राप्त करता है, परम दिव्यमङ्गल साकेतधामके मध्य राजमार्गसे होता हुआ, सातों आवरणोंमे होकर नानारत्न, मणि, और दिव्य सुवर्णसे रचित **श्रीरामभवनमें** जाता है। वहां पर श्रीभरतादिक भ्राताओंसे परिवेष्टित तथा सुसेवित दिव्य चिन्मय रत्नसिंहासन पर श्रीविदेहराजतनया सहित श्रीपरात्परतम पूर्णब्रह्म प्रभुश्रीरामचन्द्रजीके दिव्य दर्शनको प्राप्त करता है। सर्व सुखप्रद, परमान्दस्वरूप, निखिलजगदाधार प्रभुकी सेवा करता हुआ वह मुक्तात्मा फिर सर्वदा उसी नित्यधाममें निवास करता है बस, यही परम फल है, यही प्राप्य है, इसीके लिये समस्त अनुष्ठान किये जाते हैं, यही जीवनका ध्येय है, और परमलक्ष्य है। इसी परम धामकी प्राप्तिके लिये महात्मागण दिव्य उपदेश देते हैं कि—

मुसाफिर जाना है बडि दूर।
सात सातके ऊपर राजित, श्रीविष्णुको पूर।
तापर दोपुर और है गोपुर, तांते दूर॥
ताहि मध्य श्रुति अवध वखानत, जहां वस रामहजूर।
"रामशरण" यह ना कछु दुर्लभ जिनके प्रभु भरपूर॥
(नवाहिके परमहंसजीमहाराज)

शीतान्त सिन्ध्वाप्लुत्त एवधन्यो गत्वा परब्रह्म सुवीक्षितोऽथ।
प्राप्यं महानन्द महाब्धिमग्नो नावर्तते जातु ततः पुनः सः॥
(वैष्णवमताब्जभास्कर)

प्रभुधाम प्राप्त जीव भगवान् श्रीरामको प्राप्त कर संसार ताप-हारक अत्यन्त शीतल प्रभुकृपासागरमें अवगाहन करके आनन्दके अगाध और अनूपम महासागरमें निमग्न होजाता है और सर्वदा प्रभु-सेवाका अवर्णनीय सुख भोगता है पुनः वह जीव कदापि लौटकर मर्त्य भूमिमें नहीं आता है।

श्री तुलसीकृत रामायणकी टीकामें श्रीस्वामी रामचरणदासजी महाराजने सामवेदकी एक तैत्तिरीय श्रुति लिखी है—

"देवानां पूरयोध्या तस्यां हिरण्यमयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतो यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरीं तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च आयुः कीर्तिं प्रजां ददुः ॥

देवोंकी अर्थात् प्रभुप्रिय भागवतोंकी पुरी श्रीसाकेत अयोध्या है उसमें हिरण्यमय कोश है समस्त स्वर्गलोक इसकी ज्योतिसे आवृत है, आच्छादित है, जो अमृताच्छादित इस दिव्य श्रीअयोध्यापुरीको प्राप्त करता है उसके पर परब्रह्म प्रभु, और हिरण्यगर्भ ब्रह्मा प्रसन्न होकर आयुकीर्ति और प्रजा प्रदान करते हैं। अथर्ववेद उत्तरार्धकी श्रुति भी श्रीरामचरणदासजी महाराजने श्रीरामायणटीकामें लिखी है—

"यायोध्या सा सर्ववैकुण्ठनामेवमूलाधारा प्रकृतेः परा तत्सद्ब्रह्ममयी विरजोत्तरादिव्यरत्नकोशाढया तस्यां नित्यमेव श्रीसीतारामयोर्विहार स्थलमस्ति'।

जो अयोध्यापुरी है वह समस्त वैकुण्ठोंकी मूलाधारा है और प्रकृतिसे परा है और ब्रह्ममयी है विरजा नदासे उत्तर है दिव्य रत्न-

मय कोशोंसे युक्त है वही श्रीसीतारामजीमहाराजकी नित्य विहार-स्थली है।

भार्गव पुराणमें लिखा है—

त्रिपाद्विभूतिवैंकुण्ठे विरजायाः परे तटे।
या देवानां पूरयोध्या ह्यमृतेना वृता पुरी॥

त्रिपाद् विभूतिसम्पन्न विरजाके उत्तर तटपरे जो दिव्य धाम है वह अमृतसे वेष्टित देवताओंकी पुरी श्री अयोध्याजी है।

पांच प्रकारके वैकुण्ठ हैं उसमें भी सबसे पर वैकुण्ठ श्री विरजा-पार साकेतधामही बतलाया है यथा—

वैकुण्ठंपञ्च विख्यातं क्षीराब्धि च रमान्ययम्।
कारणं महा वैकुण्ठं पञ्चमं विरजा परम्॥

अर्थात्—क्षीर सागर वैकुण्ठ, रमावैकुण्ठ, महावैकुण्ठ, कारण-वैकुण्ठ और विरजापार अर्थात् परवैकुण्ठ श्रीसाकेतधाम है। श्रुति कहती है "**सा सर्व वैकुण्ठानामेव मूलाधारा**" इन पांचो वैकुण्ठोंकी मूलाधार श्री साकेतपुरी है।

अथर्ववेद (संहिताभाग] दशमकाण्ड, प्रथम अनुवाक् द्वितीय सूत्रके अठाइसवें मन्त्रके उत्तरार्धसे लेकर साढ़े पांच मन्त्र, श्री ब्रह्मचारी भगवदाचार्य्यजी "वेदरत्न" ने "अथर्ववेदमें श्री अयोध्याजी" नामक पुस्तकमें उद्धृत किये हैं यथा—

पुरं यो ब्रह्मणो वेदयस्याः पुरुष उच्यते॥२८॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥२९॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥३०॥.

जो कोई ब्रह्मकी श्रीरामजीकी पुरीको जानता है उसे.प्रभु श्री राम और भगवान् श्रीरामके दिव्य पार्षद चक्षु, प्राण, और प्रजा देते हैं यदि कहो कि किस पुरीको जाननेंके लिये कहते हो? यस्याः पुरुष उच्यते, जिस पुरीका पुरुष कहा जाता है अर्थात् जिसका प्रतिदिन नाम स्मरण किया जाता है उस पुरुषकी पुरीको जाननेंके लिये श्रुति कहती है। जो कोई अनन्तशक्तिसम्पन्न सर्वजगदाधार प्रभु श्री रामजीकी अमृत अर्थात् मोक्षके आनन्दसे आवृत परिपूर्ण श्री अयोध्या-पुरीको जानता है उसके लिये परब्रह्म परमात्मा श्रीसीतानाथ प्रभु और ब्राह्मा अर्थात् प्रभुके हनुमदादि दिव्य पार्षद नित्य और मुक्त जीव उत्तम दर्शन शक्ति उत्तम प्राणन शक्ति अर्थात् आयुष्य और बल सन्ता-नादिक देते हैं। जिस पुरीका परम पुरुप कहाजाता है उस भगवान् श्रीरामकी उस पुरीको जो कोई जानता है उस प्राणीको बाह्याभ्यान्तर दर्शन शक्ति शारीरिक और आध्यात्मिक बल, मृत्युसे पहले निश्चय ही नही छोडते हैं।

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥३१॥

वह श्री अयोध्यापुरी है। जो आठ चक्रों अर्थात् आचरणोंवाली

हैं। जिसमें प्रधान नवद्वार हैं, जो दिव्यगुणसम्पन्न प्रपत्तिनिष्ठ परमभागवतोंसे सेवित है। उस अयोध्यापुरीमें बहुत ऊंचा और परम सुन्दर प्रकाशपुञ्जसे आच्छादित सुवर्णमय महामण्डप है।

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मवन्वतद्वै ब्रह्मविदोविदुः॥३२॥

उस सुवर्णमय विशाल मण्डपमें उसके अर्थात् उस मण्डपके आत्माके समान जो पूजनीय देव विराजमान है उसीको ब्रह्मस्वरूप ज्ञाता जानते हैं। जिस कोशमें वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है? उसमे तीन अरे लगे हैं अर्थात् तीन अरोंपर वह मण्डप बना हुआ है। और तीनों लोकोंमें वह सुप्रतिष्ठित है।

इस मन्त्रमें स्पष्ट कहा गया है कि श्रीअयोध्याजीके मध्य सुवर्ण मण्डपमें जो देव विराजमान है वही परात्परतम पूर्णब्रह्म है। विद्वान् लोग उन्हीको जानते हैं और उन्हीको प्राप्त करनेका सतत प्रयास करते हैं। अयोध्याके दिव्य सुवर्ण मण्डपके मध्य प्रभु श्री सीतारामजी ही विराजमान हैं। अतः भगवान् राम ही परात्पर ब्रह्म है।

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्।
पुरं हिरण्यमयीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥३३॥

ब्रह्म=सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीराम उसी श्रीअवधपुरीमें प्रविष्ट हैं विराजमान हैं वह पुरी कैसी है? अत्यन्त प्रकाशमयी है, मनको हरण करनेवाली है, पापोंको विध्वंस करनेवाली है, अनन्त कीर्तिसे युक्त है, सर्व पुरियोंसे श्रेष्ठ है, अर्थात् अतुलनीय है।

इस प्रकार श्रुतियां मुक्तकण्ठ होकर श्री अवधपुरीका श्रीसाकेत धामका दिव्य प्रभाव वर्णन करतीं हैं। जैसा स्पष्ट और प्रभावयुक्त सविस्तर वर्णन श्रीअयोध्याजीका श्रुतियोंमें पाया जाता है वैसा स्पष्ट अन्य किसी भी पुरीका वर्णन मेरे ख्यालसे नही मिलता है, जिसके अर्थ करनेंमे व्याख्याताओंको कुछ न लिखना पडे और स्पष्टतया विदित होजाय वैसा विशुद्ध वर्णन केवल श्रीअवधपुरीका प्राप्त होतां है।

भाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य्यजी महाराजका वचन है कि—

परं पदं सैवसुपेत्य नित्यममानवो ब्रह्मपथेन तेन।
सायुज्यमेव प्रतिलभ्य तत्र प्राप्यस्य सन्नन्दति तेन साकम्।
(वैष्णवमताब्जभास्कर)

सर्व देवोंसे पूजित होकर वह अमानव—मानव—भाव—शरीरसे रहित पुरुष उस अर्चिरादि ब्रह्ममार्गसे भगवानके सनातन सर्वोत्कृष्ट श्रीसाकेतलोकको प्राप्त करके सायुज्य प्राप्त होकर भगवान्के साथ वहां सर्वथा आनन्दसे विहार करता है। अर्चिरादि मार्गका वर्णन सदाशिवसंहितामें श्रीलक्ष्मणजीने वेदोंके प्रति वर्णन किया है यथा—

महर्लोकः क्षितेरूर्ध्वमेककोटि प्रमाणतः।
कोटिद्वयेन विख्यातो जनलोको व्यवस्थितः॥
चतुष्कोटिप्रमाणस्तु तपोलोको विराजते।
उपरिष्टात्ततः सत्यमष्टकोटिप्रमाणतः॥
अतः प्रख्यातकौमारः कोटिषोडशसम्भवः।
तदूर्ध्वोपरि संख्यात उमालोकः प्रतिष्ठितः॥

शिवलोकस्तदूर्ध्वं तु प्रकृत्या च समागतः।
विश्वस्य पुरतो वृत्तिः शिवस्य पुरतो बहिः॥
एतस्माद्बहिरा वृत्तिः सप्तावरणसंज्ञकः॥

भूमण्डलसे एक करोड योजन ऊंचे महर्लोक है, उसके ऊपर दो करोड योजन ऊपर जनलोक है, उसके ऊपर चार करोड योजन पर सत्य लोक है, उसके सोरह करोड योजन ऊपर उमालोक है, उसके ऊपर प्रकृतिमण्डलसे मिला हुआ शिवलोक है, इस प्रकार विश्वके सीमाका प्रथम भाग शिवलोकसे बाहिर है। इससे बाहर सप्तावरण संज्ञक प्रकृति मण्डलका आकार विशेष है।

तदूर्ध्वं सर्वसत्वानां कार्य्यमारणमानिना।
निलयं परमं दिव्यं महावैष्णवसंज्ञकम्॥

उसके ऊपर कार्य कारणके अभिमान रखनेवाले सर्व जीवोंका परम दिव्य स्थान महावैष्णव संज्ञक लोक है।

सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्।
यन्निमेषा जगत्सर्वं लयीभूतं व्यवस्थितम्॥
उद्भवन्ति विनश्यन्ति कालज्ञानविडम्बनैः।
यदंशेन समुद्भूता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
एतद्गुह्यं समास्थानं ददातु वाञ्छितं हि नः।

उस महावैष्णव लोकमें सहस्रमूर्द्धा सहस्रनेत्र, सहस्रपाद, विश्वात्मा, भगवान् वास करते हैं, जिस भगवान्के निमेष उन्मेष समयमें काल, ज्ञान, विडम्बन सहित, सब लोक उत्पन्न होते हैं और विनाश

होजाते हैं। जिस भगवानके अंशसे ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वरादिक लोक कार्य निर्वाहक उत्पन्न होते हैं। वह गुह्य स्थान हम सबोंको परम वाञ्छित फल प्रदान करे।

तदूर्ध्वं तु परंदिव्यं सत्यमन्यद्दिवस्थितम्।
न्यासिनां योगिनां स्थानं भगवद्भावनात्मनाम्॥
महा शम्भुर्मोदतेऽत्र सर्व शक्ति समन्वितः।
तदूर्ध्वं तु परंकान्तं महावैकुण्ठ संज्ञकम्॥
वासुदेवादयस्तत्र विहरन्ति स्व मायया।
तदूर्ध्वं तु स्वयं भाति गोलोकः प्रकृतेः परः॥
वाङ्मनोगोचरातीतो ज्योतिरूपः सनातनः।

उस महा वैष्णव लोकके ऊपर परम दिव्य लोक है। जो निष्काम कर्म प्रिय भगवद्भावनामय योगियोंका स्थान है, यहां सर्व शक्ति सम्पन्न श्री महादेव प्रमुदित हो निवास करते हैं। उसके ऊपर परम प्रकाश-मय महावैकुण्ठ लोक है, जिसमें वासुदेवादिक चतुर्व्यूह अपनी–अपनी शक्ति सम्पन्न विहार करते हैं। उसके उपर प्रकृतिसे पर मन, वाणी अगोचर ज्योति स्वरूप सनातन स्वतः प्रकाशित श्री गोलोक है।

तस्य मध्ये पुरं दिव्यं साकेतमिति संज्ञकम्।

उस गोलोकके मध्य भागमें परम दिव्य श्रीसाकेतधाम हैं। इसी धामके लिये श्रुति कहती है।

पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

महात्मा काष्ट जिह्वदेव स्वामीजी श्रीअयोध्या शब्दका अर्थ लिखते हैं—

अवधकी महिमा अपरम्पार, गावत हैं श्रुति चार ॥
निश्चित अचल समाधिनमें जो, ध्याईं वारम्वार ।
ताते नाम अयोध्या गायो, यह ऋग्वेद प्रकार ॥
राजधानी परबल कञ्चनमय, आठ चक्र नव द्वार ।
ताते नाम अयोध्या पावन, अस यजु करत विचार ॥
अकार यकार उकार देवत्रय, ध्याईं जो लखिसार ।
ताते नाम अयोध्या ऐसो साम करत निरधार ॥
अग जगकोश जहां अपराजित, ब्रह्मदेव आगार ।
ताते नाम अवध मन भावन कहत अथर्व उदार ॥

श्री वैष्णवधर्मप्ररोचक वीरवैष्णव महात्मा श्री सरजूदासजीने "उपासनात्रय सिद्धान्त" नामक ग्रन्थमें श्रीअवधकी महिमाका वर्णन करते श्री वशिष्ठ संहिताके श्लोक लिखे हैं वह बहुत विस्तारसे हैं अतः मैं उसमेंसे मुख्य मुख्य श्लोक लेकर संक्षेपतः श्री अयोध्याजीके सप्तावरणोंका वर्णन लिखता हूँ—

श्रूयतां सावधानेन रहस्यमतिदुर्लभम् ।
रामभक्तं विना क्वापि न वक्तव्यं कदाचन ॥
सर्वेभ्यश्चापि लोकेभ्यश्चोर्ध्वं प्रकृतिमण्डलात् ।
विरजायाः परे पारे वैकुण्ठं यत्परं पदम् ॥
तस्मादुपरि गोलोक सच्चिदिन्द्रियागोचरम् ।
तन्मध्ये रामधामास्ति साकेतं यत्परात्परम् ॥

हे भारद्वाज ! मैं अति दुर्लभ रहस्य तुम्हें सुनाता हूँ, यह गुप्त रहस्य श्रीरामभक्तोंके विना और किसीको न सुनाना। समस्त लोक और प्रकृति मण्डलसे ऊंचे विरजाके उस पार श्री वैकुण्ठलोक है, उसके ऊपर सच्चिदानन्दमय श्री गोलोक है, उसके मध्यमें परात्पर श्रीरामजीका नित्यधाम श्री साकेतलोक है।

अथ श्रीरामचन्द्रस्य यद्धाम प्रकृतेः परम्।
सच्चिद्घनपरानन्दं नित्यं साकेत संज्ञकम्॥
यदंशवैभवा लोका वैकुण्ठाद्याः सनातनाः।
सप्तावरणानि तस्याहं वक्ष्यामि मुनिसत्तम॥

हे मुनिसत्तम ! अब मैं प्रकृतिसे पर, सच्चित् परमानन्दमय जो श्री साकेताख्य परमधाम है जिसके अंश वैभवसे वैकुण्ठादिक सनातन लोक प्रकट हुए हैं उस दिव्यधामके सप्तावरणोंका संक्षिप्त वर्णन तुम्हें सुनाता हूं।

एकैकस्यां दिशि श्रीमान्दशयोजन सम्मितः।
अयोध्याया बहिर्देशः स वै गोलोकसंज्ञकः॥

श्री अयोध्याजीके बहिर्देशमें चारों तरफ दश–दश योजन विस्तीर्ण जो प्रदेश है वही श्रीगोलोक है।

महाशम्भु महाब्रह्मा महेन्द्रो वरुणस्तथा।
धनदो धर्मराजश्च महान्तश्च दिगीश्वराः॥
त्रयोविंशस्तथा देवा नित्याः सर्वे द्विजोत्तम।
अन्ये च विविधा देवा गन्धर्वाश्चाप्सरोगणा॥

वेदा मूर्तिधरा शास्त्र विद्याश्च विविधा तथा।
सप्तर्षयो मुनीन्द्राश्च नारदः सनकादयः॥
सायुधाः सगणा श्रीमद्रामभक्तिपरायणाः।
प्रथमावरणे नित्यं साकेतस्य स्थिता मुने॥
एतदंश समुद्भूता देवा ब्रह्मशिवादयः।
यथाधिकारं ते सर्वे स्वस्वलोकेषुसंस्थिताः॥

हे द्विजोत्तम! महाशम्भु, महाब्रह्मा, महेन्द्र, वरुग, धनद, धर्मराज, महादिगीश्वर, समस्त देवता, गन्धर्व, अपसरगग, मूर्तिमान् चारोंवेद, समस्तशास्त्र, समस्तविद्या, सप्तऋषी, मुनीन्द्र, नारद, सनकादिक, महात्मागण, यह सब अपने आयुध और गणोंके सहित निज स्थान पर साकेतके प्रथमावरगमें स्थित हैं। उन्ही दिव्य श्रीराम भक्तिपरायण देवताओंद्वारा ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादिक देवता प्रगट होते हैं। और—

निधयो नवधा नित्या दशाष्टौ सिद्धयस्तथा।
पञ्चधा मुक्तयश्चापि रूपवत्यः पृथक् पृथक्॥
कर्म योगो च वैराग्यं ज्ञानं च साधनैः सह।
द्वितीयावरणे नित्यं स्वस्वरूपेण संस्थिताः॥

अणिमा, लघीमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशिता, वशिता, अवस्यति, अर्थात् यथेष्ट सुख प्राप्ति यह अष्ट सिद्धि अथवा अनूर्मिमत्त्व, दूरश्रवण, दूरदर्शन, मनोजव, कामरूप, परकायप्रवेश, स्वच्छन्दमृत्यु, देवसह क्रीडा, सङ्कल्प सिद्धि, और आज्ञाऽप्रतिघात, यह दश सिद्धियां, रूपधारी

पञ्चधामुक्ति, ज्ञानयोग, कर्मयोग, समस्त साधनों सहित वैराग्य, स्व स्वरूप धारण करके यथायोग्य द्वितीयावरणमें स्थित हैं।

सच्चिज्ज्योतिर्मयं ब्रह्म निरीहं निर्विकल्पकम्।
निर्विशेषं निराकारं ज्ञानाकारं निरञ्जनम् ॥
निर्वाच्यं निर्गुणं नित्यमनन्तं सर्वसाक्षिकम्।
न्यासिनां योगिनां यच्च ज्ञानिनां च लयास्पदम् ॥
तृतीयावरणे तद्वै साकेतस्य विदु र्बुधाः ॥

सच्चिज्योर्तिमय, निरीह निर्विकल्पक, निर्विशेष, निराकार, ज्ञानाकार, निरञ्जन, निर्वाच्य, निर्गुण, नित्य, अनन्त, सर्वसाक्षी, निष्काम योगियोंके लयास्पद ब्रह्म श्री साकेतके तृतीयावरणमें स्थित हैं।

गर्भोदक निवासी च क्षीरार्णवनिवासकृत्।
श्वेतद्वीपाधिपश्चैव रमावैकुण्ठनायकः॥
सलोकाः सगणाः सर्वे मथुरा च महापुरी।
पुरीद्वारावती नित्या काशी लोकैकवन्दिता ॥
काञ्ची माया पुरी दिव्या तथाचावन्तिका पुरी।
अयोध्यामेव सेवन्ते चतुर्थावरणे स्थिता ॥

गर्भोदकनिवासी, श्रीक्षीरसागरनिवासी, श्वेतद्वीपपति, गण, तथा लोकोंके सहित भगवान् रमावैकुण्ठनायक सप्त पुरी श्रीसाकेतधामके चतुर्थ आवरणमें रहकर सर्वदा श्रीअयोध्यापुरीकी सेवा करते हैं।

साकेतपूर्वदिग्भागे श्रीमती मिथिला पुरी।
सर्वाश्चर्यवती नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी॥
दक्षिणस्यां दिशि श्रीमान्कोशलाया गिरिर्महान्।
भ्राजते चित्रकूटश्च सच्चिदानन्दमूर्तिमान्॥
अयोध्यापश्चिमेभागे कृष्णस्य परमात्मनः।
नित्यं वृन्दावनं धाम चिन्मयानन्द विग्रहम्॥

साकेतधामके पूर्वभागमें अमित आश्चर्यमश्री और सच्चिदानन्द रूपिणी श्री मिथिलापुरी है। श्री अयोध्यापुरीके दक्षिणभागमें सत्, चित् और आनन्दकी मूर्ति महाप्रतापी, तेजस्वी श्री चित्रकूट पर्वत है। श्रीअयोध्याजीके पश्चिम भागमें अद्भुत सच्चिदानन्दमय परमात्मा श्री कृष्णजीका नित्यधाम श्री वृन्दावन है।

सत्यायाश्चोत्तरे भागे महावैकुण्ठसंज्ञकम्।
महाविष्णोः परं धाम ध्रुवं वेदैः प्रकीर्तितम्॥
मिथिला चित्रकूटश्च श्रीमद्वृन्दावनं तथा।
महावैकुण्ठमेतद्धि पञ्चमा वरणं मुने॥

श्री अयोध्याजीके उत्तर भागमें महाविष्णुका परमधाम ध्रुव वेदप्रतिपादित महावैकुण्ठ लोक है अर्थात् श्री साकेतके पञ्चमावरणमें पूर्व दिशामें मिथिलापुरी, दक्षिणमें श्री चित्रकूट, पश्चिममें वृन्दावन, और उत्तरमें महावैकुण्ठलोक है।

ततस्तु परमानन्दसन्दोहं परमाद्भुतम्।
अयोध्याया श्चतुर्दिक्षु चतुर्विंशति योजनम्॥

सर्वतो वेष्टितं नित्यं स्वप्रकाशं परात्परम्।
सच्चिदेकरसानन्दं मायागुण विवर्जितम्।
वाङ्मनोगोचरातीतं प्रमोदारण्यसंज्ञकम्।
रामस्यातिप्रियं धाम नित्यलीला रसास्पदम् ॥

परमानन्द सन्दोह, परमाद्भुत, श्रीअयोध्याके चारों तरफ चौबीश चौवीश योजन विस्तीर्ण, स्वतःप्रकाशित, परात्पर, एकरस, मायागुण रहित, मन वाणीसे अगोचर, परम चिन्मय, श्रीरामजीका परम प्रिय, नित्य लीलारस निकेतन श्री प्रमोदविपिन है।

पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु क्रमेण तद्वने मुने।
गिरयः सन्ति चत्वारस्तेषां नामानि मे शृणु॥
आह्लादिन्याश्च पूर्वस्यां दिशिद्योतत्प्रभाकरः।
नीलरत्नमयो भाति शृङ्गाराद्रिमनोहरः ॥

हे भारद्वाज मुनि! उस प्रमोदवनके चारों तरफ क्रमशः चार पर्वत हैं उनका मैं नाम सुनाता हूं ध्यान पूर्वक सुनो।

प्रभुकी आह्लादिनी शक्ति सम्पन्न, प्रभाकरवत्प्रकाशित, नील-रत्नमय परम मनोहर श्री शृङ्गाराद्रि पूर्व दिशामें है।

दक्षिणस्यां दिशि श्रीमद्रत्नाद्रिर्द्योतयन् वनम्।
पीतरत्नमयः कान्त्या भूदेव्या भ्राजते प्रियः ॥
प्रतीच्यां दिशि लीलाद्रि लीलाया ललितप्रभा।
राजते रत्न कोशाढ्यो रामस्य रतिवर्द्धनः ॥

श्रीदेव्या हि सुलीलार्थे मुक्ताद्रिर्मण्डितो महान्।
उदीच्यामुज्ज्वलो रत्नैश्चन्द्रकान्तै र्मनोहरः।

दक्षिण दिशामें वनको प्रकाशित करता हुआ, भूदेवीकी शक्ति सम्पन्न पीतरत्नमय, परमप्रिय श्रीरत्नाद्रि पर्वत है। पश्चिमदिशामें लीलादेवीसे लालित, दिव्यरत्नकोशाढय श्रीरामजीकी प्रीतिको प्रवर्द्धित करनेवाला श्रीमान् लीलाद्रि पर्वत है। उत्तर दिशामें उज्वलरत्नमय चन्द्रकान्त मणियोंसे पूर्ण, मनोहर श्री देवीको लीला करनेके लिये, श्रीमान् मुक्ताद्रि पर्वत है। और—

प्रमोदविपिने सन्ति मधुराणि नवानि च।
वनानि द्वादशैतानि तन्नामानि शृणुष्व मे॥
श्रीशृङ्गार वनं भाति विहारवनमद्भुतम्।
तमालं च रसालं च चम्पकं चन्दनं तथा॥
पारिजातवनं दिव्यमशोकं शोक हारकम्।
तथानङ्गवनं रम्यं वनं श्रीनाग केशरम्॥
विचित्राख्यं वनं कान्तं कदम्बवनमेव च।
द्वादशैतानि नामानि वनानि कथितानि मे॥

हे भारद्वाज! उस प्रमोद वनमें मधुर ओर सदा नवीन रहनेवाले द्वादश वन हैं उनका नाम मैं सुनाता हूं।

श्री शृङ्गारवन, १ श्री विहारवन, २ श्री तमालवन ३ श्री रसालवन ४ श्री चम्पकवन ५ श्री चन्दनवन ६ श्री पारिजातवन ७ शोकको हरण करनेवाला अशोकवन ८ श्री अनङ्गवन ९ श्री नागकेशर

वन १० श्री विचित्रवन ११ और श्री कदम्बवनं १२ यह द्वादश-वन है।

प्रमोद काननं षष्ठमेतदावरणं महत्।
तव भक्त्या प्रसन्नेन मयाप्रोक्तं द्विजोत्तम ॥

हे द्विजोत्तम! छठे आवरणमें चार पर्वत और द्वादश वनोंसे सम्पन्न श्री प्रमोदकानन है उसका वर्णन मैंने तुम्हारे प्रेमके वश होकर तुमसे कहा—

वज्रस्फटिक मुक्तानां सूक्ष्म चूर्णानि वालुकाः।
तथा चन्द्रमणीनां च द्योतयन्ति सरित्तटे॥

एवं श्रीसरयू रम्या परानन्दप्रदायिनी।
सप्तमावरणं विद्धि साकेतस्य सरिद्वरा ॥

सप्तावरण मध्ये तु राजते रामवल्लभा।
अयोध्यानगरी सच्चित्सान्द्रानन्दैक विग्रहा॥

वज्रस्फटिक और मुक्ताके सूक्ष्म चूर्णकी रेतीसे युक्त तथा चन्द्र-मणियोंसे प्रकाशित जिसका तट है ऐसी परमानन्दप्रद प्रदायिनी श्रीसरयू नदी श्री साकेतधामके सप्तमावरणमें है।

इन्ही सात आचरणोंसे सम्पन्न भगवान् श्रीरामकी परमप्रिया श्री अयोध्यापुरी है। वह सत्–चित् और आनन्दमय है। श्री शेषजी वेदोंके प्रति कहते हैं यथा–सदाशिव संहितायाम्—

तन्मध्ये परमोदारः कल्पवृक्षो वरप्रदः।
तस्याधः परमं दिव्यं रत्नमण्डपमुत्तमम् ॥

तन्मध्ये वेदिंका रम्या स्वर्णरत्नविनिर्मिता।
तन्मध्ये च परं शुभ्रं रत्नसिंहासनं शुभम्॥

उसी सप्तावरण सम्पन्न श्री अयोध्याजीके मध्यभागमें परम उदार सकल कामनाओंका पूर्ण कर्ता वरप्रद कल्पवृक्ष है। उसके नीचे परम दिव्य परमोत्तम रत्न मण्डप है। उस मण्डपके मध्य भागमें सुवर्ण और दिव्य रत्नोंसे विनिर्मित शुभ्र वेदिका है। और उस वेदिकाके मध्य भागमें परमोच्च तेजसम्पन्न सिंहासन है।

सहस्रारं महापद्मं कर्णिकायुक्त मुन्नतम्।
तन्मध्ये मुद्रिकाभिन्नं मुद्राद्वाभ्यां विभिन्नकम्॥

वह्नीन्दुमण्डलेनापि वेष्टितं बिन्दु भूषितम्।
चन्द्रकोटि प्रतीकाशं छत्रकं च स चामरम्॥

उस दिव्य सिंहासनके मध्य भागमें हजार दलका परम विकसित कर्णिकासे युक्त एक महापद्म है उस कमलके मध्यमें एक मुद्रा तथा दो मुद्रा है। पहली सूर्य मुद्रा है बाद अग्नि मुद्रा और चन्द्र मुद्रा है इन मुद्राओंसे वह पद्म वेष्टित है। उसके ऊपर करोडों चन्द्रमा सम शीतल सुखकर छत्र है और वह सिंहासन चामरोंसे सम्पन्न है।

सदामृत धनस्रावी मुक्तादामवितानकम्।
तन्मध्ये जानकी देवी सर्वशक्ति नमस्कृता॥

तत्रास्ते भगवान् रामः सर्वदेवशिरोमणिः।
तत्रादौ चिन्तयेत्तेजो वह्निरूपं सुशक्तिकम्॥

तेजसा महता श्लिष्टमानन्दैकाग्रमन्दिरम् ।
एकाग्रमनसा पश्येत्तत्र देवं सुविग्रहम् ॥

निरन्तर घनवत् अमृत बरसानेवाला मुक्तादामोंसे सुशोभित दिव्य वितान है। उसके नीचे समस्त शक्तियोंसे नमस्कृता जगदीश्वरी भगवती श्री सीतादेवी विराजमान हैं। और उनके दक्षिण भागमें सर्वदेव शिरोमणि महान् तेजसम्पन्न आनन्दमूर्ति, आनन्दमन्दिर परमसुन्दर भगवान् श्रीरामभद्रजीका दर्शन करे।

स्निग्धमिन्दीवरश्यामं कोटीन्दुललितद्युतिम्।
चिद्रूपं परमोदारं वीर भद्रं रघूद्वहम् ॥

द्विभुजं मधुरं शान्तं जानकीप्रेमविह्वलम्।
दोर्दण्डचण्ड कोदण्डं शरच्चन्द्रं महाभुजम् ॥

सीताऽलिङ्गितवामाङ्कं कामरूपं रसोत्सुकम्।
तरुणारुणशङ्काशं विकचाम्बुजपादकम् ॥

परम स्निग्ध, इन्दीवरश्याम, करोंडो चन्द्रमाके समान परम ललित तेज सम्पन्न, चैतन्य स्वरूप, परम उदार, वीरभद्र, श्री रघुकुल शिरोमणि, द्विभुज, मधुर, शान्त, श्री जनकराजतनयाजीके परम दिव्य प्रेमसे विह्वल, शरद् ऋतुके चन्द्रमावत् आनन्दप्रद, महाभुजमें महाप्रचण्ड धनुष धारण किये हुए श्रीसीताजीको वाम अङ्गमें लिये, कामवत् स्वरूपवान्, रसोत्सुक, तरुणकमलके समान प्रफुल्लित पादपद्म हैं जिनके ऐसे श्री रामजीका दर्शन करे। और—

नख चन्द्रं पदं द्वन्दं प्रियतेजः समावृतम् ।
कूर्मपृष्ठपदाभासं रणन्मञ्जीरपादकम् ॥
कटि सूत्राङ्कितं श्रीशं यज्ञ सूत्रैरलङ्कृतम् ।
रत्नकङ्कणकेयूरशोभिताग्रभुजद्वयम् ॥
चन्द्रकोटिप्रतीकाशं कौस्तुभेन विराजितम् ।
दिव्यरत्नसमायुक्तमुद्रिकाभिरलङ्कृतम् ॥

नख चन्द्रोंसे जिनके पदकमल द्वय प्रकाशित हैं, प्रिय हैं तेज सम्पन्न हैं। कूर्म पृष्ठके आभाषवत् चरणका मध्यप्रदेश उन्नत है। परम प्रिय शब्द करनेवाले नूपुरसे युक्त हैं। कटिमें मेखला है और यज्ञोपवीतसे अलङ्कृत हैं। रत्नके कङ्कण और केयूरसे भुजका अग्र भाग सुशोभित है। करोंडो चन्द्रके समान प्रकाशमान् कौस्तुभमणि हृदयमें विराजमान है। दिव्य रत्नजडित मुद्रिकासे अलङ्कृत प्रभु श्रीरामका दर्शन करे। और—

नासिकाग्रैकभागेन मुक्ताफलस्फुरन्मुखम् ।
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशं कुण्डलाढयश्रुतिद्वयम् ॥
प्रवृत्तारुण सङ्काशकिरीटेन विराजितम् ।
गोविन्दं गोविदां श्रेष्ठं चिन्मयानन्दविग्रहम् ।
दिव्यायुध सुसम्पन्नं दिव्याभरणभूषितम् ।
प्रेमार्णवं परब्रह्मं पीत कौशेयवाससम् ॥

नासिकाके अग्र भागमें मुक्ताफल (वेशर—नांशामणि) सुशोभित है। करोड सूर्यवत् तेजस्वी कुण्डल दोनोकानोंमें धारण किये हैं। प्रचण्ड सूर्यवत्किरीट धारण किये हुए हैं। इन्द्रियोंको प्रकाशितं करनेवाले और इन्द्रियप्रकाशक देवताओंमे अतिश्रेष्ठ, दि्व्यआयुध धनुर्बाणादिकोंसे सम्पन्न, दि्व्य आभरणोंसे विभूषित, प्रेमके अगाधसागर, परब्रह्म, पीताम्बरधारी, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करै। और—

तद्रूपैर्विविधाकारैः सेव्यमानं परात्परम्।
वशिष्ठवामदेवादिमुनिभिः परि सेवितम्॥
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतछत्रं सचामरम्।
उभौ भरत शत्रुघ्नौ ताल वृन्तकराम्बुजौ॥
अग्रेऽव्यग्रं हनूमन्तं वाचयन्तं स्वपुस्तकम्

प्रभुके समान वय, रूप, और गुणवान् सेवकोंसे सेवित, वशिष्ठ वामदेवादि महर्षियोंसे परिसेवित प्रभु श्रीरामकी लक्ष्मणजी प्रभुके पृष्ठ भागमें स्थित होकर छत्र धारण करके और श्रीभरतजी तथा शत्रुघ्नजी शुभ व्यजनद्वारा सेवा करते हैं। अग्र भागमें महावीर प्रभु प्रेमी श्री हनुमानजी स्वस्थमन होकर प्रभु दर्शन करते हैं और अपना पुस्तक पढ़कर प्राण प्रियतम परमेश्वरको सुनाते हैं इस प्रकार विज्ञजन प्रभु दर्शन करें।

भानुकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिप्रमोदकम्।
इन्द्रकोटिसदा मोदं वसुकोटि वसुप्रदम्॥
विष्णुकोटिप्रतीपालं ब्रह्मकोटिविसर्जनम्।
रुद्रकोटिप्रमर्दं वै मातृकोटिविनाशनम्॥

कोटिभैरवसंहारं मृत्युकोटिविभक्षकम्।
यमकोटिदुराधर्षं कालकोटिप्रधावकम्।
गन्धर्वकोटिसङ्गीतं गणकोटि गणेश्वरम्।
कामकोटिकलानाथं दुर्गाकोटि विमोहनम् ॥
सर्वसौभाग्यनिलयं सर्वानन्दैकदायकम् ॥
कौशल्यानन्दनं रामं केवलं भवखण्डनम् ॥

करोड़ों भानुके समान तेज सम्पन्न, करोड चन्द्रवत् प्रमोददाता, करोड इन्द्रवत् ऐश्वर्यप्रद, करोड कुबेर समान धनप्रद, करोड विष्णु समान पालक, करोड ब्रह्माके समान उत्पादक, करोड रुद्रसम संहारक करोड मातृगण समान शत्रु नाशक, करोड भैरव समान संहारक, करोड मृत्युके समान भक्षक, करोड यमराजाके समान दुराधर्ष, करोड कालके समान सञ्चालक, करोड कामदेवके समान मनोहर, करोड दुर्गाके समान मोहक, सर्व सौभाग्य निलय, सर्वानन्द प्रदायक, कौशल्याजीके प्राणाधार पुत्र श्री रामचन्द्रजीही केवल इस भवबन्धनके खण्डन कर्ता हैं।

इस प्रकारके प्रभुको प्राप्त करनाही जीवनका चरमलक्ष्य है। श्रुति कहती है।

इह चेदवीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥
(केन० खं० २, मं० ५)

इह=भक्ति सम्पादन योग्येऽस्मिन्मानव जन्मनि। चेत=यदि। अवेदात्=उपासकः परमात्मानं श्रीरामचन्द्रमुपासिष्ट। अथ=तर्हि।

सत्यम्, अस्ति=कल्याणमस्ति। भगवदुपासनेनावश्यं कल्याणेन भाव्य-मितिभावः चेत्=यदि। इह=न अवेदीत्=अस्यां तनौ श्रीरामं नोपासिष्ट। महती विनष्टिः=महान् विनाशः सम्पन्नः। धीराः=धीमन्तो विद्वांसः। भूतेषु—सर्वभूतेषु भूतेषु—स्थितं ब्रह्मापरपर्यायं श्रीराममितिशेषः। विचिन्त्य सातत्येनाप्रयाणं दम्भादिदोषवर्जनपुरस्सरं चिन्तयित्वा। अस्मात्, लोकात्=अस्मान् मानव देहात्। प्रेत्य=निस्सृत्य। अमृता=मोक्षभाजः भवन्ति=सम्पद्यन्ते।

—ब्रह्मचारी श्रीभगवदाचार्य वेदरत्न

भक्ति प्राप्त करने योग्य इस मानव शरीरमें यदि उपासक जीवने भगवान् श्रीरामजीकी उपासनाकी तबतो उसका कल्याण निश्चय ही है और यदि जीवने भगवान्की उपासना न की तो महान् अनर्थ हुआ ऐसाही समझो। इसी लिये विद्वान् लोक सर्व भूतोंमें स्थित भगवान्का चिन्तन स्मरण करके इस लोकसे छूटकर परम अमृतकी प्राप्ति कर लेते हैं। परम मोक्ष या परम फलकी प्राप्ति कर लेते हैं। श्रुति कहती है कि—

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"

उस परावरनाथ, प्रभुका दर्शन करनेंसे हृदयकी कठिन गाँठे छूट जाती हैं समस्त संशय छिन्न भिन्न होजाते हैं। समस्त कर्मोंका आत्यन्तिक विनाश होजाता है।

तम्=परमात्मा श्रीरामम् । श्रीरामजीके दिव्यदर्शन करनेंसे उनके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेंसे ही इस जन्ममरणरूप संसा-रसे छूट सकते हैं दूसरा कोई उपाय है ही नही—

जबतक उस परमेश्वरको प्राप्त नहीं हुए हैं तभीतक हमें लाखों दुःख सहन करने पडते हैं परन्तु जब अन्तिमध्येय, अन्तिमलाभ, अन्तिमफल प्रभु प्राप्त होगये फिर कोई प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती है, प्रभु प्राप्तिमें ही समस्त चीजोंकी प्राप्ति होजाती है क्योंकि प्रभुसे पर कोई है ही नही तब उसको प्राप्त करके फिर किसकी कामना करें? श्रुतिका वाक्य है

पुरुषात् न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परागतिः ।
(कठ० १, ३, ११)

मतः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
(गी० ७, ७)

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
(गी० ६, २२)

"वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्"

इस श्रीमद्भागवतके वाक्यानुसार पुरुषात्=श्रीरामचन्द्रात् । श्रीराम-चन्द्रजीसे कोई भी पर नही है । उनको प्राप्त करना ही पराकाष्ठा है परमगति है और परमफल है । "हे धनञ्जय ! मुझसे बडा कोई भी नही है" जिसको प्राप्त करके मनुष्य फिर अन्य किसी भी लाभको अधिक नही मानता है वह मेरी प्राप्ति है ।

प्रभुके परस्वरूपका वर्णन करते हुए श्रीमती भगवति श्रुति कहती है—

अंशभूता विराड्ब्रह्मविष्णुरुद्रास्तथा परे।
ब्रह्मतेजो घनीभूतं वर्तते जानकीपतेः॥
सगुणं निर्गुणंचैव परमात्मा तथैव च।
एते चांशा हि रामस्य पूर्वं चान्ते च मध्यतः॥

(रामतापिन्योपनिषद्)

श्रीजानकीपतिके अंशद्वारा ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तथा अन्य देव नर नाग संयुक्त विराट सगुण, तथा निर्गुणादिक अन्य समस्त स्वरूप आदि मध्य और अन्तमें होते ही रहते हैं। महारामायणमें भी

एते चांशकलाभूताः शक्ति वीर्य्यसमन्विताः।
रामचन्द्रांघ्रिसञ्जाता रामस्तु भगवान् स्वयम्॥

यह सब, अवतारादिक शक्ति, वीर्यादि गुणोंके अंश समन्वित होकर श्रीरामचन्द्रपदारविन्दसे प्रकट होते हैं परन्तु प्रभु श्रीराम स्वयम् भगवान् हैं।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनु पश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

(कठ० २, ५, १२)

वह एक परमात्मा ही सर्व विश्वाधिपति है सर्वान्तर्यामी है वह एकरूपधारी होते हुए भी अनेकोंरूप धारण करता है। उस सर्व हृदयस्थ आत्मान्तर्यामी प्रभुका जिसने दर्शन किया वही धीर पुरुष

परम फलस्वरूप शाश्वत सुखको प्राप्त करता है, वह सुख अन्य किसीको प्राप्त नहीं होता है। अतः

जीवन फल सियाराम धाम है प्रेमसे सीताराम कहो।
जीवन फल सियाराम नाम है प्रेमसे सीताराम कहो॥

इस मानव जीवनका फल धन नही है, स्त्री नही है, पुत्र नही है, सुयश नही है, विषय भोग नही है, मित्र बन्धु या सुहृद् नही है, इहलोकका चक्रवर्ती राज्य नही है, पातालका आधिपत्य नही है, स्वर्गलोकका साम्राज्य नही है ब्रह्मलोक इन्द्रलोकादिक लोकोंका सुख नही है, परन्तु इस पवित्र सुख मन्दिर मानव देहका फल तो केवल प्रभु प्राप्ति ही है। इस लिये प्राणीमात्रको अपने स्वरूपकी पहिचान करनी चाहिये, प्रभु प्राप्तिके उपायोंका पालन करना चाहिये और अन्तमें सर्व जगदाधार सर्वेश्वर सीतानाथकी प्राप्ति करनी चाहिये।

प्रभुका प्यारा भक्त तो इह लोकसे लेकर ब्रह्मलोक तकके सुखोंकी कामनाओंका त्याग कर देता है, अरे सांसारिक सुख तो दूर रहे परन्तु भक्तजन तो मुक्तिकी कामनाका भी निरादर कर देते हैं। मुक्ति निरादर भक्ति लुभाने—

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावद्भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥

भुक्ति और मुक्तिकी इच्छारूपी पैशाचिक कामनाएं जबतक हृदयमें वर्तमान है तबतक जीव कदापि भक्तिके सुखको प्राप्त नहीं

कर सकता है। मुमुक्षु जीव श्रीसाकेतधामके प्रधान दरवाजेसे प्रविष्ट होकर जाता है और वहां दरवाजे पर रक्षकरूपेण स्थित श्री हनुमान् जीकी कृपा प्राप्त करता है जीवके आचार्य्य, प्रिया प्रियतमके मधुर दर्शन करनेवाले, श्री हनुमान्जी महाराजद्वारा परम प्रेमरूपी भक्ति प्राप्त करता है सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म सांसारिक मोहका त्याग करके प्रभुके चरणोमें नैसर्गिक प्रेम प्राप्त करता है—

महावीर रणधीर जगत्में अञ्जनी पुत्र कहाते हैं।
बांह पकरिके रसिक जनोंको प्रभुसमीप पहुंचाते हैं॥

साकेत धामके चार दरवाजे हैं चारों दरवाजोंपर चार प्रभु पार्षद रक्षक रूपेण व्यस्थित है यथा—

पश्चिमां पाति धर्मात्मा राक्षसेन्द्रोर्विभीषणः।
पूर्वमावृत्य विश्वात्मा सुग्रीवो वानराधिपः॥
उत्तरं रक्षति वीरो बालिपुत्रो मम प्रियः।
दक्षिणं तु सदापाति हनुमान्रामवत्सलः॥

पश्चिम दिशामें राक्षसेन्द्र विभीषण, पूर्वदिशामें वानराधिप श्री सुग्रीव, उत्तरदिशामें बालिपुत्र श्री अङ्गद, और दक्षिणदिशामें राम-वत्सल श्रीहनुमान्जी पालन करते हैं। सदाशिवसंहितामें भी—

साकेत दक्षिणे द्वारे हनुमान् भक्तवत्सलः।
यत्र सान्तानिकन्नाम वनं दिव्य हरेः प्रियम्॥

साकेतके दक्षिण द्वारमें भक्तवत्सल श्री हनुमान्जी महाराज रक्षकरूपेण विराजित है। जहां परमदिव्य हरिप्रिय सान्तानिक वन है।

इत्यादि प्रमाणोंसे विदित होता है कि यह जीवात्मा दक्षिण द्वारसे श्री हनुमानजी महाराजकी कृपा कटाक्षसे आलोचित होकर प्रभु धाममें प्रवेश करता है।

वहां पर कनक भवनके मध्य भागमें परिकर संयुक्त हृदय धन निज सर्वस्व, भक्तकल्पवृक्ष, कल्याणकल्पद्रुम, अन्तर्यामी, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य्य, वीर्य, तेज, वात्सल्य, शौर्य, औदार्य, सौशील्प, सौलम्य, मार्दव, आर्जव, आश्रित रक्षकत्व, क्षमा, दया, अनुकम्पा, अनुग्रह, और शरणागत परित्राणत्वादि अगाध दिव्य गुणसागर परम दयालु, दीनबन्धु करुणासिन्धु, पतितोद्धारक अशेषजगच्छरण्य प्रभु परात्पर परमेश्वर भगवान् श्रीसीतानाथ प्रभुके दिव्य दर्शन प्राप्त करता है। और अपने जीवनको कृतार्थ मानकर देह दशा भूलकर प्रभुके पाद पद्मोंमे गिर जाता है। श्री जनकराजपुत्री, वात्सल्यरसपूर्णा, जगदम्बा, करुणासागर श्री सीताजी उसकी दीन दशा देखकर उसके ऊपर अपार करुणामृत श्राव करतीं है और भक्तवत्सल रसिकवर रामभद्रजू तत्काल दौडकर पुत्रवत्सलामाकी तरह, लोभीके धनकी तरह, गाढ़ स्नेहीकी तरह, वात्सल्यपूर्ण पिताकी तरह उसे हृदय लगाते हैं और उसको कृतकृत्य कर देते हैं और आश्वासन देते हुए कहते हैं कि—

हे वत्स! आज मेरी अभिलाषा तूनें पूर्णकी, मेरे मनोमन्दिरमें सर्वदा ये भावनाएं रमण किया करती हैं कि प्रत्येक जीव मेरी उपासना करके मुझे प्राप्त हो, कोई भी दुःख न भोगे, मेरी प्रजामें सर्वदा सुख और शान्तिका साम्राज्य रहे, पारस्परिक प्रेम रहे, धर्ममें निष्ठा रहे, परन्तु जीव मेरी इन कामनाओंकी अवहेलना करके घोर दुःख सागरमें पडते

हैं। यम यातनायें भोगते हैं। जन्म मरणके चक्करमे घूमा करते हैं। परन्तु मेरा भजन नहीं करते। तूने बहुत अच्छा किया कि मेरी अनन्योपासना करके मेरे शरणागत होकर मुझे प्राप्त हुआ। अहाहाहा ! वत्स ! मैं तेरे पर बहुत ही प्रसन्न हूं इस समय तुझे क्या दूं मेरा तो स्वभाव है—

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥

मैं मेरे प्रिय साधुओंके विना, अपने प्राणकी भी चाहना नही रखता, और जिसकी मैं ही परमगति हूं ऐसे भक्तोंके समान श्री सहित अपनी आत्माको भी प्रिय नही समझता।

इस प्रकार अनुकम्पा परिपूर्ण प्रेमरसभीने वचनोंको श्रवण कर भक्त तो कृत्य कृत्य होजाता है।

हे सीतानाथ !

हे सीतानाथ ! क्या इस किङ्करको भी उस दिव्य धामके अद्भुतानन्दका सुख प्रदान करियेगा ? हे भक्तवत्सल ! क्या अपने इस अबोध अर्भकको भी अपनी प्रेमभरी, रसभरी, दयाभरी और असीम अमृतभरी अनूपम गोदमें बैठनेका सुअवसर दीजियेगा ? हे प्रिया प्रियतम ! हे प्राणधन ! इस अनाथ बालकको क्यों तरजाते हो ? बैठा लो न अपनी प्यारी मधुर गोदमें। हे दयामय ! क्या इस अनाथ बालका रुदन आपके हृदयमें कुछ भी असर नही करता है। हे दीनबन्धु ! दीनोंपर दया करनाही तो आपका काम है आप सदाकालसे दीनोंपर गरीबों पर ही तो दया करते आये हैं, अकिञ्चन भक्तोंका उद्धार करना ही तो आपका पेशा है। दीनदयालु, पतितोद्धारक, अनाथ नाथ अशरण शरण, यही तो आपके शुभ नाम है तो हे नाथ ! मैं दीन, पतित, अनाथ और अशरण हूँ अतः मुझपर दया करके आप अपने नामोंकी सफलता प्राप्त कर लीजिये। हे प्रेमसागर रसिकवर भगवन् ! यदि इस घोर भवसागरसे मुझे न बचाया, मँझधारमें डूबते हुए और त्राहि त्राहि पुकारते हुए मुझ आर्त प्रपन्नकी रक्षा न की तो समझ लीजिये कि जगत्में आपका बडा भारी उपहास होगा। सब लोग कहने लगेंगे कि दीनदयालु प्रभु भी समय पाकर निठुर होगये। हे निष्क-

लङ्क नाथ! आप व्यर्थ ही ऐसा कलङ्क अपने माथे क्यों लेते हो? पिता! अपने पुत्रको दुःखसिन्धुमें डूबने देना तो आपका धर्म नही है, अतः पडा रहने दो न इस गुलामको अपनी चरण धूलमें, यदि दीन, मलीन, वीभत्स, और नीच नादान बच्चेको अपने पास बैठानेमें आपको शरम लगती हो तो हे श्यामसुन्दर!

नहि निकटके योग तो इतना ही बस कर दीजिये।
दूर ही बैठा नजर भर मैं तुम्हें देखाकरुं॥

—हरिजन

* * *

हे अशेष लोक शरण्य! मैं दीन, हीन, मलीन, दुर्जन, क्रूर, कपटी, कामी, क्रोधी, कलही, अधम, पतित, दुःखी, तप्त, और समस्त दुर्गुणोंका एक मात्र विश्रामगृह समान नीच पामर प्राणी हूं। मैं रात दिवस पाप करनाही शीखा हूँ। पापकर्म करनेमें मुझसा कोई भी प्रवीण नही है। मैं समस्त पापियोंका छक्का छुडा देता हूं सब पापी-योंको पाप युद्धमें परास्त कर देता हूं संक्षेपतः मैं ही पापियोंका सरदार हूं मेरे सरीखा पापात्मा आपको त्रयलोकमें भी नही मिलेगा।

हे रघुकुल शिरोमणे! मैंने आपके भी नाम सुन रक्खे हैं सब नाम एकसे एक विलक्षण हैं परन्तु मैं तो स्वार्थी हूं मुझे तो आपके अनन्त नामोंमें "**पतितपावन सीताराम**" यह नाम बहुत ही प्रिय लगा क्योंकि आपकी प्रतिष्ठाके साथ, आपकी पावनताके साथ रहनेका सुवर्ण अवसर अभागे पतितको भी मिलता है यह तो मेरे आनन्दके समुद्रको प्रफुल्लित करनेका ही दिव्य समाचार प्राप्त हुआ तुरत मैंनें

सोचा कि मैं अब ऐसा उदार पावनकर्ता कहां खोजने जाऊं ? झटसे धर लिया आपके चरणशरणका ज्योतिर्मय मार्ग, और पहुंच गया आपके पतितपावन पदपद्मोंके सन्निकट। भला, अब मुझे स्वीकार न करना यह कितना भारी अनुचित कार्य है अतः हे दीनबन्धु! हे अधम उधारण! मेराभी अब शीघ्र ही उद्धार कर दीजिये।

× × ×

हे कोटि कन्दर्प लावण्य धाम प्रभु श्रीराम! अब तो मुझे अपना मदन विमोहन मुखडेकी झांकी एकवार तो अवश्यही करादो। हे श्रीरघुकुल कैरव चन्द्र! इस परमातुर विरह व्यथित दीन चकोर समान दुखित आँखोको अपना मुनि मनमोहक मुखचन्द्रकी अमृतमयी किरणोंद्वारा शान्त तो करदो। हे कृपाघन! एकवार शुष्कातिशुष्क कठोर हृदय पर कृपामृत वर्षा करके उसे प्रेम प्लावित तो करदो। प्रभो! इसमें आपको कुछ कष्ट पडे ऐसा तो मुझे माळूम नही होता आपका सङ्कल्पही मेरे उद्धार करनेंके लिये काफी है, मैं तो शीतल, सुखकर, दुखहर और सदा आनन्द देनेवाली आपके करकमलकी छायाका ही अभिलाषी हूं, आपकी चरणरजका ही उपासक हूं और आपकी दिव्य रूप माधुरीका ही आशिक हूं। अतः

जो कृपा कोरसे एक वार इशारा होजाय।
तो मेरे जीनेंका कुछ रोज सहारा होजाय॥

× × ×

हाथ हरिजनका कृपा करके जो गह लेवैं आप।
काम हो दासका और नाम तुम्हारा होजाय॥

—हरिजन

आपके दर्शनकी ही कामना है। सेवाकी अभिलाषा है। और नित्यधामका निवासी बनकर हर तरह तेरी गुलामगीरी करनेकी ही अत्युत्कट लालसा है।

क्या रङ्ककी आह भरी हुई इस अरजीको स्वीकार करोगे नाथ?

हे मैथिली हृदयवल्लभ! रूपराशे!
हे सर्वद! श्रुतिवचस्तुत! राघवेश!
हे पापपुञ्जदहनानल देवदेव!
त्वत्पादपङ्कज रजः शरणं ममास्तु।
हे मैथिलीहृदयपङ्कजकञ्जनाथ!
हे भक्तवत्सल! कृपाकर! राघवेन्द्र!
हे दीनरक्षक! शरण्य! सुखस्वरूप!
त्वत्पाद पङ्कज रजः शरणं ममास्तु।

(भक्तकल्पद्रुम ३७, ३३)

उपसंहार

एवं तत्त्व परिज्ञानादाचार्य्यानुग्रहेण हि।
तत्क्षणाज्जानकीनाथे प्रीतिर्नित्याभि जायते॥ २४॥

इस प्रकार प्राप्य श्रीरामस्वरूप, प्राप्तु जीवस्वरूप, प्राप्त्युपाय-स्वरूप, प्राप्ति विरोधिस्वरूप, तथा प्राप्य फलस्वरूप, इन पांच त[illegible]को श्री आचार्यके अनुग्रहद्वारा समझकर और श्रीगुरु आज्ञानुसार वि[illegible]-योंको त्याग, भक्ति प्रपत्यादिकोंका यथावत् अनुष्ठान करता है उसको श्रीजानकीनाथ प्रभुके पावन चरणोंमे शीघ्रही परम प्रेम उत्पन्न होता है।

एतदेव परं तत्त्वं रामधाम प्रदायकम्।
रहस्यमद्भुतं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥२५॥

परम अद्भुत, रामधाम (श्रीसाकेतलोक) प्रदायक यही परम तत्त्व है, इस सर्वोत्तम रहस्यको समझकर तदनुसार आचरण करनेसे जीव ब्रह्मलोक श्रीरामचन्द्रजीके दिव्यधामको प्राप्त कर आनन्द करता है।

श्रीमान् वानरोत्तम, रामदूत श्रीहनुमान्‌जीने महर्षिवर्य्य श्रीअगस्त्यजीको इस प्रकारका परमोत्तम रहस्य सुनाया और उसी व्याजसे ...गोंको, कलिकालके कराल जालमें फँसे हुए नीच पामर जीवोंको प्रभु प्राप्तिका सुगम मार्ग प्रदर्शित किया।

जो कोई इन तत्वोंको समझकर प्रभु प्रेम पन्थके पथिक बनेंगे सब अवश्य ही शीघ्र और सुगमतासे आनन्दकन्द, कोटिकन्दर्प-...वण्यधाम सीतानाथ प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी प्राप्ति कर लेगें। बस, ...ी परमतत्व है, यही परमरहस्य है, यही परमफल है, और यही ...व जीवनका अन्तिम ध्येय है।

हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

* श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु *
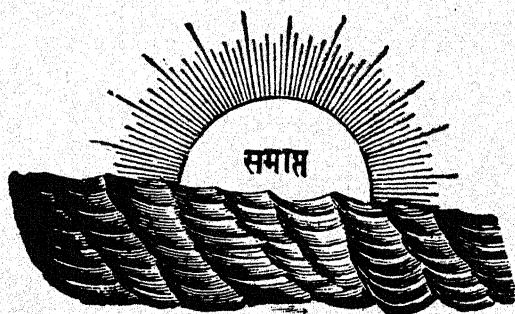
"हे मनुष्य ! तू अपने यथार्थ स्वरूपका ज्ञान प्राप्त कर शुद्ध अन्त:करणसे अपने दुर्गुणोंको देख। बद्धजीवोंके हृदयमें रह वाले दुर्गुणोंका त्यागकर। मुमुक्षु स्वभाव ग्रहणकर। श्रीगुरुचरण शरणाग स्वीकारकर। ईश्वरभक्ति, ईश्वरप्रेम, और ईश्वर शरणागति ग्रहणकर श्रीगुरुकृपासे प्रभुके दिव्य, अद्भुत, सच्चिन्मय, आनन्दप्रद रहस्यों प्राप्तकर। संसार बन्धनसे विमुक्त होजा। प्रभुके दिव्य धामको प्राप्त और "**कल्याणकल्पद्रुम**"के दिव्य चिन्मयानन्दरसपूर्ण फलों मधुरताका सच्चे हृदयसे आस्वादनकर कृतार्थ होजा"